हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी जीवन की छवि

(हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी-एच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

1992

प्रस्तुतकर्त्री

नरेश बंसल, एम. फिल.

अध्यक्ष :

डा० शशि मुदिराज

पी-एच. डी., डी. लिट्.

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 134.

निर्देशक :

डा० सुवास कुमार

पी-एच. डी.

रीडर, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 134.

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD - 500 134

This is to certify that I have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under Ph.D. ordinances of the university.

I declare to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted for the award of research degree of any university.

Naresh Bansal
(Naresh Bansal)

22.1.93
(Dr. Suvas Kumar)
Supervisor

23/1/93
(Prof. Shashi Mudiraj)
HEAD, Department of Hindi

Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

K.K. Ranganathan
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES,
University of Hyderabad,
Hyderabad 500 134.

DEAN
School of Humanities

डॉ. सुवास कुमार
एम. ए. (स्वर्णपदक प्राप्त), पीएच. डी.
रीडर, हिन्दी विभाग
सेण्ट्रल युनिवर्सिटी
हैदराबाद-500134

सेण्ट्रल युनिवर्सिटी कैम्पस
हैदराबाद-500134

दिनांक......................

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

Certified that Ms.Naresh Bansal, M.A.,M.Phil., is a bonafide student of Ph.D. course in the Department of Hindi, University of Hyderabad and this thesis entitled "Hindi Upanyason Mein Punjabi Jeevan Ki Chhavi" submitted for the award of Ph.D. degree is a bonafide record of the research work carried out by the student under my supervision.

Date: 22.1.'93

Dr. SUVAS KUMAR
(SUPERVISOR)

Acknowledgements

I am greatly indebted to my supervisor **Dr. Suvas Kumar** for his inspiration and guidance throughout the course of this research work. I have derived immense benefit from the enlightening discussions with him and from his wealth of knowledge.

I am thankful to **Professor Shashi Mudiraj**, Head of the Department, and other Faculty members for their encouragement and support.

Non-teaching staff members extended their full cooperation when required and thanks are due to them. I appreciate the help of the library staff of Indira Gandhi Library who were always willing to search for the books required for my work.

Dr. Deepti Mishra Sharma put in a lot of effort as well as her precious time to help me in proof-reading the typed matter and I am sincerely grateful to her.

Naresh Bansal

Naresh Bansal

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना 1 — 65

1• अध्ययन का क्षेत्र

2• जीवन या लोकजीवनःपरिभाषा तथा स्वरूप निर्धारण

3• आधुनिक जीवन के महाकाव्य के रूप में उपन्यास

4• उपन्यास का समाजशास्त्र

5• पंजाबी जीवन को चित्रित करने वाले हिन्दी उपन्यास और उपन्यासकार

द्वितीय अध्याय

भारतीय परिपेक्ष्य में पंजाबी जीवन 66 — 125

1• भूगोल और इतिहास के आइने में पंजाबी जीवन

2• धार्मिक विशिष्टता

3• धार्मिक आन्दोलन

4• पंजाबी जीवन का राजनैतिक और सांस्कृतिक वैशिष्टय

4•1• पंजाबी जीवन

4•2• बहु विवाह

4•3• पंजाबी जीवन स्तर

4•4• खान-पान

4•5• राजनैतिक विशिष्टता

पृष्ठ संख्या

तृतीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास और पंजाबी जीवन का समाजशास्त्र 128—202

1. पंजाबी समाज का आर्थिक आधार और जीवन यात्रा

   (क) विविध पेशे

   (ख) रोजी-रोटी का जीवन संघर्ष

2. व्यक्ति-स्थान संबंधी पंजाबी नाम
3. घर-मकान
4. खान-पान
5. पहनावा
6. आभूषण
7. हथियार
8. खेल
9. प्रेम-जीवन
10. नैतिकता
11. धर्म-सम्प्रदाय
12. धारणाएँ और अंधविश्वास
13. पर्व-त्योहार
14. सामाजिक रीति-रिवाज
15. आधुनिकता

पृष्ठ संख्या

चतुर्थ अध्याय

पंजाबी जीवन के संदर्भ में हिन्दी उपन्यासों का
भाषामूलक सांस्कृतिक अध्ययन 203—297

1• पंजाब में प्रयुक्त भाषाएँ तथा बोलियाँ
2• पंजाबी लहजे की हिन्दी
3• ठेठ पंजाबी भाषा का प्रयोग
4• हरियाणवी भाषा का प्रयोग
5• उर्दू भाषा का प्रयोग
6• अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग
7• पंजाबी बोलियों का प्रयोग
8• लोकोक्ति मुहावरे
9• लोक-गीत

(क) धर्म सम्बन्धी गीत
(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत
(ग) संस्कार गीत
(घ) भाव गीत
(च) तीज-त्योहार के गीत
(छ) देश प्रेम के गीत
(ज) अन्य लोक-गीत

10• लोक-कथाएँ

पृष्ठ संख्या

पंचम अध्याय

देश विभाजन, साम्प्रदायिकता, अलगाववाद और पंजाब 298—371

1. पंजाब : साम्प्रदायिकता और अलगाववाद : औपन्यासिक परिदृश्य
2. साम्प्रदायिक धार्मिक संगठन और दंगे
3. समाचार पत्रों की भूमिका
4. साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका और पंजाब
5. पुलिस, अधिकारी वर्ग, शासनतंत्र और साम्प्रदायिकता
6. दंगे और महिला वर्ग
7. आम आदमी और साम्प्रदायिक दंगे
8. देश विभाजन और पंजाब

   (क) पश्चिम पंजाब से आने वाले लोगों पर देशविभाजन का प्रभाव

   (ख) स्थानीय लोगों पर प्रभाव

उपसंहार 372— 380

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

अध्ययन का क्षेत्र :-

हिन्दी आज लगभग सारे देश की भाषा होने का गौरव प्राप्त कर रही है और उसके साहित्य में भारत के विभिन्न क्षेत्रों, समाजों, और जातियों के चित्र प्रस्तुत हो रहे हैं। अतः हिन्दी साहित्य आज केवल तथाकथित हिन्दी भाषी क्षेत्र का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि उसमें एक हद तक सम्पूर्ण भारतीय जीवन उपस्थित मिलता है। पंजाब आरम्भ से ही भारत के भूगोल और इतिहास का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। मुख्य हिन्दी भाषी क्षेत्र से सटा हुआ यह राज्य अपनी पंजाबी भाषा और साहित्य के स्वरूप तथा संस्कारों में हिन्दी के बहुत निकट रहता आया है। हिन्दी साहित्यकारों में से अनेक सशक्त हस्ताक्षर पंजाब से सम्बन्धित रहे हैं और अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में पंजाब के जीवन और समाज का महत्वपूर्ण चित्रण किया है। आर्थिक, राजनीतिक

और सांस्कृतिक रूप से भारतीय परिदृश्य में पंजाब का वैसे भी विशिष्ट स्थान रहा है । सदा से ही यह क्षेत्र राजनैतिक उथल-पुथल, सामाजिक हलचलों और परिवर्तनों का केन्द्र रहा है । यह बात भारत के बहुतेरे राज्यों की अपेक्षा पंजाब में कुछ ज्यादा ही दिखाई देती है । भारत में विदेशी आगमन का एक महत्त्वपूर्ण मार्ग पंजाब भी रहा है । लम्बे समय तक उसे देश के प्रहरी की भूमिका निभानी पड़ी । फलस्वरूप विदेशी आक्रांताओं से लोहा लेने तथा उनके सम्पर्क में आने में पंजाब ने स्वाभाविक रूप से पहल की। इस प्रकार उसे परस्पर विरोधी स्थितियों में रहने का अभ्यास करना पड़ा । मुगल काल में ही नहीं, बाद में भी भारत के केन्द्रीय शासकों के प्रति पंजाब की प्रतिक्रिया दोनों प्रकार की रही अर्थात् एक - विरोध और दो-सहअस्तित्व अथवा सामंजस्य । ये पंजाब के स्वभाव के दो छोर बनते हैं । भारत में अंग्रेजों के प्रभाव - विस्तार का भी सामना पंजाब ने शौर्य, साहस और बुद्धि से किया । भारतीय भौगोलिक सम्पदा ने पंजाब को सुखी-सम्पन्न भले ही किया हो मगर यहां के इतिहास और राजनीति ने उसे अशान्त ही ज्यादा किया है । सत्ता-विरोध में खड़े होने तथा शहीद होने वालों में पंजाब हमेशा ऊपर ही रहा । 1857 से 1947 तक पंजाब ने मानो क्रान्ति-चेतना का इतिहास तैयार किया था और इसके लिये काफी जोखिम भी उठाया था । 1947 में देश-विभाजन के फलस्वरूप होने वाले दंगों का सबसे अधिक पंजाब पर ही प्रभाव पड़ा था । पंजाब के दो टुकड़े हुए । देश की आजादी के बाद भी पंजाबी सूबे की मांग को ले कर यहां बेचैनी दिखाई देती रही । पंजाब के फिर टुकड़े हुए जिनसे हरियाणा और हिमाचल प्रदेश बने । पिछले कई दशकों से खालिस्तान की मांग और आतंकवादियों के कारण पंजाब धधकता रहा और आज भी ठंडा नहीं

पड़ा है । इस तरह देश के किसी भी दूसरे हिस्से ने निरंतर उतना जहर नहीं झेला है जितना पंजाब ने । उसकी जीवनी-शक्ति और संघर्ष-क्षमता अपार है। पंजाब के लोग साहसी तथा बहिर्मुखी रहे हैं । आजीविका और कारोबार के संदर्भ में देश और विदेश के बहुतेरे हिस्सों में बसते रहे हैं । भाषा के रूप में हिन्दी, उनके निकट की लगती रही है और इसीलिये वे हिन्दी को स्वाभाविक रूप से अपनाते रहे हैं । हिन्दी साहित्य में पंजाब का जीवन, समाज, परम्परा आदि विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होते रहे हैं ।

किसी भी देश और समय के साहित्य का सम्बन्ध अपने समाज से गहरा होता है । अत: साहित्य से समाज की खोज, उसके स्वरूप की पहचान और समस्याओं की समझ हासिल करना संभव है । समाज को समझने के लिये साहित्य का उपयोग करना कोई नई बात नहीं है और आजकल यह प्रक्रिया साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन कहलाती है । यद्यपि शुद्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वाले अध्येता के लिये श्रेष्ठ साहित्य और सतही साहित्य का समान महत्व होता है, फिर भी क्योंकि साहित्य का काम केवल मनोरंजन करना ही नहीं होता अत: उसके ज्ञानात्मक पक्ष और साहित्यिकता दोनों ही दृष्टियों से उसे ग्रहण करना उचित होगा । हम यह समझते हैं कि श्रेष्ठ रचनाओं में युग और जीवन की वास्तविक स्थितियां और जनआकांक्षाएँ सशक्त रूप में उपस्थित होती हैं । महान लेखक की सामाजिक चेतना भी महत्वपूर्ण होती है, और यह चेतना केवल रचना के " कथ्य " में ही नहीं बल्कि उसके रूप या शिल्प में भी अभिव्यक्त होती है । अतएव न तो समाज कोई स्थिर वस्तु है न साहित्य ही । जिस प्रकार समाज परिवर्तनशील और गतिशील है उसी तरह साहित्य भी विकसित होता रहता है । समाज

और साहित्य का सम्बन्ध सरल नहीं अपितु किंचित जटिल होता है । साहित्य किसी समाज का इतिहास और अखबारी रिपोर्टिंग नहीं होता बल्कि वह कल्पना के द्वारा यथार्थ की पुनर्रचना करता है । अतः साहित्य अपनी कल्पना के द्वारा मानव और समाज की प्रकृति को यथार्थपूर्ण ढंग से समझने की चेष्टा करता है । साहित्य हमारी चेतना को परिष्कृत और व्यापक करता है । यह सत्ता और व्यवस्था के लिये चुनौती भी बनता है क्योंकि सुन्दर-सुखी मनुष्य और समाज इसका ध्येय होता है । जब हम हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी जीवन की छवि की बात करते हैं तो यह उचित जान पड़ता है कि हम जीवन से अपना आशय स्पष्ट करें तथा उपन्यासों में जीवन के अंकन के स्वरूप को भी समझें ।

जीवन या लोकजीवन : परिभाषा तथा स्वरूप - निर्धारण :-

जीवन एक बहुअर्थबोधी शब्द अथवा पद है । इसके अनेकों शब्द-कोषी अर्थ मिलते हैं तथा इसके पूर्व " जन " तथा " लोक " जैसे शब्द-खण्ड अक्सर जोड़े जाते हैं । अंग्रेजी में इसके लिये folk तथा people जैसे शब्द समानार्थक रूप से प्रयुक्त होते हैं । जीवन से हमारा आशय वस्तुतः जनजीवन और लोकजीवन की अर्थच्छाया से ही सम्बन्धित है । लोक से संसार, जगत, निवासी, स्थान, प्रदेश, दिशा, लोग, जन-समाज, प्राणी आदि अर्थ व्यंजित होते हैं ।[1] अंग्रेजी में folk

---

1· संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, काशी नागरी प्रचारणी सभा

शब्द का अर्थ जन साधारण, जनता, लोग [1] वाला होता है । लोक शब्द में अनेक शब्दखण्डों के जुड़ने से लोक रीति, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोक - साहित्य, लोकवार्ता, लोकगीत, लोककथा, लोक आख्यान जैसे अनेकों शब्द बनते हैं । People का अर्थ लोग, सामान्य जनता, जनसाधारण तथा जाति (Nation) [2] के संदर्भ में लगाया जाता है । इस प्रकार हमने यहाँ जीवन का प्रयोग लोक जीवन और जनजीवन दोनों के अर्थों को समाहित करते हुए किंचित व्यापक रूप में किया है ।

लोक (folk) शब्द अधिकांशतः लोक संस्कृति के संदर्भ में प्रयुक्त होता रहा है । इसके अंतर्गत आम जनता में प्रचलित प्रथाओं, रीतियों, विधियों, विश्वासों, गाथाओं, गीतों सबको अंतर्भुक्त किया जाता है । एक जमाना था जब लोक (folk) शब्द का व्यवहार सभ्यता से अलग रहने वाली जनजाति के लिये किया जाता था, लेकिन आज इस शब्द का इस्तेमाल इस प्रकार से होने लगा है कि यह सभ्य और सुसंस्कृत समाज के लोगों की परम्पराओं, संस्कृति, विश्वास आदि का बोधक भी बन गया है । ऐसी लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति ही लोक जीवन है।हिन्दी का " लोग " शब्द " लोक " शब्द से ही निर्मित हुआ है जिसका अर्थ " सर्व साधारण जनता " ग्रहण किया जाता है । सामान्य जन के अर्थ में " लोक " शब्द का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है । " लोकसंस्कृति की रूपरेखा " पुस्तक में पंडित कृष्णदेव उपाध्याय बताते हैं कि साधारण जनता के अर्थ में यह " लोक " शब्द ऋग्वेद में भी कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है । " जनपद " पत्रिका के प्रवेशांक में डा॰हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका सम्बन्ध जनपद से जोड़ा है

1· अंग्रेजी - हिन्दी शब्द कोष, Father Camil Bulke रचित
2· - वही -

और कहा है कि इसका आशय नगरों और गांवों में फैली वैसी समस्त जनता से है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। " ये लोग नगर में परिष्कृत रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं। "[1]

" लोक " शब्द का निर्माण जिस लुच् धातु से हुआ है उसका संस्कृत में शाब्दिक अर्थ " देखना " है। यह देखना अपने में जिस तरह का खुलापन समेटे हुए है, उसी दृष्टियुक्तता वाला अर्थ - संदर्भ लेकर " लोकजीवन " शब्द का परवर्ती काल में अर्थ-विकास हुआ। आम लोगों का जीवन अत्यन्त सहज और स्फूर्त होता है। ऐसे लोगों के समाज में रीति-रिवाजों और गीतों आदि में भी सहजता और स्फूर्तता के गुणों को महसूस किया जा सकता है। इस प्रकार लोक शब्द का व्यवहार सामान्य जनता के परिपेक्ष्य में करना संगत है। यद्यपि जनसंस्कृति अथवा लोकसंस्कृति, रीति रिवाज, परम्परा, विश्वास, आदि तत्वों का वाहक लोक-साहित्य होता है किन्तु अलिखित होने के कारण उसके संकलन आदि की अपनी ही कठिनाइयाँ होती हैं। भाषा के साहित्य में भी जन-संस्कृति और जनसमाज का अंकन कम महत्वपूर्ण नहीं होता। जनसमाज अपने विकासक्रम में सभ्यता के गुणों को उपलब्ध तथा आयत करता चलता है तथा इस यात्रा में अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक

---

1. कृष्णदेव उपाध्याय की पुस्तक लोक संस्कृति की रूप रेखा, 1988 पृ. 10

आदि जीवन-मूल्य भी निर्मित करता चलता है । पंजाब की जनता के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्य को हिन्दी साहित्य विशेषकर हिन्दी उपन्यासों में जिस प्रकार से अंकित किया गया है, उसका अध्ययन, विवेचन और विश्लेषण ही हमारे इस प्रबन्ध का लक्ष्य है ।

आधुनिक जीवन के महाकाव्य के रूप में उपन्यास :-

कविता साहित्य की प्राचीनतम विधा है और उसकी तुलना में उपन्यास अत्यन्त अर्वाचीन है । अंग्रेजी में उपन्यास को novel सम्भवत: विधात्मक नयेपन के अर्थपन में भी कहा गया है । हमारे यहां गुजराती में उपन्यास के लिये नवल-कथा तथा नवलिका शब्दों का प्रचलन है । तेलुगु, तमिल और मलयालम में अंग्रेजी के नॉवल शब्द का ही इस्तेमाल होता है । 1740 में लिखी गई रिचर्डसन की रचना " पामेला " को विश्व का पहला उपन्यास माना जाता है । इस दृष्टि से देखें तो उपन्यास कि विधा 250 सौ वर्षों से अधिक पुरानी नहीं है । अपनी पुस्तक " साहित्य सिद्धान्त " (Theory of Literature) में रेनेवेलेक ने आक्षेप किया है कि " कविता की अपेक्षा उपन्यास के विषय में साहित्यिक सिद्धान्त तथा आलोचना मात्रा और गुण दोनों दृष्टियों से हीन है । "[1] इसका एक कारण तो कविता की विधा की प्राचीनता और उपन्यास की विधा का नयापन ही है । लेकिन रोजमर्रे की जिन्दगी

---

1. Rene Wellek and Austin Warren - Theory of literature, Ch. - 16.

के " डिटेल्स " के द्वारा उपन्यास अन्य विधाओं की तुलना में वास्त - विकता का विश्वसनीय " भ्रम " खड़ा करने में प्रभावी होता है । अतः लोकप्रियता में इसने दूसरी विधाओं को पीछे छोड़ दिया है ।

उपन्यास शब्द हिन्दी में बंगला से, नावेल के प्रतिवर्ती शब्द के रूप में, आया । हमारे देश में संभवतः सबसे पहला उपन्यास बंगला में ही लिखा गया । बहुत से लोग भवानी चरण बैनर्जी के " नवबाबू विलास " (1827) को बंगला का प्रथम उपन्यास मानते हैं लेकिन सही अर्थों में प्रथम भारतीय और बंगला उपन्यास होने का गौरव प्यारी चांद मित्र " (टेकचांद ठाकुर) के " आलालेर घरे दुलाल " (जो 1855 - 57 में एक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था) को है । हिन्दी में प्रथम उपन्यास कहलाने की दावेदार तीन रचनाएँ हैं - इंशाअल्लाह खाँ की कृति " रानी केतकी की कहानी " (1800 ई॰) पंडित गौरीदत्त की रचना " देवरानी जिठानी की कहानी " (1870 ई॰) तथा लाला श्रीनिवासदास की पुस्तक " परीक्षागुरू " (1883 ई॰) । इनमें से पहली दो रचनाएं उपन्यास के रूप में बहुत विवादपूर्ण रही हैं और अधिकांश लोगों ने परीक्षागुरू को ही हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया । वैसे विश्व उपन्यास के बीज 17-18 वीं सदी की कुछ रचनाओं में देखे जा सकते हैं । जैसे सर्वान्ते के डॉन क्विहोते, डैनियल डेफो के रोबिन्सन क्रूसो तथा जोनेथन स्विफ्ट के " गुलिवर्स ट्रेवल्स " आदि में । संस्कृत की गद्य आख्यायिकाओं जैसे बाणभट्ट की " कादंबरी " और दण्डी के " दशकुमार चरित " में भी औपन्यासिक बीज उपलब्ध किये जा सकते हैं । मराठी और कन्नड़ में उपन्यास को कादंबरी कहा जाता है -- कहीं बाणभट्ट की रचना से इसका सूत्र तो नहीं जुड़ा है ?

नाट्यशास्त्र में " प्रतिमुख " सन्धि के अन्तर्गत उपन्यास शब्द का उल्लेख हुआ है । कहा गया है, " उपन्यासः प्रसादनम् " अर्थात उपन्यास मनोरंजन के लिए । उपन्यास का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् रूप से उपस्थापन (उप + नी + घञ), " अ " अर्थात समीप (near) तथा " न्यास " = निधि (Trust) । मतलब यह कि उपन्यास हमारी अपनी निकटस्थ निधि है अर्थात अपनी भाषा में अपने जीवन की कथा है । सच तो यह है कि उपन्यास जीवन का सबसे निकटस्थ साहित्य रूप है । यह जीवन के समानांतर चलने वाला प्रतिरूप है । इस आधुनिक विधा का जन्म मध्यकाल और सामंतवाद के पतन तथा औद्योगिक पूंजीवाद के उदय से जोड़ा जाता है । अपने छोटे से जीवनकाल में ही कविता और नाटक की तुलना में उपन्यास ने बहुत जल्दी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है और यह पूंजीवादी साहित्य की प्रतिनिधि विधा बन गया है । सामंत-काल में जो महत्त्व महाकाव्य और नाटक का था, वही आज उपन्यास का है । उपन्यास में महाकाव्य, नाट्य, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज आदि का सम्मिलित गुण मिलता है और इस तरह से यह अत्यन्त सक्षम विधा बन गया है । उपन्यास में मानवीय जीवन को उसकी संपूर्णता और समग्रता में, तथ्य और गल्प के तनाव में अभिव्यक्त किया जाता है । उपन्यास का संबंध एक ओर पूंजीवाद से है तो दूसरी तरफ यथार्थवाद से भी । प्रसिद्ध मार्क्सवादी चिंतक तथा आलोचक जॉर्ज लुकाच ने उपन्यास, पूंजीवाद और यथार्थवाद के सम्बन्धों पर कई पुस्तकों के माध्यम से विचार किया जिनमें Theory of the Novel एवं Studies in European realism महत्वपूर्ण है । पूंजीवाद के आगमन के साथ मध्यवर्ग का उदय हुआ । मध्यवर्ग के विकास के साथ व्यक्तिवाद का चरम रूप भी सामने आता गया । मध्यवर्ग में सबसे अधिक

विसंगतियां होती हैं । लुकाच ने बताया कि क्योंकि उपन्यास मूल्यहीन जगत में मूल्यों की खोज करता है , अतः जिस व्यवस्था में व्यक्ति और समाज का संतुलन नष्ट हो रहा हो उस समाज में उपन्यास विशेष उन्नति करता है, जिस प्रकार सामन्ती व्यवस्था में महाकाव्य का विकास होना स्वाभाविक था, क्योंकि दोनों की चेतना अधिकांशतः मिथकीय थी, उसी प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में उपन्यास का विकास स्वाभाविक है । क्योंकि, जैसा कि लुकाच ने बताया, उपन्यास के माध्यम से मनुष्य मिथक से निकल कर इतिहास में प्रवेश करता है, पूंजीवाद व्यक्ति के अस्तित्व को वास्तविकता मानता है । समाज और प्रकृति के विरुद्ध व्यक्ति का संघर्ष ही उपन्यास का लक्ष्य होता है । इसी दृष्टि से रैल्फ फॉक्स ने अपनी पुस्तक The Novel and the People में लिखा था कि उपन्यास हमारे मध्यवर्गीय समाज का महाकाव्य है ।

यथार्थवाद का उदय भी उपन्यास के जन्म से जुड़ा हुआ है । क्योंकि उपन्यास में जीवन के व्यावहारिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है । उपन्यास मानवीय आशा आकांक्षाओं और संघर्षों की सम्पूर्ण तस्वीर खींचता है । जार्ज लुकाच मानते हैं कि उपन्यास का विकास यथातथ्य - वाद (प्रकृतिवाद = Naturalism) और यथार्थवाद (Real- ism) के संघर्ष से हुआ है । लुकाच के अनुसार यथार्थवाद एक निजी व्यक्ति के रूप में मनुष्य और एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य के बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित करता है और यह मनुष्य न तो " व्यक्तिसत्ता " रहता है और न " औसत " बल्कि यह प्रातिनिधिक (Representative) होता है । लुकाच मानते थे कि

उपन्यासों की स्वस्थ प्रवृत्ति ऐसे मनुष्यों का चरित्र प्रकाशित करना है क्योंकि ऐसा यथार्थ चित्र कोरे जीवन सत्य का प्रस्तुतीकरण नहीं होकर मनुष्य और समाज के संश्लिष्ट आर्थिक, मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है। लुकाच के अनुसार यथार्थवाद की केन्द्रीय सौन्दर्य शास्त्रीय समस्या सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व का समुचित उपस्थापन है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यथार्थवाद सामाजिक स्थितियों और सक्रिय मनुष्यों के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को चित्रित करता है और यह चित्रण समग्रता में होता है। इसी बात का हेगल ने अपनी पुस्तक Philosophy of Art में इस प्रकार रखा था कि उपन्यास मनप्राणों की कविता और सामाजिक सम्बन्धों की गद्यात्मकता का संघर्ष होता है। उपन्यासकार अपने समय और समाज में विघटित होते हुए मूल्यों की छानबीन करता है और उसकी यह खोज अपने भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्म, संस्कृति आदि के ब्योरे में जा कर यथार्थ स्थिति को टटोलती है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने बालजाक के उपन्यासों के विषय में कहा था कि उसे बालजाक के उपन्यासों के माध्यम से उस युग के बारे में जैसा ज्ञान प्राप्त हुआ, वैसा उस युग के राजनीतिज्ञों, इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों, सांख्यिकीविदों सबको मिला कर नहीं मिल सका था। लेकिन यथार्थवाद की अभिव्यक्ति का कोई निश्चित रूप नहीं होता। कहीं यह सरल रूप में मिलता है तो कहीं संश्लिष्ट रूप में। पूंजीवाद के विकास के दौर में आलोचनात्मक यथार्थवाद प्रकट हुआ। यथार्थवाद का एक अलग रूप समाजवादी देशों में समाजवादी यथार्थवाद के रूप में सामने आया और दक्षिण अमेरिका के उपन्यासों में एक अलग प्रकार का जादुई यथार्थवाद देखने को मिला| हिन्दी में उपन्यास विधा की रचनाएँ 19 वीं सदी के अन्तिम दौर में ही संभव हो सकीं। और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं

होगा कि " परीक्षागुरु " से आरम्भ होकर प्रेमचंद के आगमन के पूर्व हिन्दी उपन्यास अपना सही आकार नहीं ले पाया था । क्योंकि प्रेमचन्द ने ही अपने औपन्यासिक रचना संसार में पहली बार अपने समाज के जनजीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये ।

उपन्यास का समाजशास्त्र :-

चूँकि साहित्य में समाज द्वारा निर्मित भाषा का व्यवहार होता है अत: साहित्य को भी एक सामाजिक संस्थान के रूप में देखा गया है । साहित्य के शिल्पगत औजार जैसे बिम्ब, प्रतीक, छन्द आदि सामाजिक परम्परा से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं । साहित्य में जिस जीवन को प्रतिनिधित्व मिलता है उसको सामाजिक वास्तविकता होती है । लेखक भी समाज का ही अंग होता है जो समाज के दूसरे अंग पाठक को सम्बोधित करता है । अत: साहित्य नितान्त व्यक्तिगत नहीं होता । इसका सामाजिक तौर पर उपयोग होता है तथा विस्तृत अर्थों में साहित्य एक सामाजिक कर्म के रूप में भी उपस्थित होता है । ऐतिहासिक आलोचना में लेखक की मनोभूमि तथा साहित्य और समाज के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, इसी संदर्भ में डि बोनाल्ड के कथन कि "साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है (literature is an expression of society)" को देखा जा सकता है । प्रत्यक्षवादी या विधेयवादी (Positivist) आलोचक तेन कला को मुख्य रूप से सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब मानता था । प्रत्यक्षवादियों (प्लेखानोव आदि) ने साहित्यिक कृतियों को ऐतिहासिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि-जाति,

वर्ग, जीवनी वातावरण आदि बाह्य तत्वों पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की थी । प्रत्यक्षवादी दृष्टि की अपनी सीमाओं के कारण स्वयं कृति (रचना या Text) ही उपेक्षित होने लगी । साहित्य को समाज का दर्पण मानना अथवा उसे जीवन की " संपूर्ण " अभिव्यक्ति मानना अनेक विवादों को जन्म देने वाला है । अतः रेनेवेलेक साहित्य को सामाजिक प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब नहीं, बल्कि उसका सार (essence) यथा पूरे इतिहास का सार-संक्षेप बताता है ।[1] साहित्य के समाज - शास्त्र के अन्तर्गत लेखक, पाठक और कृति का एक त्रिकोण बनता है और लेखक का पेशा, उसका सामाजिक स्तर, कृति का सामाजिक कथ्य, तथा समाज पर साहित्य के प्रभाव की त्रिपक्षीय अध्ययन किया जाता है । लेखक समाज से प्रभावित होता है तथा समाज को भी प्रभावित करता है अर्थात् साहित्य जीवन का पुनरुत्थान करने वाला ही नहीं उसे आकार देने वाला भी बन सकता है । कुछ लोग साहित्य को सामाजिक इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने वाले दस्तावेज के रूप में भी देखते हैं । मगर साहित्य में कल्पना, यथार्थ और आकांक्षाओं का समन्वय होता है । अपनी पुस्तक " राज - नीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में योगदान " (A Contribution to the Critic of Political Economy) की भूमिका में मार्क्स ने समाज के साथ कला का प्रत्यक्ष सम्बन्ध देखने वालों को चेतावनी भी दी है कि दोनों का हमेशा ठोस और सीधा सम्बन्ध नहीं होता । हालांकि साहित्य समाजशास्त्र का स्थान नहीं ले सकता फिर भी साहित्य में सामाजिक प्रासंगिकता को खोज करना गलत भी नहीं है । अन्य साहित्यिक विधाओं की बनिस्पत उपन्यास में सामाजिक सन्दर्भ कहीं अधिक वास्तविक, यथार्थ और मुखर होकर आते हैं । साधारण उपन्यासकार

---

1. Rene Wellek and Austin Warren - Theory of literature, Ch. - 9.

केवल ऐतिहासिक काल को प्रतिबिम्बित करके रह जाता है अतः उसकी कृति का केवल दस्तावेजी मूल्य (documental value) होता है किन्तु महान लेखक जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं को कृति की आन्तरिक एकता में संभालता है तथा महत् सामाजिक प्रवृत्तियों तथा मानवीय स्थितियों को सशक्त अभिव्यक्ति देता है । अतः समाज की पूर्णता से अवगत होने के लिए ऐसी कृतियों का साक्ष्य जरूरी जान पड़ता है ।

समाजशास्त्र समाज में स्थित मनुष्य का, सामाजिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का वस्तुगत तथा वैज्ञानिक अध्ययन करता है । यद्यपि साहित्य विज्ञान नहीं होता फिर भी उसका चित्रण विश्वसनीय होता है । उपन्यास का सरोकार मनुष्य के सामाजिक जगत, उसके प्रति अनुकूलता, प्रतिकूलता अथवा उसे बदलने की इच्छा से होता है । इस दृष्टि से यह समाजशास्त्र के उद्देश्य से उतना भिन्न नहीं जितना निकट होता है । उपन्यास एक हद तक समाजशास्त्रीय सामग्री को उपस्थित करता है तथा भावों और मूल्यों को भी सामने लाता है ।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से साहित्य का अध्ययन करने का अर्थ वस्तुतः साहित्यिक कल्पना के सामाजिक अभिप्राय की पहचान करना है । लेकिन साहित्य की सभी विधाओं में कल्पना एक जैसी नहीं होती । कहीं अभिव्यक्ति सीधी होती है तो कहीं प्रतीकात्मक । कहीं वह फैंटेसीमूलक होती है तो कहीं बिंबात्मक । इस कल्पना का जीवन के व्यावहारिक यथार्थ तथा मनोवैज्ञानिक अनुभव दोनों से सम्बन्ध होता है । अतः आज की समाजशास्त्रीय दृष्टि स्वयं को सौन्दर्यशास्त्रीय

प्रश्नों से अलग नहीं करती । समाजशास्त्र साहित्य को संस्कृति का एक रूप मानता है जो ज्ञान का भी रूप है और सामाजिक मूल्यों की अभि - व्यक्ति भी । अपनी पुस्तक " फिक्शन्स " में मिशेल जराफा (M. Zerraffa) ने कहा कि उपन्यास ऐसी कला है जिसमें सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित हो कर मनुष्य सामने आता है । अत: समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास अधिक सुविधाजनक होता है । कविता में आत्मपरकता बहुत अधिक होती है और वहां लय के अनेक स्तरों में सामाजिक आशय बड़े ही प्रच्छन्न होते हैं । दूसरी तरफ़ नाटक में यथार्थ की स्पष्टता: के आलोक में भी वह आशय ऐसे छिप जाता है जैसे सूर्यालोक में चांद । उपन्यास के माध्यम से समाजशास्त्रीय खोज अपेक्षाकृत विश्वसनीय निष्कर्षों तक पहुंच सकती है । इसका एक कारण यह भी है कि उपन्यास की विधा और समाजशास्त्र की विधा दोनों का उदय लगभग एक ही समय और स्थितियों में हुआ । अपनी पुस्तक "Speaking to Each-Other" में रिचर्ड होगार्ट के अनुसार उपन्यास में साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय कल्पना की जो रचनात्मक एकता मिलती है, उसी की खोज और पहचान उपन्यास के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है ।

वास्तव में आधुनिक युग में उपन्यास ने लोकप्रियता में कविता जैसी विधा को भी पीछे छोड़ दिया है । अपनी पुस्तक " उपन्यास और लोकजीवन " (Novel and the People) में रैल्फ़ फ़ॉक्स ने बताया था कि महाकाव्य विप्लव और मानवीय आशा-आकांक्षाओं की सम्पूर्ण तस्वीर खींचता था लेकिन महाकाव्य के लगभग अन्त हो जाने पर उसकी जगह के दो दावेदार हो गये । एक तो फिल्म जो रंग और

ध्वनि की जीवित कला है लेकिन अभिनय तथा दृश्य बिंबों की उसकी क्षमता बहुत कुछ सीमित होती है और दूसरा दावेदार है उपन्यास जो मनुष्य के अंतरंग तथा बहिरंग जीवन के अधिक पूर्ण चित्र देता है। इस तरह से देखें तो उपन्यास फिल्म से भी ज्यादा विस्तार और गहराई में पहुंचता है। अपने प्रभाव में भी उपन्यास महत्वपूर्ण होता है। अपने जन्म में ही उपन्यास मध्ययुगीन पतनशील सामंती व्यवस्था के विरुद्ध विरोध का स्वर था। आरम्भ से उपन्यास सत्ता, अन्धपरम्परा, अन्धनैतिकता आदि का विरोध करता रहा है। अक्सर उपन्यासों पर अनैतिकता या अश्लीलता का आरोप लगाया जाता रहा। डी·एच· लॉरेन्स का " लेडी चैटरलीज लवर " हो या जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास इन्हें अनैतिकता का आरोप झेलना पड़ा। दूसरी ओर धार्मिक-राजनैतिक कारणों से भी उपन्यासों को खतरनाक समझा जाता रहा है। हाल में सलमान रुश्दी के उपन्यास " सैटानिक वर्सेस " के लिए धर्मान्धों के द्वारा मृत्यु दण्ड की सजा सुनाई गई, जिससे जाहिर होता है कि उपन्यास निहित स्वार्थों के लिये खतरनाक भी साबित हो सकते हैं। अपनी पुस्तक " साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका "[1] में उपन्यास के समाजशास्त्र पर डॉ·मैनेजर पांडेय ने विस्तार से विचार किया है और उपन्यास को यथार्थ अभिव्यक्ति की " वस्तु " ही नहीं " कला " मानने का आग्रह किया है। डॉ· पांडेय ने अपने विवेचन क्रम में बताया है कि दुनिया के हर साहित्य में उपन्यास का उदय समान कारणों से नहीं हुआ और न उनका समान स्वरूप ही है। यूरोप में जिस तरह उपन्यास विकसित हुआ उससे कुछ भिन्न ढांचे पर भारत में। यहां तक कि तीसरी दुनिया के देशों में तथा अफ्रीका में उपन्यास का चेहरा अलग ढंग का मिलता है।

1· मैनेजर पांडेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका

डॉ•पांडेय लिखते हैं कि " उपन्यास का स्वभाव ऐसा है कि वह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति से भागकर उपन्यास नहीं रह सकता, लेकिन केवल सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण कोई उपन्यास कलात्मक कृति नहीं हो जाता । "[1] यथार्थ का कलात्मक चित्रण ही उपन्यास को महत्वपूर्ण बनाता है लेकिन इस बात की सावधानी रखनी होती है कि घोर व्यक्तिवादी उपन्यासकार की चेतना में भी समाजबोध घुला हुआ होता है । दूसरी ओर घनिष्ठ सामाजिक वस्तु का उपस्थापन करने वाला उपन्यासकार भी सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करता नजर आ सकता है । यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि उपन्यासकार का अपना जीवन और विचार तथा उपन्यास में अंकित विश्वदृष्टि में अलगाव हो सकता है । डा•मैनेजर पांडेय के शब्दों में – " असल में समाज के इतिहास के यथार्थ की विकास प्रक्रिया की अनिवार्यताओं और संभावनाओं को, राष्ट्रशील शक्तियों के अंत की अनिवार्यता और प्रगतिशील शक्तियों के विकास की संभाव - नाओं को देखने में ही यथार्थ की विजय है । यहां इतिहास प्रक्रिया की अनिवार्यताओं और संभावनाओं को देखने-दिखाने की क्षमता ही विचारधारा है । इस क्षमता के कारण ही कोई रचना यथार्थवादी होती है । "[2] अतः उपन्यास ही स्वयं अपना उद्देश्य और विचार-धारा प्रकट कर देता है और उसके लिए उपन्यासकार के किसी वक्तव्य की अपेक्षा नहीं होती । एक रचना के रूप में उपन्यास यथार्थ अनुभव

1• मैनेजर पांडेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ• 232

2• मैनेजर पांडेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – पृ• 239•

को कलात्मक कृति में रूपांतरित करता है । एक ही समय और समाज की घटनाओं को लेकर कोई लेखक श्रेष्ठ उपन्यास की रचना करता है तो कोई घटिया लेखन करता है ।

रेमंड विलियम्स ने अपनी पुस्तक " संस्कृति और समाज " में उन्नीसवीं सदी के कुछ उपन्यासों में चित्रित ब्रिटेन के समाज और उसकी चेतना का स्वरूप स्पष्ट किया है ।[1] उनके विचार में व्यक्ति और समाज दोनों में से किसी को मुख्य या गौण नहीं माना जा सकता । अत: उपन्यासों में किसी समुदाय की यथार्थपूर्ण ध्वनि अंकित करने के लिये व्यक्तियों के गुणों के माध्यम से समग्र जीवन पद्धति के गुणों और विशेषताओं का सृजन और मूल्यांकन किया जाता है । उदाहरण के तौर पर उपन्यासों के माध्यम से पता चलता है कि कथा में वर्णित समाज पूंजीवाद जैसी सामाजिक बुराइयों को पहचानता तो है किन्तु संघर्षरत होने के बजाए बचने तथा आत्मलीन होने की कोशिश करता है ।

रैल्फ फॉक्स [2] उपन्यास को मात्र कथात्मक गद्य न मानकर जीवन का गद्य मानते है । जोउन रॉक्वेल " फैक्ट इन फिक्शन " में लिखती हैं कि " कथा साहित्य समाज की उपज है । वह समाज का सृजन करता है । " [3] कथा साहित्य यथार्थ से सम्बन्धित होता है ।

---

1. Raymond Williams Culture and Society.

2. रैल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोक-जीवन, अनु॰ नरोत्तम नागर पृ॰2

3. John Rockwell - Fact in Fiction. P. viii

वह यथार्थ का प्रस्तुतीकरण ही नहीं बल्कि सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन का भी अंग है। " डॉ० हरदयाल अपने निबन्ध - " साहित्य और सामाजिक मूल्य " में स्पष्ट करते हैं कि साहित्य में दपर्ण की तरह काल-विशेष में समाज द्वारा स्वीकृत मूल्य विधि और निषेध दोनों का प्रतिबिंब दिखाई देता है .... । सामाजिक मूल्य आचरण प्रतिमानो के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। वे न शाश्वत होते हैं और न निरपेक्ष। उनमें सदा परिवर्तन होता है। साहित्य भी इस बदलाव को अपने में आत्मसात करता है। " साहित्य में संघर्ष और परिवर्तनशीलता "[1] नामक लेख में यही लेखक साहित्यकार और समाज दोनों को एक दूसरे से प्रभावित मानते हैं।

अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार की रचना में जाने-अनजाने उसके समाज या समुदाय की ध्वनि अंकित हो जाती है। ऐसे उपन्यासों में उस समुदाय के लोक जीवन की यथार्थपूर्ण अभिव्यक्ति जीवंत हो उठती है, जिसमें जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक आदि प्राय: सभी पहलू आ जाते हैं।

अपनी परंपरागत विकास-प्रक्रिया में उपन्यास आरंभ में यथार्थ - वाद से जुड़ा रहा लेकिन इस सदी के मध्यवर्ती समय के आसपास यूरोप में " नया उपन्यास " (New Novel) का आन्दोलन चला और साथ ही साथ आधुनिकतावाद और आवांगार्द (Avant Gardism) का आगमन हुआ जो उपन्यास और यथार्थवाद के पुराने ढांचे को तोड़

1• डा• हरदयाल, 'साहित्य और सामाजिक मूल्य' पुस्तक में संकलित।

कर विकसित होना चाह रहा है । उपन्यास की समाजशास्त्रीय आलोचना में भी परिवर्तन होते रहे हैं । आरम्भ में विधेयवाद को इस समाजशास्त्र ने औजार बनाया था । समाजशास्त्र और विधेयवाद दोनों का जनक एक ही था-आग्युस्त कोंत (Aguste Comte)। बाद में यथार्थवाद की अवधारणा मार्क्सवादी चिंतक और आलोचक जार्ज लुकाच के द्वारा विवेचित हुई जिसे दूसरे मार्क्सवादी आलोचक लूसिएं गोल्डमान (Goldmann) ने आगे बढ़ाया और उसने संरचनावादी औजारों का भी इस्तेमाल किया । संरचनावादी आलोचक साहित्य को सामाजिक संदर्भ से अलग स्वतंत्र और स्वायत्त संसार मानते हैं । अत: संरचनावाद वास्तव में यथार्थवाद-विरोधी आलोचना पद्धति ठहरता है । उपन्यास को सामाजिक संदर्भों से काट कर देखना वास्तव में यथार्थ को झुठलाना है क्योंकि उपन्यास से सामाजिक संदर्भ निकाल लिये जायें तो उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं बचेगा । हाल के दिनों में मिखाईल बाख्तिन की उपन्यास सम्बन्धी आलोचना चर्चा का विषय बनी है । बाख्तिन के अनुसार " उपन्यास में सामाजिक वाणी की विविधता और वैयक्तिक स्वरों की विविधता का, कलात्मक गठन होता है ।[1] वास्तव में बाख्तिन मनुष्य के अंतर्जगत और बहिर्जगत के अलगाव को रचना में स्वीकार नहीं करते ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास जीवन, समय, और समाज से सर्वाधिक जुड़ा होता है । हमारे देश का उपन्यास लेखन इस अर्थ में यूरोप के उपन्यासों से अलग है कि यहां पर उपन्यास तब पैदा हुआ था जब हमारे यहां न तो

---

1. मैनेजर पांडेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - पृ. 249.

औद्योगिक पूंजीवाद विकसित हुआ था और न मजबूत मध्यवर्ग ही उपस्थित हुआ था । देशी सामन्तवाद और विदेशी साम्राज्यवाद के दो पाटों में देश पिस रहा था । गुलामी से छुटकारा पाना सबसे बड़ी समस्या थी । उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिये राष्ट्रीय चेतना लाने में हमारे यहां के उपन्यासों ने बड़ी भूमिका निभाई । किसी भी जाति की परम्पराओं की जड़ों की खोज में ही नहीं बल्कि वर्तमान की कटु वास्तविकताओं से संघर्ष में भी उपन्यास मददगार साबित होते हैं । उपन्यास एक प्रकार से अतीत और वर्तमान के इतिहास का वाहक बनता है । यशपाल के " झूठा-सच " जैसे उपन्यास में तो जैसे इतिहास अपना वास्तविक चेहरा ले कर ही उपस्थित हो गया है । दूसरी ओर उपन्यास मिथकीय ऊँचाई पर पहुँच कर भी जीवन सत्य का उद्घाटन करते हैं । ऐसे उपन्यास जिनमें महाकाव्यात्मक गरिमा होती है वे भी आंदोलनों, हड़तालों और सामाजिक संघर्षों अर्थात जनसमुदाय की जीवन कथा को ले कर रचे जाते हैं ।

शुरू-शुरू में हिन्दी उपन्यास अंग्रेजी तथा बंगला की मानो परछाँई बने हुए थे अथवा तिलस्मी, ऐय्यारी और जासूसी से सम्बन्ध रखते थे । इस का एक कारण यह कहा जा सकता है कि उन दिनों हिन्दी गद्य का रूप भी स्थिर नहीं था । इसीलिए उपन्यास का रूप भी स्थिर नहीं हो पाया था । भारतेन्दु युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी गद्य के स्थिर होते ही उपन्यासों का भी विकास गति पकड़ता गया । हालांकि हिन्दी में उपन्यास का नाम तथा ढांचा बंगला के मार्फत अंग्रेज़ी से आया फिर भी हिन्दी उपन्यासकारों ने उत्तम रचनाओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा इसे हिन्दी की विधाओं के

अनुकूल बना लिया अन्यथा हमारे देश में उपन्यास के विकास के लिये परिस्थितियां यूरोप से बिल्कुल ही भिन्न थीं । न तो हमारे यहाँ जागरूक औद्योगिक पूंजीवाद था, न मध्यवर्ग, न स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व ही ॥ मादाम दस्ताल के अनुसार उपन्यास का विकास उन्हीं समाजों में होता है जहां स्त्रियों का स्थान ऊँचा हो और व्यक्तिगत जिंदगी में लोगों की गहरी दिलचस्पी हो ॥ उन दिनों व्यक्तिवादी प्रवृत्तियां ही प्रखर हुई थीं । अतः यह समझना गलत नहीं होगा कि हिन्दी उपन्यास पश्चिमी उपन्यासों के पैटर्न पर विकसित न हो कर स्वतंत्र रूप से विकसित हुए । और यह स्वतंत्र व्यक्तित्व राष्ट्रीय चेतना के कारण संभव हुआ । पूरे भारतीय उपन्यास साहित्य में बीसवीं सदी के आरम्भ से ले कर मध्य तक कृषक जीवन, सामंती और साम्राज्यवादी शोषण तथा इनसे जनता का जुझारू संघर्ष ही औपन्यासिक अन्तर्वस्तु रहे हैं । उपन्यासों के माध्यम से जीवन के विविध-क्षेत्रों की समस्याओं का साक्षात्कार करना संभव हुआ है । इस बात को हिन्दी उपन्यासों के शैशव के दृष्टा और साक्षी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी महसूस किया था और लिखा था कि – " उपन्यास जातीय अनुभवों, जीवन के यथार्थ और समस्याओं के यथार्थवादी चित्रण का माध्यम है । " [1]

प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक यथार्थ को खुली नज़रों से देखा था और जमींदारों, किसानों तथा मज़दूरों में से विविध मानव चरित्रों को उपस्थित किया । उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से किसानों की सामाजिक, चेतना को तथा समाज के विभिन्न वर्गों की राष्ट्रीय चेतना

---

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 366

को उभारा अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को उन्होंने बहुत कुछ दस्तावेजी विश्वस्नीयता की तरह चित्रित किया । अछूत, धार्मिक अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता, आर्थिक सामाजिक शोषण, राजनैतिक पराधीनता आदि सभी समस्याएँ उनके उपन्यासों में यथार्थपरक ढंग से चित्रित हुईं । वास्तव में प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यासों के लिए नींव का मजबूत पत्थर यथार्थवादी लेखन की मजबूत परम्परा-डाल रहे थे । बाद के उपन्यासकारों ने प्रेमचन्द की परम्परा को ही नहीं आगे बढ़ाया बल्कि उपन्यास के ढांचे के विभिन्न क्षितिजों की भी खोज की ।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों का पुख्ता आधार प्राप्त होते ही हिन्दी भाषी तथा इतर क्षेत्रों के जीवन का यथार्थपरक चित्रण प्रेम - चन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में होने लगा । पंजाब के जीवन से सम्बन्धित अनेकों महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गये और कुछ उपन्यासकार तो पंजाबी जीवन का चित्रण करने के कारण ही श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में समादृत भी हुए । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की उपजीव्य सामग्री ऐसे ही उपन्यास - कारों की औपन्यासिक कृतियां हैं जिन पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना समीचीन होगा ।

पंजाबी जीवन को चित्रित करने वाले हिन्दी उपन्यास और उपन्यासकार :-

भारतीय समाज की एक बड़ी विशेषता यहां की सामासिक संस्कृति रही है । यहां की विभिन्न जातीयताएँ अपने वैशिष्ट्य के साथ विराट राष्ट्रीय सामाजिक धारा में प्रवाहित होती हैं । अत: भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक ही साथ जाति एवं देश की दो सम्मिलित चेतनाएँ बेहद जटिल एवं संश्लिष्ट रूप में कार्यरत रहती हैं । इन्हें अलगा पाना अक्सर

कठिन होता है । पंजाबी जीवन की अभिव्यक्ति पंजाबी के उपन्यासों में होना तो स्वाभाविक ही है, किन्तु यह भी उतनी ही स्वाभाविक बात है कि पंजाबी मानसिकता भारतीय मानसिकता का अविच्छेद्य घटक है । अतः स्वयं पंजाबी भाषा में लिखने वाला उपन्यासकार एक ही साथ पंजाबी और भारतीय दोनों होता है । अतः भारतीय उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया तथा निश्चित जातीय घटक का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन और विश्लेषण करना जरूरी है । पंजाबी साहित्य के आलोचक डॉ॰ हुतिन्द्र सिंह नूर ने रामसरूप अणखी के एक उपन्यास की समीक्षा के प्रसंग में ऐसे अध्ययन के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा था - " पंजाबी समाज का एक समूचे परिवार के रूप में कभी विश्लेषण नहीं किया गया था । यह काम काफी कठिन है । टाल्सटाय जैसे रूसी उपन्यासकार यह करते रहे हैं । रूसी क्रान्ति से पूर्व संघर्षशील रूसी लोगों की चेतना बनाने में ऐसे गल्प ने बहुत बड़ा रोल अदा किया था । पंजाबी में ऐसे स्तर पर उपन्यास का रचे जाना स्वतंत्र तौर पर भी पंजाब के सांस्कृतिक और सामाजिक विश्लेषण की जरूरत को अंकित करता है । यदि हमने इस प्रकार के तार्किक विश्लेषण में से पंजाबियों को देखा-परखा होता तो शायद आज का पंजाब-संकट किसी दूसरी तरह का होता या यह संकट होता ही नहीं । " [1] बात यह है कि उपन्यास अखबारी रिपोर्टों की अपेक्षा कहीं अधिक मार्मिक और विश्वसनीय होता है । अखबार तो सतही, स्थूल और

---

1. कहानी एक गाँव की - रामस्वरूप अणखी के उपन्यास " कोठे खड़क सिंह " का सुदीप द्वारा हिन्दी अनुवाद.
(भूमिका में उद्धृत)

सांख्यिकी परक रपट पेश करते हैं, जबकि उपन्यास जीवन की अन्तर्बाह्य हलचलों और आकांक्षाओं को व्यंजित करता है। हिन्दी के उपन्यासों में भी पंजाब का जीवन अपनी तमाम सच्चाइयों के साथ अंकित हुआ है और यह हिन्दी लेखकों के अपनी जड़ों से जुड़े रहने का एक प्रमाण भी है। इन लेखकों के लिए हिन्दी विजातीय भाषा नहीं है बल्कि वे इसमें मातृभाषावत्, सहजता के साथ कलात्मक अभिव्यक्ति करते रहे हैं।

हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन की लम्बी और पुरानी परम्परा रही है। उपन्यास के क्षेत्र में भी पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में पंजाब से अनेक हस्ताक्षर हिन्दी को मिलते रहे हैं। अपने अध्ययन के क्रम में हम उन्हीं हिन्दी उपन्यासकारों के उपन्यासों का जिक्र करेंगे जिनमें पंजाबी जीवन का चित्रण किंचित गहराई और विस्तार से हुआ है और इसीलिए वे हमारे लिए महत्वपूर्ण बन गये हैं।

<u>यशपाल</u> प्रेमचन्द ने भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना और मुक्ति संग्राम को अपने उपन्यासों में महाकाव्यात्मक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया था, यशपाल ने उस संघर्ष-गाथा को और भी आगे बढ़ाया। यशपाल अपने उपन्यासों में जीवन और समाज के विभिन्न रंगों को उनके यथार्थ रूप में समेटते हुए चलते हैं। उनका यथार्थ अधिकांश रूप में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है। अतः उनके उपन्यासों में वर्ग चेतना, सामाजिक द्वन्द्व, वर्ग-संघर्ष, शोषितों के प्रति सहानुभूति, जैसे विचार देखने को मिलते हैं। उनके कथा-साहित्य में उनके राजनीतिक-सामाजिक अनुभव और विचार लक्षित होते हैं। उन्होंने स्वयं राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लिया और सरदार भगतसिंह तथा

आजाद जैसे क्रान्तिकारी शहीदों का उनका साथ रहा । ऐसे रोमांच - कारी जीवन के अनुभव उनके उपन्यासों में एक नया ही रंग भर देते हैं। उनके " मनुष्य के रूप ", " दादा कामरेड ", " झूठा-सच ", " मेरी तेरी उसकी बात " आदि उपन्यासों में राजनीतिक क्रान्तियों और आन्दोलनों का यथार्थ चित्रण है । यशपाल महसूस करते हैं कि जनता के सहयोग के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता । " दादा - कामरेड " में हरीश इसी आधार पर अपनी पार्टी से अलग हो कर मजदूरों की बस्ती में रह कर कार्य करता है । उसके अनुसार शोषित और दलित वर्ग में वर्ग चेतना जगा कर तथा उन्हें एकजुट करके ही क्रान्ति लाई जा सकती है । यहां वे आतंकवाद की भर्त्सना करके मार्क्सवादी विचार धारा में निष्ठा जगाते हैं ।

" मनुष्य के रूप " में यशपाल जी ने अनेक चरित्रों की सृष्टि की है तथा एक ही चरित्र के कई रूप भी दिखाए हैं । परिस्थितियों के घात-प्रतिघात मनुष्य के बदलते हुए रूप को उसके यथार्थ रूप से कहीं अधिक परिवर्तित रूप में प्रकट करते हैं । कथा में अन्तर्मुखी द्वन्द्व अधिक नहीं उभर पाए हैं, क्योंकि उपन्यासकार का उद्देश्य 'सोमा' की बहिर्गत परिस्थितियों को चित्रित करना था ।[1] उपन्यास की कहानी पहाड़ी-प्रदेश से शुरू हो कर लाहौर, बम्बई तथा कानपुर जैसे बड़े शहरों में घूमती है । इससे इन शहरों के रहन-सहन तथा जीवन-प्रणाली का अंकन उपन्यास में हुआ है । विधवा, मजबूर और असहाय नारी पर तो अत्याचार होता ही है परन्तु अमीर पिता की लाडली पुत्री, स्वतन्त्र दिखाई देने वाली

---

1. डा. प्रेम भटनागर, हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य पृ. 171

उच्च शिक्षिता मनोरमा भी समाज के बन्धनों और अत्याचारों से नहीं बच सकती । समाज में नारी की वर्तमान स्थिति को यशपाल ने खोल कर रख दिया । पुलिस के हथकंडे, मध्य वर्ग के चोंचले, अशिक्षित निम्न वर्ग के लोगों की असहाय अवस्था, आर्य-समाज की भूमिका तथा फिल्म जगत का घृणित परिवेश सबका पर्दाफ़ाश इस उपन्यास में किया गया है । यहां सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर प्रहार करके भी लेखक इसे एक रोमानी कथा से ऊपर नहीं उठा पाये । उपन्यास स्वतंत्रता - संग्राम के आन्दोलनों और विश्व-युद्ध की परिस्थितियों को छू कर भी अन्त में असफल प्रेम-कहानी में परिणत हो जाता है ।

" झूठा-सच " यशपाल जी की कला का एक उत्कृष्ट नमूना है । डॉ॰माहेश्वर इसे " गोदान " और " शेखर: एकजीवनी " जैसे उपन्यासों के समकक्ष रखते हुए कहते हैं कि " ये ही तीन उपन्यास हिन्दी कथा लेखन में आज भी मील के पत्थर बने हुए हैं और इन्हें पीछे छोड़ जाने वाली औपन्यासिक कृतियां नहीं लिखी जा सकती हैं । "[1] दो भागों में उपलब्ध यह उपन्यास आजादी से पहले का अविभाजित पंजाब और आजादी के बाद के पूर्वी पंजाब और देश की राजधानी दिल्ली का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करता है । इसमें 1942-57 तक के समय के बीच बदलती हुई, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । पहले भाग " वतन और देश " में आजादी से पूर्व के लाहौर शहर का यथार्थ पूर्वक चित्रण किया गया है । इस अंकन

---

1. लेख, " झूठा-सच " : सच का स्थान या स्थानी सच, डा॰माहेश्वर (क्रान्तिकारी यशपाल-एक समर्पित व्यक्तित्व) पृ॰ 132

में यहां मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के लोगों की जीवन प्रणाली, रहन-सहन, रीति-रिवाज, मानसिकता और चारित्रिक विशेषताएँ बड़े विस्तार से रखी गई हैं। इसके साथ-साथ स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलनों, क्रान्तियों, विभिन्न पार्टियों की गतिविधियों के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार की कूटनीतिक और सियासी चालों तथा कुछ अवसरवादी नेताओं के प्रयासों से उत्पन्न पाकिस्तान की मांग और साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण भयावह रूप में हुआ है। इन दंगों के मूल में अंग्रेज सरकार, संकीर्ण धर्म तथा सियासी समाचारपत्रों की जो भूमिका रही उसका पर्दाफ़ाश भी जोर-शोर से किया गया है। इन दंगों में पिसने वाले आम-आदमी की दयनीय दशा विशेषकर महिलाओं की दुर्दशा हृदय-विदारक बन पड़ी है।

यशपाल के अनुसार देश का सही नेतृत्व मजदूर और किसान ही कर सकते थे, लेकिन साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने हित के लिए साम्प्रदायिकता की आड़ में इस वर्ग में चेतना उत्पन्न होने से पहले ही देश की बागडोर पूंजीपतियों के हाथ में सौंप दी।

उपन्यास का दूसरा भाग " देश का भविष्य " आजादी के तुरन्त बाद का चित्र प्रस्तुत करता है। सीमाप्रान्त प्रदेशों, राजधानी दिल्ली तथा पहाड़ी प्रदेश नैनीताल में भी शरणार्थी शरण लेते हैं। अच्छे-अच्छे घरों के लोग लुट-पिट कर शरणार्थी कैम्प में नाना प्रकार की असुविधाएँ झेलते हैं। भले घरों की स्त्रियां और लड़कियां घर से बाहर प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करने को मजबूर होती हैं और लोगों की गलत नज़रों का शिकार बनती हैं। अवस्थी और मिसेज पंत जैसे नेता भी इनकी मजबूरी का फ़ायदा उठाना चाहते हैं। आजाद भारत की

शुरुआत ही भ्रष्ट नौकरशाही, राजनीति और सड़े हुए मूल्यों से ग्रसित होकर या फिर एक मूल्यहीन समाज के रूप में हुई । विभिन्न राज - नीतिक दल चुनाव में जीतने के लिए कूटनीतिक चालें चलते हैं । ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और भाई-भतीजावाद का बोल - बाला है । गरीब जनता की कहीं सुनवाई नहीं । किन्तु उपन्यास का अंत सूद जैसे नेता की हार के साथ सुनहरे कल की आशा ले कर समाप्त होता है । हालाँकि जनता अचेत और सही नेतृत्व से वंचित थी फिर भी यशपाल को जनशक्ति में असीम विश्वास था । उन्हें जनता के जागरण में असीम दृढ़ आस्था थी । वे " झूठा-सच " उपन्यास का अंत इस भविष्यवाणी के साथ करते हैं कि " जनता सदा मूक नहीं रहती । देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है । "[1] ये पंक्तियाँ स्वयं उपन्यास की सार्थकता की दिशा में संकेत करती हैं ।

" झूठा-सच " यशपाल के औपन्यासिक लेखन का सर्वोच्च शिखर है । इसका पहला भाग " वतन और देश " 1958 में " धर्मयुग " में धारावाहिक प्रकाशन के रूप में सामने आया था और दूसरा भाग - " देश का भविष्य " 1960 में छपा । प्रेमचन्द की विरासत को गंभीरता से संभालते हुए यशपाल उसे समाजवादी दिशा की ओर अग्रसर करते हैं । मार्क्सवाद के रूप में विवेक सम्मत और वैज्ञानिक समझ उन्हें प्राप्त थी और उपन्यास लेखन में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति उनका कलात्मक ध्येय था । भारत और पंजाब की जनता की समस्याएँ उनकी चिंता के

---

1. यशपाल - " झूठा सच - भाग-2 " पृ. 616.

केन्द्र में थीं । " झूठा-सच " भाग-2 के " समर्पण " में उन्होंने लिखा था - " झूठा सच " में सच को कल्पना से रंग कर उसी जन-समुदाय को सौंप रहा हूं जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच्चाई के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नही छोड़ता । " इसके चौदह वर्ष पश्चात् अपने एक और उपन्यास " मेरी तेरी उसकी बात " ॥ 1974 ॥ के " समर्पण " में उन्होंने एक बार फिर लिखा - " मैं, तुम वो स्वतंत्रता के लिए जूझकर, अपने विचार में स्वतंत्र होकर भी छटपटा और सिसक रहे हैं, वही मेरी तेरी उसकी बात ··· मेरे तेरे उसके विचार के लिए । " प्रेमचन्द की परम्परा में ही यशपाल शोषित-पीड़ित जनता की दशा के प्रति चिन्तित प्रतीत होते हैं ।

" झूठा-सच " का " कैनवस " बहुत बड़ा है और यह आधुनिक भारतीय इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण समय को चित्रित करता है । 1947 में भारत को एक बहुत बड़ा मूल्य चुका कर खंडित आजादी मिली । साम्प्रदायिकता के पागलपन ने पंजाब और बंगाल को घृणा और अमा - नुषिक हिंसा की नारकीय ज्वाला में झोंक दिया था । आदमी जानवर से भी नीचे गिर गया था । देश के दो टुकड़े होने के साथ जो दंगे भड़के उनके वात्याचक्र में लाहौर की भोलापांधे की गली के लोग फँस गये । इस मुहल्ले के लोगों के उजड़ने और टूट कर सूखे पत्तों की भाँति बिखर जाने की कहानी " झूठा सच " का पहला भाग कहता है । देश का एक टुकड़ा " वतन " ॥ पाकिस्तान ॥ और दूसरा टुकड़ा " देश " ॥ भारत ॥ बन गया । लाहौर के हिन्दू परिवार " वतन " से " देश " में आकर भटकते हुए बसने की कोशिश करते हैं । यशपाल साम्प्रदायिकता के सवाल के रू-ब-रू खड़े होकर, जूझते हुए, उसे समझना

चाहते हैं । इस क्रम में वे देश का विभाजन, स्वाधीनता आन्दोलन, आजादी के बाद देश की राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था, भ्रष्ट नौकरशाही आदि का विशद विश्लेषण करते हैं ।

उपन्यासकार यशपाल ने "झूठा सच" में मध्यवर्ग के उस दो-मुहेंपन को प्रस्तुत किया है जिसका सैद्धान्तिक पक्ष तो प्रगतिशील प्रतीत होता है लेकिन व्यवहार में वह संकीर्ण, स्वार्थी, प्रतिक्रियावादी और अमानवीय भी होता है । मध्यवर्गीय युवक-युवतियों के प्रेम, आकांक्षाओं और आदर्शों के माध्यम से यशपाल ने सामाजिक वर्गीय ढाँचे, नैतिकता आदि की कुरूपता को बेनकाब किया है । पंजाब के विघटन की – पंजाबी समाज के त्रासद समय की कथा कहते हुए यशपाल पंजाब की जनता के भीतरी-बाहरी संघर्षों के उस दौर को उपस्थित करते हैं जब भयंकर पीड़ा झेलकर नवस्वतंत्र देश में नये आदमी का जन्म हो रहा था । नारी स्वातंत्रता की समस्या यशपाल की एक प्रमुख चिन्ता रही है । शीलो, उर्मिला, बन्ती, कनक, तारा, श्यामा आदि नारी-चरित्रों के माध्यम से उन्होंने समाज में नारी की विभिन्न भूमिकाओं और उसके संघर्ष को स्थापित किया है । यह सच है कि " झूठा-सच " में कृषक और श्रमिक वर्ग के विविध पहलू चित्रित नहीं किये गये जो संभवत: यशपाल के अनुभव-जगत की सीमा थी । लेकिन हिन्दु-मुस्लिम समाज के अन्तर्विरोधों को यशपाल बड़ी कुशलता से उजागर कर सके हैं और इस प्रक्रिया में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के घृणित चेहरे को सफलतापूर्वक बेनकाब किया है ।

यशपाल अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के तहत विभिन्न कांग्रेसी और पूंजीवादी तत्वों के द्वारा जनता के शोषण और भ्रष्टाचार का कच्चा चिट्ठा पेश करते हैं। जयदेव पुरी खोखले बुद्धि जीवियों के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने निजी स्वार्थों के लिए जनता से विश्वासघात करता है और वहीं उसकी बहन तारा जनता की सेवा के लिए भावुक ढंग से समर्पित रहती है। यहाँ सूद और प्रसाद जैसे कपटी चरित्र मिलते हैं जो पूंजीपतियों के हाथों में देश को गिरवी रखने से नहीं हिचकते। यशपाल यह भी दिखाना नहीं भूलते कि जनता के पक्ष में लड़ने वाले चड्ढा जैसे नि:स्वार्थ मार्क्सवादी किस तरह सताये जाते हैं। तारा, प्राणनाथ, कनक और चड्ढा पंजाबी और भारतीय समाज के ऐसे सशक्त चरित्र हैं जो अपनी वैचारिक और चारित्रिक दृढ़ता के कारण देश के भविष्य के प्रति उम्मीद जगाते हैं।

आलोचकों के द्वारा " झूठा-सच " पर झूठे सच्चे आरोप भी लगाये जाते रहे हैं। अपने एक लेख में डा॰ माहेश्वर ने आरोप लगाया था कि " झूठा सच " के प्रमुख पात्रों की केन्द्रीय समस्या उनका यौन जीवन है जिसके चलते लेखक की पकड़ और जीवन-दृष्टि सीमित हो जाती है।[1] लेकिन यदि हम " झूठा सच " की संरचना को सही तरह से समझने की कोशिश करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यशपाल भारतीय समाज के समस्त संस्कारों में धंसी हुई कुंठा को सामने लाना चाहते हैं। व्यक्ति की यौन तथा प्रेमाकांक्षाओं को पूंजीवादी समाज किस तरह अपने अर्थप्रधान नैतिक दृष्टिकोण से कुचलता रहता है,

---

1· "झूठा सच " सच का स्थान या स्थानी सच -(मधुरेश द्वारा सम्पादित " क्रान्तिकारी यशपाल एक समर्पित व्यक्तित्व")
पृ॰ - 133·

इसे दिखलाना यशपाल का उद्देश्य प्रतीत होता है । अर्थतन्त्र का सबसे मारक प्रहार नारी पर होता है और वह पुरूष-प्रधान व्यवस्था के सारे आक्रोशों का शिकार होती है । सामाजिक-राजनीतिक भ्रष्टाचार किस तरह सेक्स को मोहरा बनाता है - इसे यशपाल छिपाना नहीं चाहते । इस दृष्टि से यह मध्यवर्गीय जीवन का सफल अंकन है । आरोपों के जवाब में यशपाल का कहना था कि, " कुछ लोगों को उपन्यास पसन्द नहीं आया । वह उन्हें बहुत सीधा लगा । और कुछ लोगों को वह इसलिए पसंन्द नहीं आया क्योंकि सूद और जयदेव में उन्हें अपने ही चेहरे दिखायी दिये । "[1] ई॰चेलिशेव " समस्या के महत्व एवं गहराई तथा महान सामग्री के क्षेत्र की दृष्टि से " झूठा-सच " की तुलना मिखाइल शोलोखोव के " क्वाइट फ्लोज दि डॉन " तथा अलेक्सी टॉलस्टाय के " रोड टु कैण्टबरी " जैसे कालजयी उपन्यासों से करना चाहते हैं । [2]

डॉ॰ रांगेय राघव ने पंजाब के आस-पास के क्षेत्र के प्रागैतिहासिक काल की एक अति मनोरम कल्पना प्रसूत तथा " मुर्दों का टीला " में प्रस्तुत की । वे अपनी कृतियों में विषय-वस्तु की विविधता के कारण बहुत चर्चित हुए थे तथा इस उपन्यास में भी उन्होंने रोचक विषय वस्तु का चयन किया था । उनके सभी प्रकार के उपन्यासों में संघर्ष तथा कठिनाइयों से जूझने वाली मानवीय चेतना के दर्शन होते हैं । " मुर्दों का टीला " उनका अनूठा उपन्यास है । उन्होंने प्राक-ऐतिहासिक

1· मधुरेश (स॰) " क्रान्तिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, में ई॰ चेलिशेव का लेख " यशपाल और उनका " झूठा-सच ", पृ॰ - 131·

2· - वही - पृ॰ 125·

विषय-वस्तु के रूप में आर्यों के आक्रमण से पहले की सभ्यता को चुना, तथ्यों तथा कल्पना का सहारा ले कर इस उपन्यास में उस काल्पनिक सभ्यता को मूर्तिमान किया । " मोहनजोदड़ो " का अर्थ वही है जो उन्होंने इस उपन्यास के शीर्षक के रूप में प्रस्तुत किया । इस उपन्यास को पढ़कर तत्कालीन समाज और उसकी संस्कृति के बारे में कई नई जानकारियां मिलती हैं । उक्त समाज के श्रेष्ठि, व्यापार, दासों की प्रथा, नृत्य शैली, शहरों की वैज्ञानिक ढंग से बनावट के साथ-साथ उन लोगों की मानसिक अनुभूतियों से भी काफी हद तक पाठक का तारतम्य स्थापित हो जाता है । कुछ समय के लिये पाठक अपने आपको वहां का एक हिस्सा महसूस करने लगता है । इतना ही नहीं यहां रांगेय राघव इस धारणा को झुठलाते हुए प्रतीत होते हैं कि इस नगर का पतन और विनाश आर्यों के आक्रमण से हुआ । यहां वे बताते हैं कि आस - पास के किराट आदि नगरों पर आर्यों का आक्रमण हुआ वहां से लोग भाग कर यहां आए किन्तु इस उन्नत नगर का पतन एक भयानक भूकंप के कारण हुआ । उपन्यास के अंत में सारा नगर भूकंप के झटकों के कारण हिल जाता है और धरती फटने से उसमें समा जाता है । इस प्रकार विस्तृत पंजाब के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय जो अतीत में समा गया है उसको उपन्यास के माध्यम से रोमांचक तथा कलात्मक " पुरातात्विक " खोज का साहसिक प्रयास रांगेय राघव ने किया है । लेकिन इस उपन्यास का सम्बन्ध किसी भी प्रकार से पंजाबी जीवन से जोड़ना उचित नहीं होगा, क्योंकि इसकी वर्ण्य वस्तु पंजाब की सांस्कृतिक परंपरा की कड़ी में कहीं से जुड़ता हुआ प्रतीत नहीं होता । यदि मोहनजोदड़ो की ऐतिहासिकता का सप्रमाण अध्ययन कभी संभव हो सका तो उसके आलोक में इस उपन्यास को पलटना काफी रोचक होगा इसमें सन्देह नहीं ।

फिलहाल यह उपन्यास अपने आकर्षक रचना कौशल के रूप में ही महत्वपूर्ण है और इसे किसी भी प्रकार की दस्तावेज सामग्री की तरह नहीं बरता जा सकता । इसके औपन्यासिक महत्व के कारण ही इस उपन्यास का केवल उल्लेख करना ही यहां जरूरी समझा गया है ।

उपन्यासकार अश्क ने अपने उपन्यासों में अविभाजित पंजाब के मध्य वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग के जीवन को चित्रित किया है । लाहौर तथा जालंधर जैसे शहरों के साथ-साथ कहीं कहीं गांवों को भी कथाकार की लेखनी ने स्पर्श किया है । अपने उपन्यासों के माध्यम से अश्क जी ने पंजाब के इस वर्ग की मानसिकता, कुंठाएँ, समस्याएँ और उनके सपनों का यथार्थपरक चित्रण किया है । " सितारों के खेल " उनका प्रथम उपन्यास है जिसे रोमानी उपन्यास के रूप में मान्यता मिली, रोमान्स या प्यार-महोब्बत के आधार पर रचा जा कर भी यह उपन्यास जीवन का यथार्थ चित्रण ही करता है । कहानी लाहौर की धरती पर शुरू हो कर बीच में तीर्थस्थानों की यात्रा कर वापस लाहौर आ जाती है । इसमें मध्य वर्ग के पारिवारिक जीवन का करुण चित्रण पेश किया गया है जहां प्रेम पश्चाताप और त्याग की भावना को उभारा गया है ।

पंजाब में अपेक्षाकृत भौतिकता प्रधान जीवन होने के कारण उपन्यासों में प्रेम सम्बन्धों के वर्णनों की भी कमी नहीं । " गर्म राख " में यौन समस्याएं, दबी हुई कुंठाए व्यक्त हुई हैं । स्वयं चेतन, कुंती, सत्या, नीला आदि कई सुन्दर युवतियों की तरफ आकृष्ट हुआ किन्तु संकोच के कारण मौन प्रेमी बन कर रह गया । उसने, अपनी शक्ल सूरत से साधारण किन्तु सहनशील पत्नी की तुलना भी इन युवतियों से की

किन्तु अन्त में पत्नी की सहनशीलता और हरदम मुसकुराते रहने का गुण उसे मानसिक बल देता है। मुहल्ले की विधवाएं या तो अपने ही जेठ और देवर की वासना का शिकार बन चादर डलवाने की रस्म पूरी कर लेती हैं या फिर अपने किसी प्रेमी के साथ भाग कर मुहल्ले में हलचल मचा देती हैं। ऐसे ही एक प्रसंग में अश्क जी ने मुहल्ले में ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच पनपने वाले द्वेष का चित्र उकेरा है। पंजाब में फैला-जातिवाद और परस्पर द्वेष ऐसी घटनाओं से और भी उभर कर आते हैं। अश्क जी ने अपनी कृतियों में स्वाधीनता आन्दोलनों और देश-प्रेमियों का चित्रण करने के साथ-साथ राजनीति और पूँजीवादियों द्वारा सच्चे क्रान्तिकारियों को सताने या धोखा देने के प्रसंग भी दर्शाये हैं।

" गिरती दीवारें " अश्क जी का एक ऐसा वृहदाकार उपन्यास है जो पूर्ण सा प्रतीत हो कर भी पूर्ण नहीं है बल्कि लम्बी लेखन-योजना का एक भाग है। अश्क जी स्वयं कहते हैं कि एक दो को छोड़ कर किसी " समझदार " (आलोचक) को यह नहीं सूझा कि उपन्यास पूरा नहीं, एक भाग अथवा उससे भी कम है, यह और बात है कि पूरा जान पड़ता है।"[1] " शहर में घूमता आईना " इसका दूसरा भाग, " एक नन्ही कन्दील " तीसरा, तथा " बांधो न नाव इस ठांव " (दो भाग) चौथा तथा अन्तिम भाग है। इस प्रकार अश्क जी चार बड़े-बड़े उपन्यासों में चेतन के साथ-साथ पंजाब के विस्तृत जीवन को भी समेट लेते हैं। यहां कहानी युवा चेतन के इर्द गिर्द घूमती है किन्तु फ्लैश-बैक का सहारा ले कर उसके जन्म और बाल्यकाल के प्रसंग भी जुटाए गए हैं। इन वर्णनों के माध्यम से हमारा पंजाब के निम्न मध्यवर्गीय मुहल्लों और

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क, गिरती दिवारें - पृ. 17.

उनमें बसे परिवारों से साक्षात्कार होता है । चेतन यहां की जहालत, समस्याओं, गन्दगी और बीमारियों तथा अन्य संबंधित समस्याओं में अपना भविष्य अंधकारमय पाता है और अध्यापक की नौकरी छोड़ अपनी उच्च आकांक्षाओं की पूर्ती के लिये लाहौर चला जाता है किन्तु वहां भी ये समस्याएं, विशेषकर आर्थिक समस्याएं, उसका पीछा नहीं छोड़तीं, किन्तु वह परिस्थितियों से संघर्ष किये जाता है । चेतन मुख्य पात्र है किन्तु उसके अलावा भी पात्रों का जमघट इन उपन्यासों में मिलता है और प्रत्येक पात्र अपने आप में महत्वपूर्ण है । अश्क जी ने बड़ी कुशलता से, इन पात्रों की मानसिकता के माध्यम से पंजाबी समाज की स्थितियों का वर्णन किया है । 'निश्तर' दूसरों की रचनाओं को थोड़ा तोड़-मरोड़ कर या फिर ऐसे ही अपने नाम से सुनाते फिरते हैं। इस प्रकार की नकल करने में वे माहिर हैं। कवि रामदास अपनी मीठी-मीठी बातों से अपनी नीच मनोवृत्ति को छिपाए रखते हैं और दूसरों पर एहसान सा पटक कर अपना काम करवा लेते हैं । वे बेहद कंजूस किस्म के व्यक्ति हैं । चेतन का साला निहायत बेवकूफ है तो ससुर पागल है । उसके पिता और उनके अधिकांश मित्र शराब पी कर स्वच्छन्द आचरण में विश्वास रखते हैं । देबू और प्यारू गुण्डे हैं । हां मुहल्ले में एक आध अमीचन्द जैसा व्यक्ति अगर ऊँची नौकरी या ओहदा पा जाता है तो वह घमण्ड की हदें पार कर देता है और मुहल्ले की ईर्ष्या का कारण बनता है । चेतन की साली नीला के विवाह में जालंधर शहर की शादी की रस्मों का पता चलता है तो उसके साले की शादी में हमें गांव जाने का मौका मिलता है । उक्त समाज एक ओर जहां यक्ष्मा तथा अन्य बीमारियों का शिकार है, वहीं बहुत सारे लोग ऐसे भी हैं जो आर्थिक, मानसिक तथा यौन विकृतियों की समस्याओं के कारण पागलपन के शिकार भी बनते हैं ।

चेतन पंजाब के एक महत्वाकांक्षी और संघर्षशील नौजवान का प्रतिनिधित्व करता है । आर्थिक अभाव के कारण वह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाता और क्रमश: अध्यापक, अनुवादक आदि की नौकरी करता है और लाहौर के गंदे से मुहल्ले में रहने के लिए मजबूर होता है ।

" बड़ी-बड़ी आँखें " अश्क जी का एक ऐसा छोटा सा रोमानी उपन्यास है जिसमें वे देवनगर जैसे आश्रमों और संस्थाओं में चलने वाले, पोलखातों का भंडाफोड करते हैं । यहां अश्क जी ऊपर से स्वच्छ, निर्मल और बेदाग दिखने वाले देवनगर के अन्दर पनपती चापलूसी, ईर्ष्या, दुर्भावना के साथ-साथ हिन्दू-सिक्ख एकता में पनपने वाले सन्देह और पक्षपात का संकेत देते हैं । देवनगर के संचालक सिक्ख हैं तथा उनकी पत्नी हिन्दू जिन्होंने प्रेम-विवाह किया था । इसी कारण देवा जी की पत्नी सिक्खों की बजाए हिन्दुओं को अधिक सहूलियतें देती है । वहां केवल हिन्दू-सिक्ख ही नहीं ऊंच-नीच का भेदभाव भी मिलता है । देवनगर के स्कूल में भी अमीर व्यक्तियों के बच्चों को ही प्रवेश मिलता है जिनके माता-पिता देवनगर को समुचित अनुदान दे सकते हैं । केवल दिखाने भर को वहां के चपरासी के बच्चे की स्कूल में प्रवेश दिया गया है किन्तु उससे अपमानजनक तरीके से ही व्यवहार किया जाता है । उसका महत्व किसी नेता या बड़े व्यक्ति के आने पर बढ़ जाता है । वैसे तो अश्क जी के उपन्यासों में लोकगीतों की भरमार है किन्तु इस उपन्यास में प्रयुक्त " दन्द मोतियां दे दाने " बहुत ही सटीक और भावपूर्ण बैठा है । यह गीत, गाने वाले की मानसिक स्थिति को पाठक के सामने मूर्तिमान कर देता है । डा॰नामवर

सिंह को " बड़ी-बड़ी आँखें " उपन्यास अश्क के पूर्ववर्ती उपन्यासों से पृथक और gripping लगा था। उनके अनुसार इस पर तुर्गनेव के A Nest of the Gentry की प्रेरणा दिखायी देती है। उपन्यास देवनगर के यथार्थवादी चित्रण के बावजूद कुल मिलाकर Lyrical हो गया है।[1]

भाषा भी अश्क जी के उपन्यासों का एक रोचक पहलू है। यहां भाषा में झलकता पंजाबीपन, कहीं-कहीं पंजाबी भाषा, लोकगीत और बैतबाजों द्वारा रचे गये बैत, मुहावरे-लोकोक्तियां जहां उपन्यासों में ठेठ पंजाबी वातावरण उपस्थित करती हैं, वहीं इनकी रोचकता में चार चाँद लगाती हैं।

बलवन्त सिंह

पंजाबी जीवन की विविध-वर्णी छवि को अपने उपन्यासों में जीवन्तता से उपस्थित करने वाले बलवन्त सिंह को आँचलिक उपन्यासकार के रूप में भी देखा जाता रहा है और इसके मजबूत कारण हैं। " रात, चोर और चाँद " बलवन्त सिंह का हिन्दी में पहला उपन्यास था, जिसमें पंजाब की धरती की महक थी, उसे हिन्दी के आरम्भिक आँचलिक उपन्यास के रूप में परिगणित किया जाता रहा है। बलवन्त सिंह बहुत

---

1. " अश्क 75 " खंड - 2 (राधाकृष्ण प्रकाशन, 1986) में संकलित डा. नामवर सिंह के पत्र में " बड़ी-बड़ी आँखें " सम्बन्धी प्रतिक्रिया, पृ. - 376 - 377.

ही महत्वपूर्ण कथाकार हैं । पंजाब को उन्होंने अपने भीतर जिया है, उसकी आत्मा को गहराई से महसूस किया है । उसकी धड़कने सुनी हैं और अपनी रचनाओं " रात, चोर और चाँद " तथा " काले - कोस " में विशेष रूप से मानो पंजाबी धरती का टुकड़ा ही उठा कर रख दिया है । पंजाबीपन बलवन्त सिंह के लेखन का स्वाभाव ही है । पंजाब के दर्द को उन्होंने अपने शरीर के दर्द की तरह जाना है । " काले-कोस " की " दो बातें " शीर्षक भूमिका में उन्होंने बताया है कि पंजाब में बंटवारे से पहले मुसलमान दूसरों से अलग-थलक नहीं थे । हिन्दू और सिक्ख में भी अलगाव नहीं था । इनमें न केवल आपस में शादी-ब्याह होते थे बल्कि एक ही परिवार में हिन्दू और सिक्ख भाई पाये जाते थे । बलवन्त सिंह के ही शब्दों में - " बंटवारे से पहले हिन्दुओं, सिक्खों तथा मुसलमानों का मिला-जुला पंजाबी कलचर ढल रहा था ।" " काले कोस " का पंजाब भले ही दंगे की दर्दनाक कहानी कहता है लेकिन पृष्ठभूमि के रूप में लेखक ने मिश्रित पंजाबी संस्कृति के खुशनुमा माहौल को भी दिखाया है । लेखक ने दंगे के लिये जुटाई जा रही स्थितियों की प्रक्रिया को देखा है और वह दंगों के रूप में फूटने वाली विभीषिका का साक्षी भी बना है । " काले - कोस " तीन खण्डों में लिखा गया है । पहला खण्ड " मेला " उपशीर्षक से है जिसमें उपन्यासकार ने पंजाब की हलचल और खुशियों से भरी सामूहिक जिन्दगी की रंगीन तस्वीर पेश की है, लेकिन समाज, राजनीति और धर्म की स्वार्थी ताकतों की आँखों को जीवन की इस मेलों जैसी खुशियां नहीं सुहातीं और वे इस मेले की कनातों में आग लगाने के लिये इंधन जुटाने लगते हैं । पुस्तक के " झमेला " नामक दूसरे खण्ड में इन कुप्रयासों का विवरण मिलता है । यह जो मानव -

विरोधी तत्वों के द्वारा झमेले का वातावरण खड़ा किया गया उसका विस्फोट उस भयानक दंगे के रूप में हुआ जिसने पंजाबी जीवन की सारी हरियाली को जला कर खाक कर डाला इसीलिए तीसरे खंड का नाम बलवन्त सिंह ने " होला " रखा है । इसके बाद पंजाब का चेहरा ही बदल गया जो सिक्ख, हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई की तरह रहते थे वे ही जब एक दूसरे के खून के प्यासे होने लगे, उस हालत में पंजाबियत की मानवीय संस्कृति कैसे अक्षुण्ण बची रह सकती थी ? पंजाबी जीवन के इस दुखान्त को बलवन्त सिंह बहुत गहराई से महसूस करते हैं । उनका यह दर्द इन पंक्तियों में महसूस किया जा सकता है - " पंजाब नाम का सूबा तो मौजूद है, लेकिन पंजाबी कोई नहीं नज़र आता । पंजाबी भाषा, पंजाबी कल्चर और पंजाबी परम्पराओं का नाम लेने और उन्हें संभालने वाला वहाँ कोई नहीं । " लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अब पंजाबी जीवन का नाम लेना फिज़ूल है । उपन्यासकार के सामने इस परिस्थिति में एक सवाल था कि " आखिर मैंने यह नावल किसके लिए लिखा, इसे कौन पढ़ेगा ? " कोई भी लेखक जो अपने दायित्व को समझता है अपने लेखन के मकसद से भी वाकिफ़ रहता है । वह सामाजिक वास्तविकताओं को खुली नज़रों से देखता है और उसके विरुद्ध काम कर रही शक्तियों को भी पहचानता है । अगर विपरीत परिस्थितियाँ सामने आती हैं तो वह वहीं जीवन को खत्म नहीं समझ लेता बल्कि उसे जीवन में गहरी आस्था होने के कारण जली हुई राख में से नये अंकुर फूटने की उम्मीद होती है । इसीलिए अपने सवाल का जवाब बालवन्त सिंह खुद ढूंढते हुए दिखते हैं -- " मेरे उपन्यास को वे लोग जरूर पढ़ना पसंद करेंगे जो पंजाबी कहलाना पसंद करते हैं और पंजाबी होने के कुछ अर्थ समझते

हैं ......" यह सच है कि पंजाबी जीवन की यात्रा कब और किस मंजिल तक पहुँचेगी इसका पता कथाकार को नहीं है। देश-विभाजन के उस भयानक दौर में जो लाखों करोड़ों लोग बेघरबार होकर भटक रहे थे उनकी मंजिलें कहां थीं, यह उनमें से कोई भी नहीं जानता था। जीवन के इस " काले - कोस " की कथा यात्रा लिखने वाले बलवन्त सिंह " मेला " और " होला " की बात करते हुए भी निराशा के, निष्क्रियता के शिकार नहीं होते। बलवन्त सिंह जीवन को उसकी सम्पूर्णता में लेते हैं। अर्थात् सारे आँसुओं और मुस्कुराहटों में से गुजरते हुए उसे आशावादी ढंग से देखते हैं। यह पंजाबी जनता की जीवनी शक्ति, उसकी सांस्कृतिक उर्जा ही थी जो विभाजन के भयंकर दंगों की आग में झुलस कर भी पूरी तरह भस्मसात नहीं हुई। इस जीवनी शक्ति से बलवन्त सिंह परिचित थे क्योंकि पंजाब को उन्होंने अपने भीतर जिया है इसलिए " काले-कोस " का समपर्ण करते हुए वे लिखते हैं - " उस पंजाब के नाम जो मर चुका है और पंजाब के नाम जो जन्म ले रहा है। "

पंजाबी लोक-जीवन के बलवन्त सिंह निराले चितेरे हैं। उन सारे तत्वों को सहजतापूर्वक पहचान लेते हैं जिनसे पंजाबीपन निर्मित होता है। " रात, चोर और चाँद ", " चक्पीरां का जस्सा ", " रावी पार " और " दो अकालगढ़ " उपन्यास तो पंजाब के ग्रामीण जीवन को खुली किताब की तरह पेश करते हैं। वहां के लोग, लहीम - शहीम दर्शनीय जवान, चुलबुली, शोख तथा खूबसूरत लड़कियों के साहसिक प्रेम-सम्बन्ध इन उपन्यासों में गुंथे हुए हैं। पंजाब के मेलों की रौनकें और उत्साह वहां के मशहूर खेल (जैसे कबड्डी, सौंची, मुगदर हिलाना

आदि, तीज त्योहार, रीति-रिवाज के साथ-साथ पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती दुश्मनी और द्वेष से भी पाठक परिचित होता चलता है। वहां लगने वाले मेलों के पीछे कोई न कोई ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कारण रहता है या फिर किसी पीर की मजार पर ये मेले लगते हैं। ये मेले यहां के जीवन में बहुत महत्व रखते हैं क्योंकि चीजों की खरीद-फरोख्त के साथ-साथ शादी ब्याह के मामले तय होते हैं। प्रेम-मुहोब्बत के किस्से परवान चढ़ते हैं। यहां तक कि परस्पर लड़ाइयां भी मेले के अंतिम दिन निपटाई जाती हैं।

बलवन्त सिंह अपने उपन्यासों का ताना-बाना किसी प्रेम-कथा पर ही बुनते हैं। इससे कहानी समाज के साथ-साथ वहां के घरों और पारिवारिक दृश्यों को भी अपने में समेट लेती है। मकानों की बनावट, वहाँ का खान-पान, सीधे पर मगरूर जाट, एक दूसरे को तबाह करने की योजनाएं सभी कुछ पाठक इन उपन्यासों के जरिये जान लेता है। धर्म का भी यहां अपना स्थान है। अनपढ़ और अशिक्षित होने के कारण गुरुवाणी या अन्य धार्मिक उपदेश समझ में न आने पर भी ये गुरुद्वारे जाकर जिस श्रद्धा और प्रेम से सत्संग सुनते हैं उसी श्रद्धा से अखण्ड पाठ तथा लंगर का आयोजन करते हैं। गुरुद्वारे के लंगर में बड़े छोटे सभी समान रूप से कार्य करते हैं। उपन्यासों का अंत बहुधा सुखद ही होता है।

इसके बावजूद बलवन्तसिंह की कथाकृतियों तथा वैचारिकता को उनका बेहद रोमांटिक दृष्टिकोण किंचित, धुँधलाता हुआ भी प्रतीत होता है। ऐसा लगने लगता है मानों बलवन्तसिंह पतनशील सामन्ती मूल्यों के टूटने से खिन्न हो रहे हों तथा किन्हीं अर्थों में उन्हें सामन्ती अवशेषों से प्यार हो। सामन्ती मूल्यों को बचाये रखना अगर वे नहीं भी

चाहते हों फिर भी उनकी लेखकीय सहानुभूति सामन्ती, अराजकतावादी चरित्रों के साथ जुड़ती दिखायी देती है। बलवन्तसिंह इस दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी कथाकार के रूप में ही अपनी पहचान बनाते हैं।

मोहन-राकेश पंजाब से आने वाले ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने गद्य साहित्य की अनेकों विधाओं को स्पर्श किया है। यह ठीक है कि उन्हें कहानीकार और नाटककार के रूप में बहुत अधिक प्रशंसक मिले किन्तु उपन्यासकार के रूप में भी वे चर्चित हुए। उपन्यास सृजन का उनका अपना ही अंदाज है। वे अधिकतर महानगरों में बसने वाले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को अपने लेखन का केन्द्र बनाते हैं। " अन्धेरे बन्द कमरे " उनका महानगर के जीवन को लेकर लिखा गया उपन्यास है जिसपर आलोचकों और समीक्षकों ने अपने अपने ढंग से टिप्पणियां की हैं। इस उपन्यास में वे पाठकों को राजधानी दिल्ली के शानदार हिस्सों के साथ-साथ कस्साबपुरा जैसे गन्दे और पिछड़े मुहल्लों की भी सैर कराते हैं। मुख्य कथा हरबंश, नीलिमा और मधुसूदन के चौगिर्द ही चक्कर काटती है। राकेश जी हरबंस और नीलिमा के माध्यम से दिल्ली में रहने वाले शहरी हो चुके पंजाबी परिवारों के रहन-सहन तथा तौर-तरीके की एक झलक पेश करते हैं। आज के युग में शहरी लोगों की मानसिक शान्ति खो गयी है और जीवन में पारिवारिक कलह और तनाव ही ज्यादा उत्पन्न होता है। अपने आपको आधुनिक दिखाने की चाह, किन्तु परम्परागत संस्कार और नैतिकता से उबर नहीं पाने के परिणाम स्वरूप दोनों तत्वों के संघर्ष से उत्पन्न होता है मानसिक तनाव। भौतिक साधनों की चाह, आधुनिक कहलाने की ललक, विदेश जाने का मोह तथा अन्य महत्वाकांक्षाएँ भौतिक सुविधाएँ तो दिलाती हैं,

पर साथ ही इनके चलते संघर्ष और भी बढ़ जाता है । लन्दन जाकर अन्त में नाटकीय ढंग से मानसिक और भौतिक तनाव की हदें पार कर राकेश के पात्र अपने जीवन की परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं।

भीष्म सहानी ने " झरोखे " से अपनी उपन्यास यात्रा आरम्भ की । " झरोखे " में साहनी जी ने एक बच्चे के अनुभवों के द्वारा पीढ़ियों के अंतर को दर्शाया है । इस प्रयास में तत्कालीन मध्यवर्गीय पंजाब समाज की छवि आंखों के आगे साकार हो उठती है । पंजाब में आर्य समाजियों की गतिविधियां और इनके प्रति लोगों के रवैये का भी पता चलता है । पंजाब के गांवों से आकर घरों में नौकरी करने वाले बच्चों की आशा-आकांक्षाओं के साथ-साथ उनके भविष्य के साथ लगा प्रश्न-चिन्ह भी साहनी जी लोगों को दिखाते हैं । उपन्यास में तुलसी अच्छी स्मरण शक्ति रखता है । वह कुछ बनने की उत्कट चाहना ले कर भी कुछ नहीं बन पाता । इससे पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों की अशिक्षित जनता की असहाय अवस्था का पता चलता है । पंजाबी समाज में हिन्दू वैदिक धर्म, आर्य समाज और सिक्ख पन्थ तीनों का अपना स्थान था । लोग मन्दिर और गुरुद्वारे में समान श्रद्धा रखते थे । लोगों की जिन्दगी आस्थाओं, विश्वासों में लिपटी हुई एक निश्चित ढर्रे पर चलती थी । समय के साथ आने वाले बदलावों के कारण नई पीढ़ी की पुरानी पीढ़ी के संस्कारों और परम्पराओं से जो टक्कर होती है उसे भीष्म जी ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है । समाज में लड़कियों पर लगाए गए बन्धनों के साथ लोगों के नैतिक स्तर की पोल भी खोली है । भाषा में पंजाबी - पन के साथ-साथ पंजाब में प्रचलित लोक-गीत, कहावतों और मुहावरों का भी खुल कर प्रयोग किया गया है ।

अपने दूसरे उपन्यास " कड़ियाँ " में साहनी जी ने पंजाब के शहरों में रहने वाले नौकरी पेशा मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याओं को उठाया है । आधुनिकता के प्रभाव, भौतिक उन्नति के आकर्षण तथा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की लालसा परिवारों के टूटने का कारण बन रही है । परम्परागत नैतिक मान्यताएँ खोखली साबित हो रही हैं तथा पुरुष उनसे मनमाना लाभ उठाता है । पुरुष की क्रूर प्रवृत्ति, खोखला दम्भ,महेन्द्र के आचरण से साफ झलकता है । विवाह के सात वर्ष बाद अचानक उसे अपनी पत्नी पिछड़ी और गंवारु लगने लगती है । महेन्द्र के माध्यम से साहनी जी ने पुराने संस्कारों और आधुनिक परिवेश, नैतिकता के पुराने मानदण्डों और मानवीय मन की आवश्यकताओं के बीच पिसते हुए व्यक्ति को दिखाया है ।

इसके बाद आया साहनी जी का बहुचर्चित तथा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास " तमस ", जिसने एकबारगी पाठकों के दिलो-दिमाग को झिंझोड़ कर रख दिया । " तमस " की कथावस्तु वर्तमान काल में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी वर्णित समय में थी । इसमें साहनी जी ने भारत-विभाजन से पहले होने वाले साम्प्रदायिक तनाव और दंगों का चित्रण किया है । यह साम्प्रदायिकता ही विभाजन का कारण बनी । रावलपिण्डी तथा उसके आस-पास के गांवों को साहनी जी ने अपने उपन्यास में समेटा है जहां दंगों ने जोर पकड़ा था । साम्प्रदायिक दंगों की भयावहता के साथ-साथ साहनी जी दंगों के मूल में छिपे कारणों को प्रकाश में लाते हैं ।[1] शहर में तनाव

---

1. " लेखक ने छोटी सी घटना की चिनगी से सुलगने वाली आग को बड़े कौशल से दिखाया है - क्रोध,भय,सन्देह और धर्मोन्माद और उनसे जन्मने वाली आग को बड़े कौशल से दिखाया है । "

-- डा॰गोपाल राय, हिन्दी साहित्याब्द कोश-1973 -पृ॰ 79॰

और मारकाट की शुरूआत जिस घटना से होती है देखने में तो वह साधारण सी लगती है किन्तु उसके पीछे कार्यरत ब्रिटिश सरकार की कूटनीति को साहनी जी कांग्रेस अध्यक्ष बख्शी जी या फिर सिरफिरे कार्यकर्त्ता जरनैल के माध्यम से बताते हैं। विभिन्न राजनीतिक दलों और धर्म के ठेकेदार मुल्ला और पंडित अज्ञानवश धर्म की रक्षा की दुहाई दे कर इस आग को और हवा देते हैं। परिणामस्वरूप दंगों में गांव के गांव खाली हो गए और धन-जन की विपुल हानियाँ सरकारी कागजों पर आंकड़े बन कर रह गयीं। दंगों के बाद राहत-कार्य में चुस्ती-फुरती दिखाकर अंग्रेज़ डिप्टी कमीश्नर रिचर्ड ही जनता की वाहवाही भी लूट ले गया किन्तु हिन्दू-मुस्लिम जनता में नफरत की स्थायी दीवार खड़ी हो गयी।

भीष्म साहनी ने पंजाब की प्राकृतिक सुन्दरता तथा वहां के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के जीवन का यथार्थपूर्ण अंकन इस उपन्यास में किया है। पंजाब के ऐतिहासिक महत्व को उन्होंने रिचर्ड और लीजा की बातचीत के माध्यम से दर्शाया है। रावलपिण्डी शहर और आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाएं और बोलियां भी यहां स्वाभाविक रूप में सुनने को मिलती हैं, जिससे उपन्यास की रोचकता बढ़ जाती है।

साहनी जी के नवीनतम उपन्यास "मय्यादास की माड़ी" में पंजाब की तीन पीढ़ियों का चित्रण है। समय के साथ बदलती परम्पराएं, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों पर यहां पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मय्यादास और गोकुलदास पहली पीढ़ी का,

लेखराज और सनकी पर चालबाज धनपत दूसरी पीढ़ी का तथा धनपत का तीसरा बेटा हुकूमतराय, बहू रूक्मणी, पागल बड़ा बेटा और मंझला बेटा तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं । उपन्यास में ऐसे अनेक पात्र हैं जिनके माध्यम से साहनी जी ने पंजाब के पीढ़ियों से चले आ रहे जीवन को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । पुरोहित के माध्यम से यहाँ के समाज में अक्सर मिलने वाले अंधविश्वासों और अपशकुनों का भय दिखाया गया है । मन्साराम और धनपत के बीच हवेली की नीलामी से उत्पन्न कसक उनके बच्चों की शादी पर अपना उग्र रूप धारण कर लेती है । इस प्रसंग से साहनी जी दिलों में जहर छिपा कर अवसर आने पर बदला लेने की लोगों की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं । कस्बे और गाड़ी के इतिहास के साथ-साथ पंजाब की राजनैतिक पृष्ठभूमि को भी उजागर किया गया है । लाहौर दरबार से शुरू कर अंग्रेजों का शासन कायम होने तक का इतिहास साहनी जी ने इन पृष्ठों में कुशलतापूर्वक दर्ज किया है । यहाँ कस्बे का निर्बल और हास्यप्रद राजा अमीचन्द जैसा चरित्र भी है जो पूर्वजों का राज्य पाकर अपने को किसी से कम नहीं समझता । ब्रिटिश सरकार और लाहौर दरबार की झड़पों में खालसा सैनिकों की बहादुरी और साहस के कारनामें पंजाब के लोगों की चारित्रिक विशेषताओं को दर्शाते हैं । खालसा सेना की हार का कारण कुछेक खालसा सिपहसालारों की गद्दारी को प्रमाणसहित प्रस्तुत करते हैं । कूकों की बहादुरी और अंग्रेज़ सरकार द्वारा उन्हें तोपों से बांधकर उड़ा देना हृदय में टीस सी उत्पन्न करता है । इसके बाद तीसरे चरण में आजादी का संग्राम और आन्दोलन कस्बे में शुरू होता है जो एक नये युग का प्रतीक है ।

कस्बे का जीवन अपनी लीक पर चलता हुआ भी बदलता जाता है और लोगों को युग परिवर्तन की आहट भी नहीं मिलती । देश में तेजी से फैलती हुई आधुनिकता तथा आधुनिकीकरण का प्रभाव यहाँ भी पड़ता है|रेल आगमन, हार-श्रृंगार के नये-नये प्रसाधन, बायस्कोप, लड़कियों का स्कूल आदि इसके प्रमाण हैं । भारत में आधुनिकता और औद्योगीकरण की ब्रिटिश नीति का पर्दाफाश भी साहनी जी ने सफलतापूर्वक ब्रिटेन में होने वाली पूँजीपतियों की मीटिंग में किया है ।

साहनी जी अपने उपन्यासों के ज़रिये पंजाब के जीवन तथा उसमें आने वाले परिवर्तनो , दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों तथा उनसे लड़ने का अदम्य साहस रखने वाले वहां के निवासियों को उनकी समग्रता में हमारे सामने पेश करते हैं । भीष्म साहनी अपने उपन्यासों में पंजाब में बोली जाने वाली कई तरह की बोलियों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से झलकाते हैं जिससे उनके उपन्यासों में पंजाब का सम्पूर्ण चित्र साकार हो उठता है ।

कृष्णा सोबती ने एक बेबाक और बेधड़क महिला कथाकार के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई । इसका मुख्य कारण उनके उपन्यासों की कथावस्तु के रूप में पंजाब के गांवों की विद्रोही नारियों का चित्रण है । पंजाब एक ऐसा प्रान्त है जहां के निवासी चाहें पुरूष हों या महिलाएं अपने जीवन में मस्त, बेबाक और बेलौस तबीयत के होते हैं और ऐसी ही कुछ है उनकी भाषा और उसका प्रयोग भी । अत: पंजाब और वहां के निवासियों के चित्रण में यथार्थ का रंग भरने के लिए लेखिका की शैली और भाषा का बेबाक या बेधड़क होना कोई असंगत बात नहीं है ।

अगर पंजाब से सम्बन्धित पुरुष कथाकारों को, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित, कृतियों को लें तो वहां भी यह खुलापन साफ़ नज़र आयेगा । हां, यह अलग बात है कि उस पर किसी की दृष्टि उतनी नहीं ठहरती, जितनी कृष्णा सोबती के प्रसंग पर।

कृष्णा जी के " मित्रो-मरजानी " और " जिन्दगी नामा " दोनो उपन्यास पंजाब के ग्रामीण जीवन को ले कर चलते हैं । " मित्रो - मरजानी " में किसान समाज में पारिवारिक संबंधों और समस्याओं का अंकन किया गया है । बूढ़े सास-ससुर से हो सकने वाला हर प्रकार का व्यवहार तीनों बहुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । जेठ-जिठानी, देवर-भाभी, ननद-भाभी हर प्रकार के रिश्तों में मिलने वाले स्नेह और गरमाहट के साथ-साथ कडुवाहट भी खुल कर सामने आती है । इन दोनों प्रकार की भावनाओं को दर्शाने के लिए कृष्णा जी दो अलग-अलग परिवारों का चित्रण करती हैं । मध्यवर्गीय परिवारों को बांध कर रखने वाली मर्यादाओं, पारिवारिक बन्धनों और नैतिकता की सीमा नारी व्यक्तित्व पर अंकुश लगाती है और इसे मित्रो उपन्यास के अंत में महसूस करती है । कृष्णा जी मित्रो के चरित्र के माध्यम से ही सब कुछ पाठक के सामने रखती हैं । उपन्यास की भाषा में पात्रों के बोलने का लहजा, पंजाबी भाषा का एक सीमा तक खुला प्रयोग-उसमें भी पात्रोचित संवाद तथा उक्त समाज में प्यार या गुस्से में दी जाने वाली गालियों का स्वच्छन्द प्रयोग पाठक को अपनी रोचकता में बांध लेता है ।

" जिन्दगी नामा " में कृष्णा जी ने इस शताब्दी के शुरू के पंजाब को प्रस्तुत किया है । इस कारण उपन्यास का परिवेश, इसके पात्र, उनका रहन-सहन, उनकी समस्याएं हमें थोड़ा पीछे के समय में ले जाते हैं । उपन्यास पढ़ कर महसूस होता है जैसे हम किसी टाईम-मशीन में बैठकर अतीत के पंजाब की सैर कर आए हैं । इस यथार्थ अंकन में पंजाब की ठेठ और गूढ़ भाषा ने खासा योगदान दिया है । संभव है इसे समझने में पाठक को थोड़ी कठिनाई भी हो सकती है किन्तु इस चुनौती को स्वीकार कर जीतने में एक अलग ही रोमांच है । यह रोमांच उपन्यास की अपनी ही विशेषता है । उपन्यास में ढेर सारे पात्र अपने चरित्रों के माध्यम से पंजाब के सम्पूर्ण जीवन को समेट लेते हैं । शाहजी और उनके कामगारों में मालिक और नौकर का, या मार्क्सवादी भाषा में कहें तो शोषक और शोषित का, सम्बन्ध होते हुए भी कटुता नहीं है जो किसी अन्य क्षेत्र में दुर्लभ है । किसान जट्ट अपनी कमज़ोरी समझते हुए भी, कि जट्ट जितना दम लगा कर कमाता है उतनी ही दरियादिली से खर्च भी कर देता है और मुसीबत के समय शाह से कर्ज लेता है और शाह उसका फायदा उठाते हैं; अपनी आदत से मजबूर हैं । अपनी नियति को बदलना उसके हाथ में नहीं । उक्त समाज में जैसे लाम पर जाना सम्मानजनक है वैसे ही जेल जाना भी क्योंकि दोनों में वीरता और बहादुरी की जरूरत है । वे जानते हैं कि जेलों में शेर जाते हैं, गीदड़ नहीं । बात-बात पर लाठियां चल जाना या कत्ल हो जाना आम बात है क्योंकि पंजाब का जट्ट बेईज्जती बरदाश्त नहीं कर सकता तथा जमीन और औरत दोनों के लिए जान दे सकता है । दोनों उसके सम्मान की सूचक हैं । अतः यहां के लोगों की जान को एक-आध कोर्ट-कचहरी के मुकद्मे लगे ही रहते हैं ।

अंग्रेज पुलिस जितनी अत्याचारी और जालिम थी उतने ही यहां के निवासी निडर और बेधड़क थे। पुलिस की जालिम मार सह कर भी वे वाह-वाह का नारा बुलन्द करते रहते थे। युवा लोग समाज की नैतिकता और अनैतिकता की सीमा को पीछे छोड़ अपनी ही दुनियां में मस्त रहते थे। ऐसे प्रसंगों को भी कृष्णा जी ने फातिमा, चाची मेहरी आदि पात्रों के माध्यम से उठाया है। तत्कालीन समाज में बहुविवाह प्रथा भी प्रचलित था जिससे सौतों के झगड़े होना आम बात थी। ऐसे झगड़ों में कृष्णा जी का भाषा-कौशल देखते ही बनता है। भूत-प्रेत और जादू-टोनों जैसे अंधविश्वासों में यहां के लोग भी उलझे हैं। भौतिक उन्नति की चाह में यहां के लोग गांव से बाहर, यहां तक कि विलायत भी चले जाते हैं। यहां लोगों में साहस और जिगरे की कमी नहीं। अगर कमी है तो सिर्फ अवसरों की, जो उन्हें गांव में रहकर मयस्सर नहीं हो सकते। देश में बहने वाली स्वराज्य की लहर से यहां के निवासी भी अछूते नहीं रहते और उपन्यास के अंत में पुलिस क्रान्तिकारियों की खोज में भी गांव आती है। इस प्रकार कृष्णा जी पंजाब के तत्कालीन जीवन को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत करते हुए आगामी समय का भी कुछ संकेत हमें देती चलती हैं क्योंकि जीवन कभी ठहरता नहीं उसमें बदलाव आना स्वाभाविक है। इस तरह कृष्णा सोबती पंजाब का एक आंशिक, किन्तु प्रामाणिक जीवनीनामा (Biography) पेश करने में बहुत-कुछ सफल रही हैं।

हिन्दी के चिंतक आलोचक और उपन्यासकार हंसराज रहबर ने हाल में प्रकाशित उपन्यास "बोले सो निहाल" में अठारहवीं शती के मध्य में पंजाब की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति को कथाविषय बनाया है। इस उपन्यास में पंजाब के इतिहास के कुछ अछूए तथा अनछुए पहलुओं

को उन्होंने सामने रखा है । 1739 में नादिरशाह के आक्रमण तथा 1765 में लाहौर पर सिक्खों का अधिकार होने तक के समय को इस कथा में उपन्यास की तरह कम तथा इतिहास की तरह ज्यादा रखा गया है । स्वयं लेखक का कहना है कि " ... मेरे नजदीक यह उपन्यास से ज्यादा इतिहास है और जो इतिहास है वह उपन्यास से ज्यादा दिलचस्प है । "[1] यह उपन्यास लेखक ने अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई धारणा का विरोध करने के लिये लिखा कि हिन्दुस्तानियों में प्रतिरोध करने की शक्ति तथा शासन करने की योग्यता का अभाव होने के कारण वे सदा से विदेशों द्वारा शासित होते आये हैं । यहां लेखक यह बताना चाहता है कि भारतवासियों ने हमेशा अपने आक्रांताओं का कड़ा मुकाबला किया और इतिहास ने बार-बार उन्हें पराजित किया । इस उपन्यास के माध्यम से श्री हंसराज रहबर ने पंजाबियों और सिक्खों की गुरिल्ला लड़ाई का बड़ा ही जीवंत चित्र अंकित किया है । सिक्ख आरम्भ से ही अत्यन्त वीर जाति रही है । उनका कर्मक्षेत्र स्वाभाविक रूप से रणक्षेत्र में रहा है । युद्ध, रक्त आदि ने उन्हें कभी आतंकित नहीं किया और न निरंतर संघर्षों से पस्त-हिम्मत ही हुए । उन्होंने दिल्ली को लूटने वाले नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली को भी लूट लिया था । इस उपन्यास में इतिहास और " मिथहास " को जोड़ कर रोचक ढंग से व्यक्त किया गया है । उपन्यास के नायक का दर्जा जस्सासिंह आलूवालिया को मिला है जिसने अपनी सूझबूझ, होशियारी, वीरता, कार्यक्षमता तथा दूरदृष्टि से सिक्खों

---

1. हंसराज रहबर, बोले सो निहाल, पृ. 8

को एक निडर कौम के रूप में सक्रिय बनाए रखने का ऐतिहासिक कार्य किया । उपन्यास में प्रसिद्ध फ़कीर गायकों और कवियों वारिसशाह तथा बुल्लेशाह के चरित्र को भी उपस्थित किया है तथा कलात्मक ढंग से उनके चरित्र को सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य में विकसित किया गया है । कुल मिला कर यह उपन्यास सिक्खों की वीरता का प्रभाव-वादी अंकन करता है । परिणाम स्वरूप, तटस्थता, वस्तुनिष्ठता तथा आलोचनात्मक दृष्टि का किंचित अभाव भी पाठक को परिलक्षित हो सकता है । लेखक ने लिखा है । इतिहास साक्षी है कि निष्ठुर शत्रु का हृदय परिवर्तन कभी नहीं हो सकता । वह सिर्फ तलवार की भाषा समझता है और तलवार की भाषा - ठंडे लोहे की भाषा में ही उसे समझाना पड़ता है । "[1] लेकिन पाठक को प्रतीत होता है कि जीवन के दूसरे पक्षों को भी इतिहासकार मानों तलवार की ही भाषा में समझाना चाह रहा हो । उपन्यास में तलवार की भाषा ही सर्वोपरि है । इस बात पर लेखक ने बल दिया है कि जो धर्म के लिये युद्ध करता है वह वीर है और उपन्यास में उसे सिद्ध भी किया है लेकिन युद्ध ही मानों यहां लक्ष्य बना दिया गया है । युद्ध के द्वारा कुछ लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना ही संगत है न कि उसे लक्ष्य बना देना । उपन्यास-कार यह भी समझाने में पूरी तरह सफल नहीं प्रतीत होता कि धर्म, अध्यात्म, समाज, राजनीति आदि का परस्पर सम्बन्ध कैसा होना चाहिये । फिर भी उपन्यास इस दृष्टि से पठनीय है कि यहां सिक्ख इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय अंकित हुआ है और यह अध्याय लेखक के अनुसार गौरवपूर्ण है । उपन्यास में कहीं-कहीं लोकगीतों, उत्सवों

---

1. हंसराज रहबर, बोले सो निहाल, अपनी बात - पृ. 8.

के सांस्कृतिक चित्र भी हैं जिनसे रचना में पठनीयता और रोचकता आ गयी है ।

जगदीशचन्द्र ने पंजाब की समस्याओं को एक नयी दृष्टि से देखा । उनका " कभी न छोड़े खेत " उपन्यास तो पंजाब की ठेठ आंचलिक पृष्ठभूमि को ले कर रचा गया है किन्तु बाकी उपन्यासों में अलग-अलग समस्याओं को उठाया गया है । इन कृतियों में उठाए गये विषय उनके अपने जीवन-अनुभवों पर आधारित हैं। उनका बचपन पंजाब के गांव रल्हन में बीता [1] और वहां देखने-सुनने को मिली कई घटनाएं और अनुभव उनकी रचनाओं में स्थान पा गये । अपने पहले ही उपन्यास " धरती धन न अपना " में उन्होंने पंजाब के गांवों के निम्न वर्ग (चमारों) की शोचनीय स्थिति को पाठकों के सामने रखा है । देश के आजाद होने पर भी ये आर्थिक, सामाजिक और मानसिक तीनों रूपों से परतंत्र ही कहे जायेंगे । आर्थिक रूप से इनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं यहां तक कि अपना जीवन भी इनका अपना नहीं होकर किसी न किसी जमींदार के पास बंधक रखा होता है । इन्हें हर चीज या तो भीख के रूप में मिलती है या फिर मिलती ही नहीं । यहां चौधरियों और चमारों के बीच शोषक और शोषितों का सम्बन्ध है, जहां थोड़ी सी भी वर्ग-चेतना जागने पर शोषकों का दमन-चक्र शुरू हो जाता है । कसूरवार चाहे कोई भी हो, जूतम - पैजारी आखिर चमारों पर ही होती है । सामाजिक रूप से ये छुआछूत और छोटे समझे जाने की असहनीय व्यथा को बरदाश्त करते हैं । इनसे बेगार लेना चौधरी लोग अपना खानदानी हक समझते हैं ।

---

1. " धरती धन न अपना " की भूमिका ।

उपन्यास में कम्यूनिस्ट नेताओं और ईसाई पादरियों के खोखले सिद्धान्तों का खूब मज़ाक उड़ाया गया है । चौधरियों के ज़ुल्मों के खिलाफ बगावत करके चमार जब भूखे मरते हैं तो इनमें से कोई भी नेता या पादरी उनकी सहायता को नहीं आता । पादरी ईसाई धर्म स्वीकार करने पर जोर देता है तो कम्यूनिस्ट नेता अधिक से अधिक कष्ट सहकर क्रान्ति लाने का उपदेश देता है । जगदीशचन्द्र जी ने धर्म, भूख और सामाजिक प्रतिष्ठा की परस्पर तुलना कर इन पर करारा व्यंग्य किया है । नंदलाल पैसे और सामाजिक प्रतिष्ठा के लालच में पहले सिक्ख बनता है और फिर ईसाई, किन्तु उसका सामाजिक दर्जा, पेशा, रहन-सहन सभी कुछ पहले जैसा ही रहता है कुछ भी नहीं बदलता । उसे चमार कहकर उसी के बनाए जूते से पीटा जाता है । उच्चवर्गीय लोग इन लोगों से मेहनत को ही बेगार नहीं लेते बल्कि इनकी बहू-बेटियों को भी अपनी हवस का शिकार बनाते रहते हैं । हवेली में काम करने वाली लच्छो को हवेली के मालिक का बेटा अपनी वासना का शिकार जबरदस्ती बनाता है और इसमें उसकी मदद करता है गाँव का ही एक चमार मंगू । पंडित वैसे तो इन्हें अछूत मानता है पर इस मामले में वह भी पीछे नहीं । इसके अतिरिक्त कई ऐसे असफल प्रेम-प्रसंग भी चलते रहते हैं, जिनका अंत प्रेयसी की मौत है । अन्त में बाढ़, बेगार, बगावत और अत्याचारों के चक्र में पिसता यह चमार वर्ग फिर अपने पुराने ढर्रे पर ही जीवन जीने लगता है बिना किसी सुधार या बदलाव के । यहाँ "उपन्यासकार ने हरिजनों के आपसी द्वेष, टुच्चेपन, पारस्परिक फूट आदि का, जो उनकी सदियों की गुलामी और हीन सामाजिक स्थिति की देन है, अत्यन्त विश्वसनीय चित्रण किया है ।" [1]

---

1. डा॰ गोपाल राय, हिन्दी साहित्याब्द कोश (1972) पृ॰ 87.

" कभी न छोड़ें खेत " में जगदीशचन्द्र पंजाब के ठेठ आंचलिक रंग में रंगे हैं। मुख्य कथा के रूप में दो किसान जमींदार परिवारों के बीच पनपने वाली खानदानी दुश्मनी तथा उसके परिणामस्वरूप दोनों परिवारों की बरबादी को दिखाया है, लेकिन इसके साथ-साथ पंजाब के गाँवों का सम्पूर्ण चित्रण भी अपनी सशक्त लेखनी द्वारा उन्होंने किया है। जसवंतकौर के कारण उत्पन्न हुई खानदानी खुंदक में होने वाली मारपीट और लड़ाई के परिणाम स्वरूप करतार की मौत होती है तथा दोनों तरफ़ के लोगों को लम्बी-लम्बी सजाएँ होती हैं। मुकद्दमे-बाजी में थानेदार, डाक्टर तथा वकीलों के चक्कर में फंस कर दोनों पक्ष के लोग आर्थिक रूप से जर्जर हो जाते हैं। इतना होने पर भी दिलों का मैल नहीं धुलता बल्कि पुश्त दर पुश्त वह वैर-भाव बना ही रहता है। जवान बेटे करतार की मौत के बाद, जसवन्तकौर के बुढ़ापे में जब दूसरा लड़का होता है तो जेल में प्यारे[1] की यही प्रतिक्रिया होती है, " होना ही चाहिए था। अच्छा ही हुआ। अब अपने वारिसों के लिए हम कुछ तो छोड़कर मरेंगे। "[1] कुछ तो - यानी पुश्तैनी वैर।

" मुट्ठी भर कांकड़ " और " घासगोदाम " को जगदीशचन्द्र ने एक ही उपन्यास के दो भागों के रूप में प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में दिल्ली तथा उसके आस-पास के गाँवों में देश-विभाजन के फलस्वरूप पश्चिमी पंजाब से विस्थापितों के आने तथा उन्हें बसाने के सरकारी प्रयासों के कारण मची हलचल को विषय बनाया गया है। सरकार इन गाँवों की खेतिहर जमीन विस्थापितों को बसाने के लिए

---

1. कभी न छोड़ें खेत - पृ. 217.

खरीदने का ऐलान करती है । जमीन के बदले सरकार भू-स्वामियों को जमीन की कीमत देती है किन्तु खेती-बारी को ही अपना सब कुछ मानने वाले लोग अपने पैसों का समुचित उपयोग नहीं कर पाते । कुछ तो अरामतलब और ऐय्याश होकर अपना पूरा पैसा लुटा देते हैं और मजदूरी या फिर चोरी-चकारी करने पर मजबूर हो जाते हैं। कुछ प्राइवेट कम्पनियाँ भी इन लोगों से फायदा उठाती हैं । पश्चिमी पंजाब से आए लोग अपने ढंग से जीवन-संघर्ष करते हैं तो यहाँ के लोग अलग तरह की परेशानियों के शिकार होते हैं । इस प्रकार लेखक हमें दोहरी जिजीविषा से परिचित कराता है । इसके अतिरिक्त राजधानी और महानगर दिल्ली का फैलाव और विस्तार इन गाँवों को अपने आगोश में समेट लेता है । फिर तो यहाँ आधुनिक तथा नये फैशन के कारण आने वाले बदलाव और सुविधाओं से भी साक्षात्कार होता है ।

" आधा पुल " और " टुण्डा लाट " में फ़ौज में मिलने वाली पंजाबियत देखने को मिलती है । पंजाब के जवान फौज में एक ओर जहाँ मस्त जीवन गुज़ारते हैं वहां दूसरी ओर खतरों से खेलने में भी आगे रहते हैं । साहस और निडरता में उनका कोई मुकाबला नहीं । फौज का जीवन, अफ़सरों तथा जवानों के आपसी सम्बन्ध, जिंदादिली, पार्टियाँ, शराब के दौर और सबसे ऊपर अनुशासन, इन सबका बड़ा ही वास्तविक अंकन इन उपन्यासों में मिलता है ।

" आधा-पुल " में साहस भरे फौजी जीवन के साथ शहीद होने के गौरव और सम्मान की चर्चा की है जबकि " टुण्डा लाट " में इसके साथ-साथ जवानों की सिविल जिंदगी और अनेक जवानों का लड़ाई में अपंग होने से बहुत कुछ खोकर, टूटे हुए दिल तथा विक्षिप्त भावनाओं

और दुनिया की दया से भरी हुई दृष्टि का साहस से मुकाबला करते हुए जीना दिखाया गया है ।

महेन्द्र भल्ला ने "उड़ने से पेश्तर" और "दूसरी तरफ" इन दोनों उपन्यासों में विदेशों में रहने वाले पंजाबी परिवारों का अपेक्षाकृत अन्तरंग परिचय करवाया है । पैसे और आधुनिक सुख - सुविधाओं की चमक से चकाचौंध हो कर ये लोग विदेश भागते हैं । वहाँ दूसरे दर्जे के नागरिक बन छोटी-मोटी नौकरी करने तथा हर प्रकार का अपमान सहने को विवश होते हैं ।" लेखक ने इस भेद नीति का चित्रण बड़ा ही स्पष्ट, स्वदेश-विदेश के किसी भी बन्धन से पूर्णतः मुक्त रह कर, उपन्यासकार की उचित गरिमा के साथ और तटस्थ निष्पक्ष भाव से किया है । "[1] वहाँ के मशीनी जीवन से ऊबकर ये स्वदेश लौटने की बात जरूर करते हैं किन्तु लौट नहीं पाते । अगर लौटते भी हैं तो स्वदेश में टिक नहीं पाते । इन्हीं दोहरी मान - सिकताओं और विसंगतियों के बीच फंसे विदेशी पंजाबियों का यथार्थ-पूर्ण अंकन उपन्यासकार ने सफलतापूर्वक किया है ।

योगेश गुप्त "शरद ऋतु" में अविभाजित पंजाब के एक कस्बे का जीवन नन्हें उर्फ नितिन कुमार की बचपन की स्मृतियों के माध्यम से चित्रित करते हैं । कस्बे का जीवन और समय के साथ उसमें आने वाले परिवर्तनों को दर्शाकर वे आधुनिक पंजाबी जीवन का एक लम्बा समय अपनी कृति में समेट लेते हैं । कस्बे का साधारण जीवन और उसमें सरकारी अफसरों का महत्व और दबदबा तथा समाज में व्याप्त

---

1. हिन्दी साहित्याब्दकोश (1976) पृ. 103.

भ्रष्टाचार और गरीबी के पाटों में पिसते सामान्य आदमी का संघर्ष हृदय को छू लेता है । तत्कालीन समाज में, जबकि पाकिस्तान का नारा बुलन्द नहीं हुआ था, हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव चाहे समाज में नहीं था परन्तु अमीर-गरीब का भेद बहुत गहरे तक फैला था । इसीलिए खूबसूरत और हमउम्र यूसुफ की बजाय खन्नो की शादी एक अधेड़ किन्तु अमीर व्यक्ति से जबरदस्ती कर दी जाती है । ग्रामीण समाज में लड़कियों की शिक्षा का रिवाज प्राय: नहीं के बराबर था । द्वितीय विश्वयुद्ध जोरों पर होने के कारण सेना में भारतीय जवान काफी संख्या में भरती किये जा रहे थे । ऊपर से अंग्रेजी शासन और भर्ती दोनों में योगदान देते हुए भी तहसीलदार मन से इसके विरुद्ध थे । उनके मन में स्वदेश-प्रेम की भावना थी जिसे वे व्यक्त नहीं कर पाते थे । किन्तु जनजीवन में क्रान्ति की भावना धीरे-धीरे जोर पकड़ रही थी जिसके प्रतीक मास्टर जी हैं जो अंग्रेज सिपाहियों की गोली का शिकार बने । तत्पश्चात छोटी-बड़ी घटनाओं के बाद पूरे देश को हिला देने वाली घटना देश-विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों का असर इस कस्बे पर भी पड़ा । यहां भी कुछ वारदातें हुईं और यहां के हिन्दू-परिवार भारत को जाने वाली रेलगाड़ी में चल पड़े ।

" सभै घट राम बोले " पंजाब की त्रासदी पर आधारित एक प्रतीकात्मक मार्मिक उपन्यास है । जिसमें आजादी के पश्चात पंजाब के लोगों की सामाजिक अवस्था का चित्रण किया गया है । यह उपन्यास विभाजन को पृष्ठभूमि में रख कर चलता है और मुख्य रूप से आपरेशन ब्लयू स्टार से 1984 में इन्दिरा गांधी हत्या के कारण हुए हिंसात्मक दंगों की समयावधी में पंजाब की सामाजिक, राजनीतिक,

धार्मिक स्थितियों का चित्रण बड़े हृदय-स्पर्शी ढंग से करता है । उपन्यास का समर्पण गुरुबचन सिंह ने इस प्रकार किया है - " उनके नाम जिनका जाने अनजाने पंजाब की समस्या को ले कर खून बहा और जो आहत हुए ।" " केवल इतना ही कि सत्य श्रेष्ठ है चिर स्थाई है और सत्य कटु भी होता है जिसे अनुभव करते हुए बरबस आंखें भीग जाती रहीं ।" इन दोनों ही वक्तव्यों को उपन्यासिक चित्रण जैसे सार्थकता प्रदान करता है । पूरी कहानी एक ऐसी मां की जबानी बयान की गई है जिसका बचपन विभाजन के दंगों का शिकार हुआ है और जिसमें वह अपने मां, बाप और भाई को गंवा बैठी थी । कथावाचिका मां (दुर्गा) का विवाह एक हिन्दू युवक से हुआ, पर अपनी परम्परागत धार्मिक मान्य - ताओं के अन्तर्गत उसने पहला बेटा सिक्ख पंथ को समर्पित कर दिया । लड़का सरदार पूर्णसिंह अमृतसर में स्वर्ण मंदिर के निकट कपड़े की एक दुकान चलाता था । दुर्गा के दो और बेटे अशोक और आलोक मोने थे । कहानी एक औसत मध्यवर्गीय पंजाबी जिंदगी को सामने रखते हुए भी सूक्ष्मत: अपनी प्रतीकात्मकता को भी व्यंजित करती चलती है । दुर्गा जैसे पंजाब की धरती है जिसके हिन्दू और सिक्ख बेटे आपस में बंट गये हैं । साम्प्रदायिक तनातनी में वह अपने बेटे अशोक को खो देती है, और साथ ही उसकी विधवा बहू भी उससे दूर चली जाती है । आपरेशन ब्लयू स्टार के कारण उसकी आसन्न प्रसवा पुत्रवधू और लड़का विछड़ जाते हैं और भयंकर दहशत का शिकार बनते हैं । परिस्थितियां ऐसी निर्मित होती हैं कि पूर्णसिंह आतंकवादी बन जाता है दूसरी तरफ दुर्गा की बेटी की जिन्दगी उसका हिन्दू दामाद अन्ध धार्मिकता के कारण नरक बना देता है । तब अपनी बेटी को उसकी सन्तानों के साथ दुर्गा उसके ससुर के पास दिल्ली भेज देती है ।

घटनाक्रम में दुर्गा अपनी समधन के पास दिल्ली पहुँचती है और वहां भी दंगाइयों के भयंकर अत्याचारों का शिकार बनती है । इस प्रकार एक सीधी सादी स्त्री की जिंदगी को अन्धा धर्म और अन्धी राजनीति बरबाद कर देती है । प्रतीकात्मक होते हुए भी गुरुबचनसिंह ने उपन्यास को यथार्थवादी विवरण के सहारे रचा है जिससे रचना में विश्वसनीयता आ गई है । लेकिन उपन्यास का सबसे कमज़ोर पक्ष यह है कि लेखक इसमें आतंकवाद की समस्या की जड़ों तक नहीं जाता । यह सच है कि बहुत से सीधे सादे नौजवान प्रशासन के अत्याचारों के कारण आतंकवादी बनने को बाध्य हुए लेकिन केवल इसी को महत्वपूर्ण मानकर चलना समस्या का सरलीकरण करना है । गुरुबचन सिंह ने सिक्खों की त्रासदी को बहुत नजदीक से देखा और महसूस किया है और वे हृदय के बहुत भीतरी तल तक इससे दु:खी भी हुए हैं लेकिन ऐसा लगता है कि समाज के विभिन्न पक्षों के प्रति बहुत निष्पक्षता पूर्वक देख पाना लेखक के लिए सम्भव नहीं हुआ है । लेकिन इसके लिए समस्या के भीतर रह कर उसे अंकित करने वाले लेखक को पूरी तरह दोषी नहीं ठहराया जा सकता । कुल मिलाकर " सभे घट राम बोले " उपन्यास में भाव प्रबलता, वस्तु निष्ठता पर हावी हो गई सी लगती है । प्रतीकात्मक शिल्प के कारण भी संभवत: लेखक के लिए भावुकता उसकी मजबूरी बन गई प्रतीत होती है । बिल्कुल समकालीन घटनाक्रमों को लेकर लिखी जाने वाली कथारचना के कारण भी गुरुबचन का यह उपन्यास हमारे अध्ययन के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण है । इसमें पंजाब के जीवन का समकालीन दर्द बड़ी शिद्दत से व्यक्त हुआ है ।

आजादी के बाद पंजाब अथवा पंजाबियों की जीवन स्थितियों को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गये और लिखे जा रहे हैं । जिस तरह 1947 के देश-विभाजन अथवा साम्प्रदायिक दंगों ने पंजाबी मानसिकता को जो घाव दिया था उसकी निशानी कभी नहीं मिटने वाली लगती है, उसी तरह से 1984 में देश के विभिन्न हिस्सों में बसे हुए सिक्खों के साथ जैसा शर्मनाक दुर्व्यवहार हुआ उससे भी इस कौम की घायल मानसिकता अब तक पूरी उबर पाई हो नहीं कहा जा सकता । इधर के वर्षों में पंजाब की एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में आतंकवाद ने सिर उठा रखा है और पंजाब में बड़ी ही जटिल तथा अंधकारपूर्ण स्थिति लगातार बनती जा रही है । आतंकवाद की समस्या सिर्फ भाषा, धर्म से ही नहीं जुड़ी है बल्कि पंजाब की समाज और राजनीति में भी इसकी गहरें जड़े हैं । आठवें दशक में भारत की राजनीति ने अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ लिया और पंजाब के भीतर ही नहीं वहां से बाहर जाने वाले पंजाबियों और सिक्खों में भयंकर असुरक्षा का भाव गहरे उतर गया है । इन स्थितियों को लेकर उपन्यास रचे जाने का समय अभी बीता नहीं है और अनेकों रचनाओं के आने की सम्भावना बनी हुई है । हाल के दिनों में आपरेशन ब्लू स्टार और नम्बर 1984 के वहशियाना उन्माद के इर्द गिर्द कथानक बुनने वाले कम से कम दो उपन्यास हमारी नजर में आए हैं एक तो है तेजेन्दर का " वह मेरा चेहरा " तथा दूसरा तरसेम गुजराल का " जलता हुआ गुलाब " । आज पंजाब की ओर पूरे देश की नजरें लगी हुई हैं । विभाजन, हिंसा आदि से पंजाब का कभी पीछा नहीं छूटा । पंजाबी के प्रसिद्ध कवि और आतंकवादियों के हाथों शहीद अवतारसिंह पाश के शब्दों में " बिछोड़े का सम्बन्ध हीर के साथ नहीं पंजाब की समूची नियति के साथ है । 1947 ई॰ में

पंजाब ने एक ऐसा बिछोड़ा देखा था जिसकी मिसाल दुनियां में नहीं मिलती । लाखों डरे और पगलाए हुए लोग, अपनी सदियों पुरानी सांझी विरासत को रौंदते हुए, एक दूसरे से जुदा हो गये । उस समय भी सारी अंधेरगर्दी षडयन्त्रकारी राजतंत्र और मूढ़ता से भरे हुए मजहबी जुनून ने मचाई थी । आज फिर जब पंजाब के बचे खुचे हिन्दुओं और पंजाब से बाहर बसे मुट्ठी भर सिक्खों को पलायन करने के लिये मजबूर किया जा रहा है इस बार भी सरकार और साम्प्रदायिक उन्माद ही मानवता के कटघरे में खड़े हैं । आज फिर इन काली ताकतों ने ही पंजाब के आसमान का रंग लहू जैसा करके रख दिया है । " [1]

काली ताकतों की हिंसा का शिकार पंजाब तथा देश के दूसरे हिस्सों में रहने वाले सिक्ख साम्प्रतिक कथा परिदृश्य में चिंता का विषय बने हैं । तेजेन्दर के उपन्यास में वैसे लोगों की कहानी कही गयी है जो मजबूरी में अपनी जन्मभूमि पंजाब से विस्थापित होकर भारत के दूसरे हिस्सों में बसने की कोशिश करते हैं । अपनी स्वाभाविक भूमि से उखड़ कर जब वे दूसरी जमीन में लहलहाने की कोशिश करते हैं तभी देश में आपरेशन ब्ल्यू स्टार और इंदिरा गांधी की हत्या के बाद का 1984 वाला हत्यारा दौर उन्हें फिर से असुरक्षित बना देता है । " वह मेरा चेहरा " उपन्यास में असुरक्षा का आतंक आदि से अंत तक हावी है, यहां तक की उसकी समर्पण की पंक्तियों तक में लेखक बताता है कि वह हालांकी हत्याओं में शामिल तो नहीं था मगर परिणाम से

---

1. पहल 42 (अगस्त 1991) पृ. 199.

प्रभावित अवश्य हुआ । हालांकी " वह मेरा चेहरा " में मध्यप्रदेश के कस्बों और शहरों रायपुर, कांकेर, भोपाल आदि की चर्चा है किन्तु पंजाब की जगहों कपूरथला आदि की अतीत स्मृतियां भी वहां की जिंदगी को जब तब फोकस करती रहती हैं । इन्सानियत को जिस तरह से भाषा, धर्म आदि ने ग्रस लिया उसकी दर्दनाक तस्वीर तेजेन्दर के इस उपन्यास में है । तरसेम गुलजार के " जलता हुआ गुलाब " में पंजाब की हिंसक घटनाओं को पंजाब में रह रहे लेखक के द्वारा लगभग अखबारों रिपोर्टिंग वाली वास्तविकता के साथ उप - स्थित किया गया है । यहां पंजाब में आतंकवाद के हत्यारे चेहरे को नजदीक से देखने की कोशिश की गई है । हालांकि वर्णन में संवेदन शीलता और भावुकता दोनों ही जगह-जगह मिलती हैं ।

:-

द्वितीय अध्याय

भारतीय परिपेक्ष्य में पंजाबी जीवन

:-

पंजाब भारत के उन्नत भाल पर रखे स्वर्ण मुकुट की मणियों में मानो सर्वोत्तम है। इस क्षेत्र की बहती नदियों तथा उपजाऊ भूमि का अपना इतिहास है, और इसने सदैव भारत के इतिहास को भी प्रभावित किया है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि पंजाब का इतिहास कुछ अंशों में संपूर्ण भारत का भी इतिहास है, क्योंकि भारत की ऐति-हासिक कड़ी का सिरा अत्यधिक प्राचीन काल तक जाने पर पंजाब में ही हाथ आता है। भारत की सभ्यता पुरानी सभ्यताओं में से एक है और पंजाब में उसका शैशवकाल माना जाता है।[1] डॉ॰ चंद्रकांत बाली के

---

1. "Indologists are not agreed on the age of Indian civilisation except that it is among the oldest in the world and that its cradle was in the Punjab"

   - Khushwant Singh, A History of the Sikhs I (1469-1839) p.9

अनुसार - " हिन्दू जाति तथा हिन्दू संस्कृति का " आदिस्थान " असंदिग्ध शब्दों में पंजाब को माना जाता है । "[1] क्षितीश के विचारानुसार - " पंजाब आर्यों की संस्कृति की जन्मस्थली रहा है, वहीं वैदिक संस्कृति पुष्पित पल्लवित हुई । वहीं आर्यों के प्राचीन शक्तिशाली जनपदों की सर्वप्रथम स्थापना हुई । "[2] विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी लिखा है - " इन्द्र ने आर्यों के निवास के लिए " सप्तसिन्धु " की भूमि प्रदान की ।"[3] किन्तु पुरातत्व विभागों द्वारा निरन्तर की जाने वाली खोजों से पता चलता है कि आर्य सभ्यता से पहले भी इस क्षेत्र में कई सभ्यताएँ पनप चुकी हैं । पाषाण युग की सभ्यताओं में सोहन सभ्यता पंजाब में ही पनपी थी । बिलासपुर, गुलेर, दौलतपुर आदि स्थानों में एक तरफ धार किए हुए पत्थर के औजार मिले हैं, जो पाषाण युग की अन्य सभ्यताओं से भिन्न हैं । इसके बाद कृषि और पशु-पालन पर आधारित जीवन-निर्वाह से संबंधित अवशेष पंजाब में किली गुल मुहोम्मद (जो अब पाकिस्तान में स्थित है) नामक स्थान में पाए गए हैं । हड़प्पा-पूर्व विकास के तीसरे चरण में सुनियोजित मकान, तांबे की कुल्हाड़ी और मिट्टी के चित्रकारी युक्त रंगीन बर्तन मिलते हैं । कालान्तर में व्यापार, कर्म-कांड, सुरक्षा और प्रशासनिक काम-काज आदि की

---

1. पण्डित चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ. 2.
2. क्षितीश, तूफ़ान के दौर से पंजाब - पृ. 13.
3. पण्डित चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम खण्ड - पृ. 4.

आवश्यकतानुसार किलेबंदी मिलती है जो बाद में हड़प्पा सभ्यता के रूप में विकसित हुई ।[1] 1920 में मोहनजोदरो ॥ सिन्ध ॥ तथा हड़प्पा ॥ दक्षिणी पंजाब ॥ में की गई खोजों द्वारा पता चलता है कि आर्यों के आने से पहले इस क्षेत्र में सभ्यता अपने उच्चतम शिखर पर थी । सिन्धु नदी के किनारे बसे होने के कारण इसे " सिन्धु घाटी की सभ्यता " कहा जाता है। " नगरों के भग्नावशेषों के आधार पर ही पुरातत्ववेत्ताओं ने ऐसा अनुमान किया है कि निश्चय ही सिन्धु घाटी की सभ्यता नगर-सभ्यता थी, वैदिक सभ्यता की भांति यह ग्राम सभ्यता नहीं थी । "[2] उनकी अपनी नगर-योजना थी । चौड़ी सड़कें, बन्द नालियां, स्नानागार तथा कूड़े फेंकने के हौजों को देखकर उनके सफाई प्रिय होने की जानकारी मिलती है । ईसा से 15 शताब्दी पूर्व आर्य आए और यहां की सभ्यता का नाश हो गया । पंजाब के प्रसिद्ध नगरों के प्राचीन नामों पर दृष्टि डालने से भी स्थिति स्पष्ट होती है । मुलतान को पहले मूलस्थान कहा जाता था अर्थात् ऐसा स्थान जहां आर्यों ने सबसे पहले निवास किया । लाहौर का लब्धपुर नाम संकेत करता है कि आर्यों ने मुलतान के बाद इसे खोजा । ऐतिहासिक तथ्य, प्राचीन ग्रन्थ और पुरातत्ववेत्ताओं की खोज " पंजाब " को हिन्दू जाति एवं हिन्दू संस्कृति का आदि स्थान घोषित करते हैं ।

---

1. हरबंस सिंह - सम्पादित, पंजाब पास्ट एंड प्रजेंट में बुद्ध प्रकाश का लेख " पंजाब ए पैनोरेमिक व्यू " - पृ॰ 1 .

2. रतिभानुसिंह " नाहर ", भारत इतिहास की रूप-रेखा, पृ॰ 27.

पंजाब का गौरव उसके आदि-स्थान होने में ही नहीं है बल्कि वह भारत के सिंहदार तथा रक्षक होने की भूमिका भी निभाता चला आ रहा है । ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में देखने पर राजनैतिक दृष्टि से भी पंजाब का अपना ही महत्व दिखाई पड़ता है । सीमा - प्रांतीय प्रदेश होने के कारण सदियों से समय-समय पर आने वाले विदेशी आक्रान्ताओं ने सर्वप्रथम पंजाब को ही अपना निशाना बनाया । पंजाब ने सदैव बड़ी वीरता से सामना किया, पर जब भी पंजाब कमजोर पड़ा तो उसका फल पूरे हिन्दुस्तान को भोगना पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र को हस्तगत करने के बाद हमलावरों ने दिल्ली तक लूटमार की । यूनानी, शक, हूण, मंगोल, तातार, तुर्क, अफ़गान, मुगल सब पंजाब के मार्ग से होकर ही भारत में प्रविष्ट हुए । इस दृष्टि से भारत के उत्थान - पतन को पंजाब के उत्थान-पतन से जोड़ कर ही देखा जा सकता है । भारत में सर्व प्रथम आक्रमण आर्यों का हुआ, जिन्होंने यहां के निवासियों को भगाकर पूरे उत्तर-भारत पर अधिकार कर लिया । आर्यों की अपनी बोली तथा अपना धर्म था जिसे यहां उन्होंने और विकसित किया । इसलिए पंजाब में वैदिक हिन्दू धर्म का उदय हुआ । " पंजाब अन्तर्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेदकी रचना का देश निश्चित किया जाता है । "[1]

1· लक्ष्मणशास्त्री जोशी, वैदिक संस्कृति का विकास (अनु· डा· मोरेश्वर दिनकर पराडकर) पृ· 20·

अपने समय का, सम्पूर्ण भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का निर्णायक और भूमि के लिए लड़ा जाने वाला प्रथम युद्ध, महाभारत का युद्ध, तथा जनमेजय का नाग-यज्ञ भी पंजाब में ही हुए। महाभारत का युद्ध न्याय के लिए लड़ा गया ऐसा धर्म युद्ध था जिसमें भारत के प्राय: सभी भागों के राजाओं ने हिस्सा लिया था। किन्तु जनमेजय के नाग-यज्ञ के दौरान ब्राह्मणों ﴾ नाग जाति ﴿ तथा क्षत्रियों का ऐसा नया वर्ग-संघर्ष आरंभ हुआ जिसका परिणाम राजनैतिक दृष्टि से बड़ा भयंकर सिद्ध हुआ। वर्ण-व्यवस्था कमजोर होने से बाद में आक्रमणकारियों के लिए भारत में आने का मार्ग सुगम हो गया।

521-485 ई॰पू॰ में पर्शियनों ने पंजाब को जीता और कई सौ सालों तक पेशावर, तक्षशिला और रावलपिंडी पर राज्य किया। 326 ई॰पू॰ में विश्वविजयका स्वप्न लेकर निकलने वाला सिकन्दर महान तक्षशिला के राजा आम्भी के निमंत्रण पर ब्रह्मपुत्र को पार कर व्यास तक पहुंच गया। उसके सम्मुख झेलम के ब्राह्मण राजा पुरू को छोड़ कर अन्य सभी राजाओं ने सिर झुका दिए। पुरू की हार के बावजूद उसकी वीरता तथा साहसिकता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने उसे राज्य लौटा दिया। इसके फलस्वरूप गक्खरों के विरूद्ध उसे पुरू का सहयोग प्राप्त हुआ। गक्खरों की हार का मुख्य कारण यही था, अन्यथा सिकन्दर की सेना के तो पांव उखड़ चुके थे। इसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे वापस लौट जाने को मजबूर कर दिया। किन्तु मौर्यों के पतन के बाद ईसा से 175 वर्ष पूर्व मीनान्दर ने पंजाब में प्रवेश कर नर्मदा तक के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इसके बाद मंगोलों, हूणों का आक्रमण हुआ जो वर्धन सम्राट

द्वारा निकाले गए । इसके बाद आने वाले आक्रमणकारी अलग-अलग कबीलों से सम्बन्धित होते हुए भी एक ही धर्म में विश्वास करने वाले मुसलमान थे ।

1001 ईस्वी में महमूद गजनी भारत आया और लूट-पाट कर चला गया । प्रसिद्ध सोमनाथ का मन्दिर गज़नी द्वारा ही लूटा गया था । इसके बाद दूसरे अफ़गानी कबीले वाले आए, जैसे-गौरी, तुगलक, सूर तथा लोधी । राजपूत राजाओं के आपसी वैमनस्य और ईर्ष्या-द्वेष के कारण मोहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर मुस्लिम-शासन की नींव डाली । इस बीच तैमूर लंग द्वारा किए गए आक्रमण से भारत दशाब्दियों तक नहीं संभल सका । कोई सौ सालों बाद तैमूर के ही वंशज बाबर ने इब्राहिम लोधी को 1526 ई॰ में पानीपत की लड़ाई में हरा कर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । बाबर के वंशजों ने भारत पर मुगल शासकों के रूप में एक लम्बे अरसे तक शासन किया ।

मुगलकाल में इस्लामी शासन सफलता के शिखर पर पहुंच चुका था । क्योंकि उससे पहले के मुस्लिम शासकों को पंजाब, राजस्थान तथा अन्य क्षेत्रों के हिन्दू राजाओं से बराबर संघर्ष करना पड़ा किन्तु मुगल शासकों के सत्तारूढ़ होने के साथ-साथ हिन्दू राजाओं ने (राणा सांगा और राणा प्रताप के बाद) मानसिक तौर पर पराजय स्वीकार कर ली, जिससे छिटपुट विद्रोहों को छोड़कर मुगल शासकों को किसी बड़ी परेशानी का सामना-कम से कम हिन्दुस्तान के निवासियों[1] की

---

1. हुमायूँ को शेरशाह सूरी ने कुछ वर्षों तक शासन से वंचित रखा । सूरी की मृत्यु के पश्चात ही हुमायूँ दिल्ली वापस लौट सका ।

तरफ़ से—नहीं करना पड़ा । मुगल शासकों ने पंजाब पर अपनी पकड़ कभी भी ढीली नहीं होने दी । पंजाब में राज्यपालों की नियुक्ति में भी उन्होंने सतर्कता से काम लिया । बाबर ने तुर्क राज्यपालों के स्थान पर अपने राज्यपालों की नियुक्ति की - जालन्धर में दौलतखाँ लोधी, मुलतान में आलमखाँ, लाहौर में अब्दुलअज़ीज़ मुगल, स्यालकोट में खुसराव कोकुलताश आदि । शाहजहाँ ने दाराशिकोह को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया था । इसके अतिरिक्त मुगल शासक स्वयं भी समय-समय पर पंजाब का दौरा करते थे ।

इतनी सतर्कता के बावजूद पंजाब में नियुक्त सूबेदारों की असहिष्णु नीति के कारण पंजाब में कई बार दमन-चक्र चला । रिवज़खाँ, आसफ़खाँ, अलीमरदानखाँ, खलील, उलखाँ, जकरियाखाँ आदि सभी सूबेदारों ने पंजाब में राजनीति के दाँव-पेच खुलकर खेले जिनका अंजाम पंजाब की जनता को भोगना पड़ा । बालक हकीकतराय और भाई तारूसिंह इसी दौर में शहीद हुए । किन्तु मुगल शासन के कमजोर पड़ने पर औरंगजेब और उसके बाद के शासकों को दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा तथा गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने चैन नहीं लेने दिया ।

इस तरह हम पाते हैं कि सिक्खों के इतिहास को जाने बिना पंजाब ही नहीं, भारत का इतिहास भी अधूरा रह जाएगा । मुगल -काल से ले कर अब तक का इतिहास सिक्खों की वीर गाथाओं से भरा पड़ा है । सिक्ख धर्म का उदय हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों के मिलन

से हुआ था, जिससे इसमें दोनों धर्मों की झलक आयी, किन्तु कुछ तत्व ऐसे भी थे जो दोनो धर्मों के प्रभावों से मुक्त इसके अपने थे।[1]

सिक्ख पंथ के संस्थापक गुरु-नानक थे। वे वेदों को जानने वाले क्षत्रिय हिन्दू थे। उन्होंने ईश्वर के निराकार और अखण्ड रूप को स्वीकार करते हुए मूर्ति पूजा तथा वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया। वे इस्लाम द्वारा इच्छाविरुद्ध धर्म-परिवर्तन कराने के विरोधी थे। उन्होंने अपने शिष्यों की भोजन-व्यवस्था गुरु के लंगर में की जहाँ छोटे-बड़े सभी एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे। उनके द्वारा बनवाए गए पूजा स्थानों को पहले धर्मशाला तथा बाद में गुरुद्वारे का नाम दिया गया। सिक्खों के दूसरे गुरु अंगददेव गुरु-नानक से पहले लहना नाम के पक्के हिन्दू थे। गुरु नानक से मिलने के बाद वे गुरु के भक्त बन गए। उनकी भक्ति और निष्ठा देखकर ही गुरु-नानक ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

सिक्ख पंथ का उदय गुरु-नानक द्वारा बाबर के शासन-काल में हुआ, किन्तु इस पंथ का विकास बाबर के पोते अकबर के शासनकाल के दौरान हुआ। अन्य धर्मों के प्रति अकबर का उदारवादी दृष्टि-कोण इसमें सहायक हुआ। गुरु अमरदास, गुरु रामदास तथा अर्जुनदेव इसी काल में हुए। इस समय तक हिन्दुओं और सिक्खों में तात्त्विक समानता होते हुए भी अलगाव की प्रक्रिया शुरु हो चुकी थी। गुरु अमरदास ने गद्दी की स्थापना की। गुरुमुखी लिपि का विकास

---

1. Khushwant Singh, A History of the Sikhs I (1469-1839) p. 17

किया गया और उसमें गुरू के उपदेश लिपिबद्ध किए गए। सिक्खों में जन्म-मृत्यु तथा विवाह के लिए अलग रीति-रिवाज और धर्मग्रन्थ "ग्रन्थसाहिब तैयार हो चुके थे। परिणाम स्वरूप गुरू अर्जुनदेव ने साफ तौर पर कहा - "हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान।"

राजनैतिक दृष्टि से अगर देखा जाए तो छ: मुगल शासकों का समय गुरू-नानक से गुरू गोविन्दसिंह तक दस सिक्ख गुरुओं के समय से मेल खाता है।[1] इस समय तक लगभग सम्पूर्ण भारत के राजा मुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, किन्तु पंजाब में सिक्ख गुरू बराबर विद्रोह का झंडा उठाए रहे और मुगल सम्राटों द्वारा उनका कत्ल करवाया जाता रहा। गुरू अर्जुन देव के काल में सिक्ख राजनीति में सक्रिय हुए। गुरू अर्जुन देव ने खुसरो को प्रत्यक्ष रूप से आशीर्वाद दिया था और कहा जाता है कि अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने उसकी सहायता भी की थी जिससे कुपित होकर सम्राट ने उनकी हत्या करा दी। इससे सिक्ख खुलकर राजनीति में भाग लेने लगे। 1636 से 1639 ई॰ तक गुरू हरगोविन्द ने एक सेना रख ली और अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने लगे।

छठे गुरू हरगोविन्द ने ही हथियार रखने की प्रथा शुरू की। उन्होंने अमृतसर के मन्दिर में अकाल तख्त (अकाल पुरूष अर्थात परमात्मा का आसन) का निर्माण करवाया, जहाँ से सिक्खों के लिए हुक्मनामें जारी किए जाते थे। इन सबके बावजूद सिक्ख अपने को हिन्दुओं से

---

1. डा॰ रीता जोशी, औरंगजेब और हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध - पृ॰ 102॰

अलग नहीं मानते थे । नवें गुरु तेग बहादुर के शहीद होने पर उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह ने कहा था कि वे हिन्दुओं के लिए शहीद हुए हैं । गुरु तेग बहादुर की मुगल दरबार में नाटकीय ढंग से मृत्यु होने के उपरान्त बाकायदा मुगल-सिक्ख संघर्ष आरम्भ हो गया ।

दसवें गुरु गोविंदसिंह ने सिक्खों को एक लड़ाकू जाति के रूप में संगठित किया जो कि समय की माँग थी । उन्होंने खालसा सेना की स्थापना की और एक स्वतंत्र राज्य की कल्पना की । अपने अनुयायियों को नाम के साथ सिंह लगाने तथा पाँच ककार (कच्छा, कड़ा, केश, कृपाण और कंघा) धारण करने की आज्ञा दी । अपने सिंहों को अमृत छकाया और उन्हें खालसा [1] कहकर पुकारा । इससे सिक्खों का बाहरी स्वरूप हिन्दुओं से पृथक दिखाई देने लगा, लेकिन इस पृथकता में भी एकता झलकती रही । सहजधारी सिक्खों ने केश तथा दाढ़ी को नहीं अपनाया । हिन्दू भी आसानी से समझ में आने वाला गुरुग्रन्थसाहिब पढ़ते थे और गुरुद्वारे में जाते थे । इस एकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हिन्दू परिवारों में अपने एक पुत्र को केशधारी सिक्ख बना देने की प्रथा तथा आपस में रोटी-बेटी का रिश्ता अब तक देख सकते हैं ।

---

1. ध्यातव्य है कि " खालसा " और " आर्य " शब्द के मूल में एक ही भाव निहित है । " खालसा " अर्थात् शुद्ध । आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ आचरण वाला, जिसकी झलक " खालसा " में भी मिलती है ।

गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख धर्म में गुरु की परम्परा को खत्म कर दिया । वे सिक्खों के अन्तिम गुरु हुए । गुरु गोविन्द सिंह ने पंजाब के निवासियों में जिस शक्ति, साहस और चेतना का संचार किया, वह उनके बाद भी विद्यमान रही । गुरुगोविन्दसिंह के बाद उनके शिष्य बन्दा बैरागी ने मुस्लिम शासन की जड़ों को एकबारगी हिला दिया और सरहिन्द तक का क्षेत्र जीत लिया । इससे पंजाब में पहले स्वतंत्र राज्य की नींव पड़ी । किन्तु बाद में बन्दी बनाकर उसे सरे आम कत्ल कर दिया गया । मुस्लिम शासकों ने बहुत अधिक संख्या में सिक्खों को मारा । उस समय पंजाब में सिक्खों को शरण देने वाला भी कोई नहीं था । अधिकांश सिक्ख जंगलों और पर्वतों में भाग गए तथा कईयों ने केश मुंड़वा लिए । 1739 में हिन्दुस्तान पर नादिरशाह का क्रूर हमला हुआ । लौटते समय नादिरशाह की फौजों को अमृतसर के युवा सिक्खों ने ललकारा । थानेश्वर के पास सिक्खों ने नादिरशाह का सामान लूट लिया और सियालकोट तक उसका पीछा किया ।[1] लाखों हिन्दुस्तानियों को (विशेषकर औरतों को), जिन्हें नादिरशाह बन्दी बनाकर ले जा रहा था, सिक्खों ने छुड़ा लिया, जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों उनपर विश्वास करने लगे ।

---

1. के. के. खुल्लर, महाराजा रणजीत सिंह - पृ. 23.

अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर 21 सालों में आठ आक्रमण किए, जिनके दौरान पंजाब को अनेक अत्याचारों का सामना करना पड़ा। एक बार तो क्रोध में आकर प्रतिशोध स्वरूप उसने अमृतसर के स्वर्णमंदिर का विध्वंस कर डाला। हरमंदर साहिब को तोड़ दिया और पवित्र सरोवर को लाशों और खून से भर दिया। किन्तु वह सिक्खों की हिम्मत को तोड़ नहीं सका। सिक्खों की युद्ध नीति भी इसका एक कारण थी। हार जाने पर ये लोग भाग खड़े होते थे और खुलकर सामने भी नहीं आते थे, किन्तु अब्दाली के पीठ घुमाते ही फिर सक्रिय हो जाते थे। अन्त में तंग आकर उसने पंजाब की ओर से मुँह मोड़ लिया।

इसके बाद ब्रिटिश साम्राज्य तक का इतिहास सिक्ख मिसलों का है। सिक्खों ने जगह-जगह अपनी मिसलें कायम कीं। ये मिसलें एक प्रकार की फौजी सन्धियाँ थीं, जिन्हें सिक्खों को विदेशी आक्रमणों से बचने के लिए अपनाना पड़ा। कुल मिलाकर ऐसी 15 मिसलें थीं। इन्हीं में से एक मिसल के सरदार महानसिंह के घर राजा रणजीत सिंह का जन्म हुआ, जिन्होंने कालान्तर में पंजाब में एकता कायम करते हुए सिक्खों का नेतृत्व किया।

सिक्ख अपने आत्मविश्वास, साहस और दृढ़ता के बल पर ही पुन: संगठित हो सके थे और उन्हें इसका फल पंजाब में सिखों के शासन के रूप में मिला। महाराजा रणजीतसिंह ने पंजाब पर सफलतापूर्वक शासन करते हुए हिन्दू तथा सिक्ख धर्म को करीब लाने के लिए प्रयत्न किए। "वह ब्राह्मण पुजारियों के आगे सिर झुकाते थे। उन्होंने

गोवध का निषेध किया और अपने देहावसान से कुछ देर पहले यह इच्छा प्रकट की कि कोहिनूर नाम का हीरा पुरी में जगन्नाथ के मन्दिर में चढ़ा दिया जाए। "[1]

रणजीत सिंह की मृत्यु के केवल 10 वर्ष पश्चात ही सिक्खों की आपसी फूट तथा वैमनस्य के कारण वहां अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। किन्तु सम्पूर्ण भारत में पंजाब पर अंग्रेजों का आधिपत्य सबसे बाद में हुआ और वह भी गद्दारों के कारण। सिन्ध को जीतकर अंग्रेजों ने पंजाब को जीतने की भी योजना बनाई। अब केवल पंजाब का प्रदेश ही भारत में ऐसा रह गया था जिस पर अंग्रेजों का कब्जा न था। -------- सिक्ख सेना में ऐसे भी बहुत से सरदार थे जो अंग्रेजों से मिले हुए थे और अपने देश व राजा के प्रति गद्दारी कर रहे थे। "[2] पंजाब पर विजय प्राप्त करते ही अंग्रेज पूरे भारत के स्वामी बन गए।

अपनी आजादी खोने के 7-8 वर्ष बाद ही 1857 के पहले स्वतन्त्रता संग्राम में पंजाब सेना ने अंग्रेजों की मदद की। किन्तु इस दाग को बाद की क्रान्तियों में पंजाब-निवासियों ने अपना खून बहा कर धो डाला।[3] पंजाब में सर्वप्रथम कूका-विद्रोह हुआ, जिसके

---

1. कुलदीप नैयर - खुशवन्तसिंह, पंजाब समस्या आपरेशन ब्ल्यू स्टार और उसके बाद - पृ. 23.
2. हरिस्वरूप गौड़-आर्यों से याहिया तक, पृ. 159
3. भगतसिंह - "मेरे क्रान्तिकारी साथी" (संकलन वीरेन्द्र सिन्धू) पृ. 11.

असफल होने पर 50 व्यक्तियों को तोप से बांध कर उड़ा दिया गया और 16 को फांसी पर लटका दिया गया । अमृतसर के जलियांवाले बाग में होने वाले नरसंहार को कौन भूल सकता है । लाला लाजपत राय, शहीद भगतसिंह, सुखदेव, अमीरचन्द, करतारसिंह, धन्नासिंह आदि सैकड़ों शहीद पंजाब की भूमि पर हुए। पंजाब में हुई राजनैतिक क्रान्तियों में ग्रामीण किसानों { जट्टों } का योगदान रहा । कूका विद्रोह, घाघर आन्दोलन, अकाली आन्दोलन, बाबर अकाली आन्दोलन में गांवों के किसानों ने खुलकर भाग लिया । अमृतसर के जलियावाले बाग में भी ग्रामीण किसानों का ही खून ज्यादा बहा । वैसाखी के अवसर पर गांवों से अत्यधिक संख्या में लोग त्यौहार मनाने अमृतसर आए थे और अपने प्रिय नेताओं का व्याख्यान सुनने के लिए जलियावाले बाग में इकट्ठे हुए थे और वहीं पर उन्हें भून डाला गया । इतना ही नहीं ब्रिटिश शासन ने हिन्दुओं और सिक्खों के बीच अलगाव का बीज बो दिया । सिक्खों को अल्पसंख्यक घोषित कर विशेष सुविधाएँ दी गईं तथा केवल केशधारियों को ही सिक्ख मान कर सेना में भरती किया गया, जिससे उन्हें हिन्दुओं से अलगाव में ही आर्थिक लाभ दिखाई देने लगा । आर्य-समाज में महर्षि दयानन्द द्वारा सिक्खों को हिन्दुओं में मिला लेने के प्रयत्न का भी प्रभाव उल्टा ही पड़ा और सिक्खों ने घोषणा की कि हम हिन्दू नहीं हैं ।[1] यह अलगाववाद की भावना हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में क्षीण पड़ गई । इन झगड़ों में हिन्दू-सिक्ख

---

1. कुलदीप नैयर तथा खुशवन्तसिंह, पंजाब समस्या - पृ० 24.

इकट्ठे थे। साम्प्रदायिक झगड़ों, अंग्रेजों की चाल और कुछ नेताओं की मेहरबानी से पंजाब का एक बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के रूप में उससे कट गया। यह पंजाब के लिए बहुत बड़ी विडम्बना रही।

पंजाब के दुर्भाग्य का अंत यहीं नहीं हुआ। आजादी मिलने के पश्चात भी पंजाब का विभाजन हरियाणा और पंजाब के रूप में एक बार फिर हुआ। इन विभाजनों के परिणाम स्वरूप पंजाब का आकार इतना छोटा हो गया कि एक अकाली नेता के अनुसार - "एक दिन में साइकिल पर बैठकर सारे राज्य में घूमा जा सकता है।"[1] अब तो खालिस्तान की मांग को लेकर पंजाब में फिर से रक्त-पात हो रहा है और पता नहीं इसका अंत कब और किस रूप में होगा।

पंजाब के इतिहास को गौर से देखने पर ज्ञात होता है कि यह इतिहास वीरता, साहस और बलिदान से भरी जुझारू कौम की कहानी है।

धार्मिक विशिष्टता :-

धर्म के मामले में पंजाब की भूमि बहुत उर्वरा रही है। यहां बहुत से धर्म और विश्वास पाए जाते हैं। समय की खिड़की से अगर झाँक कर देखा जाए तो पता चलेगा कि जहाँ अनेक धर्म अपने चरमोत्कर्ष

---

1. कुलदीप नैयर तथा खुशवन्त सिंह, पंजाब समस्या - पृ. 6.

पर पहुँचे वहीं कई धर्म पतनोन्मुख हो समय के गर्त में विलीन हो गए। यहाँ की भूमि में विस्तार और प्रचार पाने में सफल और असफल दोनों प्रकार के धर्मों ने पंजाब के जन जीवन पर अपना कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य छोड़ा है। कोई भी धर्म पूर्ण रूप से समाप्त नहीं होता, उसके कुछ न कुछ तत्व नए रूप में वर्तमान में विद्यमान रहते हैं। जन सामान्य पर पड़ने वाला उनका प्रभाव प्रचलित धर्मों में स्थापित हो जाता है। द्रविड़ जाति और उनके धर्म के पतन के पश्चात भी इस क्षेत्र में द्रविड़ों में प्रचलित लिंग पूजा और महादेव की पूजा प्रचलित रही है। इसके पश्चात आने वाला आर्यों का वैदिक धर्म समय के थपेड़ों को सहता हुआ [1] अपने पूर्णशक्तिमान रूप में यहाँ उपस्थित मिलता है। वैदिक धर्म में प्रचलित प्रकृति की पूजा तथा मंत्रों के उच्चारणों के साथ हवन किया जाता है। विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से प्राकृतिक आपदाओं से खेतों और बच्चों की रक्षा तथा शत्रुओं का नाश होगा। आर्यों ने (अपनी धार्मिक पुस्तक के रूप में) वेदों का निर्माण किया, श्रुतियों और स्मृतियों की रचना की। वेदों में सभी प्रकार के मंत्रों और उनके अर्थ का संग्रह किया गया है। वेदों को अथाह ज्ञान का भंडार माना जाता है। आर्यों द्वारा चलाए गए हिन्दू धर्म की गणना संसार के प्राचीनतम धर्मों में की जाती है।

---

1. मुस्लिम और अंग्रेजी दोनो राज्यकालों में वैदिक धर्म को खतरा उत्पन्न हो गया था, क्योंकि दोनों ही शासक वर्ग यहाँ अपना - अपना धर्म-प्रचार भी करना चाहते थे।

कालान्तर में वैदिक धर्म की कट्टरता, वर्ण-व्यवस्था तथा बलि आदि कुरीतियों के विरोध में बौद्ध-धर्म का आविर्भाव हुआ। पंजाब में बौद्धमत का प्रवेश ईसा की कई शताब्दियों पूर्व हो चुका था। जगाधरी के निकट " सुध " नामके गांव में अभी अभी जो खुदाई हुई है, उससे ऐसा अनुमान लगाया गया है कि महात्मा बुद्ध स्वयं प्रचारार्थ पंजाब में आए थे।[1]

महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में तिब्बत और चीन तक प्रसार पाने वाला बौद्ध धर्म उनकी मृत्यु के पश्चात धीरे-धीरे पतन की गहराइयों में डूबता गया, केवल हिमालय की कुछ घाटियों में ही इसके अनुयायी मिलते हैं। हिन्दू धर्म फिर अपनी सत्ता के सिंहासन पर आरूढ़ हो गया।

हिन्दू धर्म से तीन शाखाएँ फूटीं - शैवमत, वैष्णवमत तथा शाक्तमत। शैवमत के अनुयायी शिवजी के उपासक हैं। इनमें अघोरियों, सन्तों तथा जोगियों की भरमार है। शैवमत के सन्यासी माथे पर राख का त्रिशूल लगाए तथा शेर या चीते की खाल ओढ़े रहते हैं। जोगियों में नाथपंथी गोरखनाथ के अनुयायी हैं। नाथपंथ के " चौरंगी नाथ, बालानाथ, जालन्धरनाथ, जयदेव आदि पंजाब के ही रहने वाले थे। "[2] वैष्णवमत के लोग विष्णु के उपासक हैं। ये लोग शराब

---

1. जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ 16

2. - वही - — वही —

तथा मांस से परहेज करते हैं । वैष्णव का असली अर्थ विनम्र-दयालु और सबकी सहायता करने वाला है । यही अर्थ महात्मा गांधी के लोकप्रिय भजन " वैष्णव जन तो तैने कहिए जे पीर पराई जानेरे । " में व्यक्त हुआ है । आज इसके असली अर्थ को भक्त और पुजारी दोनों ही भूलते जा रहे हैं । ये लोग बस विष्णु मन्दिर जा कर पूजा करना और विष्णु सम्बन्धी स्तोत्र पढ़ना ही अपना कर्त्तव्य मानते हैं। शाक्तमत के लोग देवी शक्ति या दुर्गा की पूजा करते हैं । देवी के कई मन्दिर यहां मिलते हैं । देवी पर पशु-बलि चढ़ा कर उसे प्रसन्न किया जाता है । शाक्तमत में धीरे-धीरे तन्त्र-साधना भी की जाने लगी है जिससे यहां जादू-टोने, भूत-प्रेत आदि का विश्वास घर कर गया ।

भारतवर्ष की भूमि पर उत्पन्न इन धर्मों के अतिरिक्त पंजाब में विदेशी आक्रमणकारियों के धर्मों का भी प्रभाव पड़ा । मुख्यत: ये इस्लाम और ईसाई धर्म हैं । यद्यपि इस्लाम धर्म के अनुयायी 8 वीं शताब्दी में ही व्यापार के सिलसिले में भारत के पश्चिमी तट पर आ कर बस चुके थे तथापि उत्तर भारत में इनका आगमन ।। वीं शताब्दी में पंजाब पर तुर्कों के आधिपत्य के बाद से हुआ । महमूद गजनवी और मोहम्मद गोरी ने गजनी और हेरथ के मुस्लिम दरबार के कायदे कानून को यहां भी लागू कर दिया । इस्लाम में शुरू से जन्म या जाति के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं माना जाता था किन्तु जातिवादी लोगों के सम्पर्क में आने से उनमें भी कई सम्प्रदाय बन गए [1] जैसे —

---

1. P.N. Chopra (ed.) Religions and communities of India, p.193

शिया, सुन्नी, वहाबी, अहमदी, आदि कोई 72 धार्मिक समुदाय सामने आये । ये अलग-अलग जातियां नहीं थीं बल्कि इनमें नियम और विचारों के मतभेदों के कारण अलगाव था । इन समुदायों में परस्पर विवाह सम्बन्ध तो मान्य हैं हीं बल्कि एक समुदाय से दूसरे समुदाय में जाना भी वर्जित नहीं है । सुन्नी सिद्धवादी मुस्लिम हैं और इनका वजूद शियाओं से पहले मिलता है । ये लोग मोहम्मद साहब के कार्यों को सर्वप्रथम मान्यता देते हैं । पंजाब में सुन्नी मुसलमानों की संख्या सबसे अधिक रही है ।[1]

पंजाब में संख्या की दृष्टि से सुन्नी मुसलमानों के बाद शिया मुसलमानों की संख्या सबसे अधिक है । शिया और सुन्नी में मतभेद का आधार धार्मिक न होकर राजनैतिक है, जो मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उठ खड़ा हुआ था । हिन्दू मुस्लिम जातियों को नजदीक लाने और इस्लाम धर्म तथा नव - मुस्लिम लोगों के विचारों और विश्वासों में सुधार लाने में सूफी सन्त सहायक हुए । पंजाब में सूफी सन्तों का प्रभाव 15 वीं और 16 वीं शताब्दी में सबसे अधिक रहा । सूफियों के तकरीबन 14 सिलसिले हुए जिनमें प्रमुख चिश्ती, कादरी, नक्शबंदी, फिरदौसी आदि थे । सूफियों के गढ़ लाहौर के अतिरिक्त थानेश्वर, हांसी, नारनौल और पानीपत में थे । पानीपत चिश्ती और कलन्दर दोनों का केन्द्र रहा ।[2]

---

1. यह स्थिति पंजाब विभाजन से पहले थी । विभाजन के बाद पंजाब में मुसलमानों की संख्या अधिक नहीं है ।

2. S.S. Gandhi, History of the Sikh Guru, p.13

इस्लाम तथा हिन्दू दोनों धर्मों की बुराइयों, धार्मिक कट्टरता और इस्लाम द्वारा बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करवाने की नीति आदि के विरोध में पंजाब में सिक्ख पंथ का उदय हुआ । इसके प्रवर्तक गुरु नानक देव थे, इन्होंने समस्त धर्मों के लोगों को भ्रातृत्व, एकेश्वर - वाद एवं समानता के आधार वाले सिक्ख धर्म में आमन्त्रित किया । वास्तव में सिक्ख धर्म, धर्म न होकर एक सम्प्रदाय था जो हिन्दू धर्म के आधार भूत सिद्धान्तों पर आरूढ़ था ।[1] सिक्ख धर्म में नाम, सबद तथा हुकुम का बड़ा महत्त्व है । " नाम के बिना व्यक्ति असम्मानित और शर्मनाक जीवन व्यतीत करता है तथा माया के मोहपाश में फंस कर पूर्ण सर्वनाश को प्राप्त होता है । "[2]

गुरुनानक की परिभाषानुसार शब्द ईश्वर से सम्पर्क का संदेश है जो मनुष्य के ध्यान का मुख्य केन्द्र होना चाहिए । शब्द के ध्यान के बिना मनुष्य सांसारिक मोहमाया में लिप्त हो कर (अस्तित्व के समुद्र में) गोता खाने लगता है ।[3]

" हुकुम " सिक्ख धर्म की आधार भूत अवधारणाओं में से एक है । " जप " के माध्यम से गुरु स्वयं प्रश्न करता है " सत्य को किस प्रकार ढूँढा जा सकता है" और समाधानस्वरूप कहता है कि सच्चाई हुकुम के प्रति समर्पण से प्राप्त होती है ।[4]

---

1. डा॰ रीता जोशी, औरंगजेब और हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध -पृ॰101॰
2. S.S. Gandhi, History of the Sikh Guru, p.130
3. - ibid, p.133
4. - ibid, p.134

सिक्ख धर्म मुख्यतः समानता और भ्रातृत्व भावना पर आधारित था । अतः हिन्दू धर्म के छुआ-छूत से पीड़ित छोटी जाति के व्यक्तियों ने स्वेच्छा से इसे अपनाया । उन्होंने सद्भावना और मानव जाति से प्रेम पर बल दिया । अतः सिक्ख धर्म के अनुयायियों में क्रमशः वृद्धि होती गई । प्रारम्भ में सिक्ख धर्म पूर्णतः धार्मिक आधार लिए था किन्तु कालान्तर में इसने एक सैनिक अनुशासन का रूप ले लिया, जो तत्कालीन समय की मांग थी । गुरु अर्जुनदेव की हत्या के बाद सिक्ख गुरुओं ने बदले की भावना और हिन्दू धर्म के रक्षार्थ तलवार उठा ली । सिक्ख धर्म अपने दस गुरुओं के नेतृत्व में उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होता गया । यद्यपि दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने अपने आपको अंतिम गुरु घोषित करते हुए गुरु परम्परा समाप्त कर दी तथापि सिक्खों में पक्का विश्वास था कि गुरु की आत्मा सिक्ख मन्त्रणाओं में हमेशा मौजूद रहेगी ।[1] गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात भी सिक्खों को बन्दा बहादुर और महाराजा रणजीतसिंह जैसे योग्य व्यक्तियों का नेतृत्व मिला । सिक्ख गुरुओं तथा उनके अनुयायियों के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि सारे सिक्ख गुरु खत्री (व्यापारी) जाति के थे जबकि उनके गुरु के अनुयायियों में अधिकतर जाट-सिक्ख (खेती-बारी करने वाली उत्तरी-भारतीय जाति) थे ।[2]

---

1. Ethne K. Manenco, Transformation of Sikh Society, p.27
2. - वही - पृ. 30.

वर्तमान सिक्ख पंथ में विभिन्न समुदाय मिलते हैं - नानक पंथी, उदासी, सेवापंथी, निर्मलाज तथा निहंग, नानकपंथियों में गुरू-नानक से कोई प्रत्यक्ष रक्त-सम्बन्ध नहीं मिलता, यद्यपि कुछ अपने-आपको नानकपुत्र या गुरू के बेटे कहते हैं और गुरू-नानकसे अपने रक्त-सम्बन्ध होने का दावा करते हैं।

गुरू गोविन्द सिंह ने अपने अनुयायियों को पांच ककार (केश, कंघी, कच्छा, कड़ा, कृपाण) रखने की आज्ञा देते हुए उन्हें " खालसा " की उपाधि दी । खालसा अधिकतर जाट सिक्ख होते हैं जिनमें सैनिक अनुशासन, लम्बे बाल तथा दाढ़ी रखने एवं तम्बाकू से दूर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है । गुरू गोबिन्दसिंह द्वारा बताए गए निशान धारण करने वाले खालसा " नामधारी " और ये निशान धारण नहीं करने वाले " सहज धारी " सिक्ख कहलाए । बन्दा बहादुर, जिन्हें बन्दी बना लिया गया था, के अनुयायी "बन्दा पंथी" कहलाए ।

सिक्खों के अपने पर्व सिक्ख गुरूओं के जन्म, मृत्यु और सिक्ख पंथ के इतिहास में घटने वाली मुख्य घटनाओं से सम्बन्धित हैं, जिनमें छः तिथियाँ तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं - गुरू नानक और गुरू गोविन्द सिंह के जन्मदिन तथा गुरू अर्जुनदेव, गुरू तेगबहादुर और गुरू गोविन्द सिंह के दोनों पुत्रों के मृत्युदिवस । खालसा और होला मोहल्ला की स्थापना के दिन का भी अपना महत्व है । इन अवसरों पर सिक्ख लोग शहर में सड़कों पर जलूस निकालते हैं । फूलों से सजी गाड़ी पर

गुरु ग्रन्थ साहिब की सवारी निकलती है, जिसके साथ-साथ दो आदमी निशान साहिब ले कर चलते हैं और पांच आदमी "पंज प्यारों" का प्रतिनिधित्व करते हुए आगे-आगे नंगी तलवार लिए चलते हैं। औरतें इसके पीछे रहती हैं जबकि आदमी गाने वालों के साथ आगे चलते हैं। गुरुद्वारे में बड़े पैमाने पर लंगर खुलता है जहां श्रद्धालु एक साथ बैठकर खाना खाते हैं।[1]

वैसे तो देश में 200 से भी अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारे हैं जहां सिक्ख तीर्थयात्रा के लिए जाते हैं, लेकिन गुरु गोविन्दसिंह से सम्बन्धित चार गुरुद्वारे, जो चार तख्त के नाम से जाने जाते हैं, अपना अलग महत्व रखते हैं। ये पटना, आनन्दपुर, अमृतसर और नानदेद में स्थापित हैं।

वर्तमान भारत के भाग्य की यह विडम्बना ही है कि सिक्ख पंथ जिसने हिन्दू धर्म के रक्षार्थ तलवार उठाई थी आज हिन्दू धर्म के विरोध मेंही उठ खड़ा हुआ प्रतीत होता है। परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक झगड़े आज पंजाब में अपना उग्र रूप धारण किए हुए हैं।

भारत में मुस्लिम सत्ता के कमजोर पड़ने और शासकों की आपसी फूट का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने यहां अपना साम्राज्य कायम कर लिया, इसीके साथ यहां ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ। अंग्रेज शासकों और ईसाई मिशनरियों ने अंग्रेजी शिक्षा और धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया, जिससे दलित वर्ग के लोग ईसाई धर्म की ओर

---

1. P.N. Chopra (ed.) Religions and Communities of India, p.179

आकर्षित हुए । इस आकर्षण के पीछे विश्वास तथा श्रद्धा की भावना कम और अंग्रेज सरकार तथा पादरियों द्वारा मिलने वाली सुख-सुवि - धाओं का लालच अधिक था । कुछ उच्च जाति के हिन्दुओं ने भी हिन्दू धर्म के कर्म-कांडों और छोटी जाति के लोगों पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में तथा सच्ची भावना और विश्वास के कारण ईसाई धर्म स्वीकार किया, किन्तु ऐसे उदाहरण नगण्य रहे । धर्म - परिवर्तन करने वालों में पिछड़ी और छोटी जाति के लोगों की ही बहुतायत रही जो उच्च जाति, विशेषकर ब्राह्मणों, द्वारा सताए हुए थे । कुछ लोगों ने अवसरवादी मनोवृत्ति के कारण जीवन में उन्नति पाने के लिए शासकों का धर्म अपना लिया । इस प्रकार पंजाब में ईसाई धर्म भी प्रवेश पा गया । मोटे तौर पर पंजाब के लोगों का जीवन इन्हीं चारों धर्मों से प्रभावित हुआ ।

धार्मिक आन्दोलन :-

इन धर्मों के अतिरिक्त धार्मिक आन्दोलनों और सुधारों का भी प्रभाव पंजाब पर पर्याप्त रूप से पड़ा । ये धार्मिक आन्दोलन तत्कालीन सामाजिक बुराइयों, अंग्रेजी शिक्षा और तौर-तरीकों का अन्धानुकरण तथा ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव के विरोध में कार्यरत हुए थे । ब्रह्म समाज का उदय बंगाल में हुआ और वहीं उसका प्रमुख कार्यक्षेत्र भी रहा किन्तु बहुत थोड़े रूप में ही सही यह पंजाब में भी आया । ब्रह्म समाज के सदस्य पं दयालसिंह मजीठिया द्वारा आर्ट्स कॉलिज की स्थापना स्वंतत्र शिक्षा के लिए की गई ।[1]

---

1. P.N. Chopra (ed.) Religions and Communities of India, p.26

आर्य समाजी आन्दोलन स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा गुजरात में शुरू किया गया था, परन्तु उसका सर्वाधिक प्रचार तथा प्रसार पंजाब में ही हुआ । उस समय हिन्दू अपनी जाति, संस्कृति और धर्म के प्रति उदासीनता और विक्षोभ से भर कर पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता के चकाचौंध से दिग्भ्रमित हो रहे थे । आर्य समाजी आंदोलन के मूल में लम्बे समय से विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा हिन्दुओं की निरन्तर होनेवाली पराजय तथा विदेशी शासकों द्वारा किया गया यहां की जाति और संस्कृति का अपमान काम कर रहा था । अन्य कारणों में हिन्दू समाज के अपने अन्तर्विरोध, इसके कड़े बन्धन और पंडे-पुजारियों द्वारा धर्म को जटिल रूप प्रदान करना मुख्य थे, किन्तु अंग्रेजी पढ़ने, अंग्रेजी सभ्यता का अन्धानुकरण करने और ईसाई धर्म अपना कर अपने को आधुनिक कहलाने और सरकारी नौकरी प्राप्त करने का लोभ भी नई पीढ़ी के लिए कुछ कम नहीं था । ईसाई प्रचारकों द्वारा खोले गए अंग्रेजी स्कूल तथा कॉलेज अंग्रेजी भाषा और विज्ञान की पढ़ाई (जो सरकारी नौकरी की मुख्य शर्तें थी) के कारण आकर्षण का मुख्य केन्द्र बने हुए थे । ईसाई प्रचारकों को आशा थी कि बहुत जल्दी सम्पूर्ण भारत ईसाई धर्म में परिवर्तित हो जाएगा । ऐसे समय में हिन्दू धर्म की रक्षा और उसकी पूर्ण व्याख्या करने के लिए आर्य समाज की संस्था सामने आई और स्वामी दयानन्द ने नयी रोशनी की खोज के लिए " वेदों की ओर " (बैक टू वेदाज) का नारा लगाया । उन्होंने वेदों और पुराणों में छिपे ज्ञान के अथाह भंडार को खोज निकाला तथा इनकी पुनर्व्याख्या करते हुए हिन्दू धर्म के असली स्वरूप को जनता के सामने पेश किया । अंग्रेजी स्कूलों और कॉलेजों के विरोध में लाहौर में (1886) सर्वप्रथम

गैर-सरकारी और गैर-ईसाई डी•ए•वी• (दयानन्द एंग्लो वैदिक) कॉलेज " का निर्माण किया । हिन्दू धर्म में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था को नया रूप देते हुए उन्होंने कहा कि कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार समाज में कार्य चुन सकता है और कार्य के आधार पर ही व्यक्ति का वर्ण और जाति निर्धारित की जाएगी न कि जन्म के आधार पर । इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप लाहौर में एक उच्च जाति के हिन्दू ने जूते की दुकान खोली थी ।[1]

आर्य समाज द्वारा चलाए गए शुद्धि आन्दोलन में समाज-सुधार की योजनाओं के अन्तर्गत गोवध, बहु-विवाह, छुआ-छूत, भेदभाव, सती-प्रथा, कन्यावध, पर्दा प्रथा आदि का विरोध किया गया और विधवा-विवाह पर जोर दिया गया । बाल-विवाह का विरोध करते हुए आर्य समाज ने विवाह के अवसर पर कन्या की उम्र 18 वर्ष तथा लड़के की उम्र 21 वर्ष तय की ।

इन प्रयासों का परिणाम आशाजनक ही रहा । हिन्दुओं में अपनी जाति और संस्कृति के प्रति जिज्ञासा और आदर का भाव उत्पन्न हुआ । समाज-सुधार के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप स्त्रियों और छोटी-जाति के प्रति उच्च वर्ण और वर्ग के लोगों के व्यवहार में अन्तर आने लगा । परिणाम स्वरूप धर्म-परिवर्तन की घटनाओं में कमी आई ।

---

1. P.N. Chopra (ed.) Religions and Communities of India, p.28

हिन्दुओं से अपनी अलग पहचान बनाने के लिए सिक्खों में निरंकारी, राधा-स्वामी और नामधारी आन्दोलन चले। निरंकारी आन्दोलन दयाल दास द्वारा 1855 में चलाया गया। उसने मूर्तिपूजा और तीर्थयात्राओं का विरोध किया परन्तु धार्मिक व्यक्तियों को सम्मान देने के लिए कहा। धार्मिक कर्म-कांडों का विरोध करते हुए उसने भगवान का निरंकार रूप स्वीकार किया। उसने अपने आपको निरंकारी कहते हुए इस पद की रचना की --

" धन्न निरंकार,
देह धारी सब ख्वार। "[1]

दयालदास के अनुयायियोंने भी अपने आपको निरंकारी कहना शुरू कर दिया। निरंकारियों ने दयाल सार में अपना केन्द्र स्थापित करके दयाल दास और उसके उत्तराधिकारियों को अपना गुरु माना।

राधा स्वामी आन्दोलन की शुरूआत 1818 में शिव दयाल सिंह नामक हिन्दू के नेतृत्व में हुई। शिव दयाल सिंह " आदि ग्रन्थ " की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित था। उसने अपना एक अलग पंथ चलाया जिसमें हिन्दुओं और सिक्खों दोनों के तत्व सम्मिलित थे। उसने हिन्दू और सिक्ख दोनों को आकर्षित किया। यद्यपि राधा स्वामी आन्दोलन सिक्ख पंथ के बहुत नजदीक है और उनके गुरुओं की वाणी बहुत कुछ आदि ग्रन्थ से ली गई है फिर भी उन्हें सिक्ख पंथ की एक शाखा के रूप में ही

---

1. Khushwant Singh, A History of the Sikhs (1839-1974) p.123

नहीं देखा जा सकता । इन पर सहजधारी सिक्खों का भी प्रभाव देखा जा सकता है । ये लोग " आदि ग्रन्थ " मे संकलित केवल पहले पांच गुरुओं की शिक्षाओं को स्वीकार करते हैं । राधा स्वामियों ने सहजधारी सिक्ख पंथ को एक नया रूप प्रदान किया जिसने हिन्दू और सिक्ख दोनों को अपनी तरफ काफी संख्या में आकर्षित किया ।[1]

नामधारी आन्दोलन बालक सिंह के नेतृत्व में शुरू हुआ । बालकसिंह ने अपने अनुयायियों को सादा रहने और भगवान का नाम जपने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के धार्मिक कृत्य को करने से मना कर दिया । बालकसिंह द्वारा चुने गए उसके उत्तराधिकारी रामसिंह ने अपने सम्प्रदाय में ऐसे कई परिवर्तन किए जिनसे नामधारी सिक्ख तथा अन्य सिक्खों में अन्तर पैदा हो गया । उसके अनुयायी मन्त्रों का उच्चारण करते थे, नाचते थे और जोर-जोर से कूका लगाते अर्थात् चीखते - चिल्लाते थे, जिससे उनका नाम ही " कूका " पड़ गया । ये लोग हाथ के बुने श्वेत वस्त्र धारण करते थे और इनका पगड़ी बांधने का ढंग भी बाकी सिक्खों से अलग था । ये माथे के सामने से बिल्कुल सीधी - सपाट पगड़ी बांधते थे । आदर-सत्कार सूचक शब्द परम्परागत " सत सिरी अकाल " न कहकर " सत अकाल पुरख " कहते थे । ये लोग केवल गुरु गोविन्द सिंह को ही अपना गुरु मानते थे और " ग्रन्थ " को अपनी पवित्र

---

1. Khushwant Singh - A History of the Sikhs, p.127.

पुस्तक/जाति-पाति के भेद-भाव को नहीं मानकर इन्होंने अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया । गाय को धार्मिक पशु मानना, मांस खाना, तम्बाकू या शराब पीना इनके लिए वर्जित था ।

पंजाब के लोगों का जीवन इन विभिन्न धर्मों और धार्मिक आन्दोलनों से बेतरह प्रभावित हुआ । यहां के लोगों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना है, इसीलिए यहां इतने सारे धर्मों के लोग आपस में घुल-मिल गए । गुरुद्वारों में तो हिन्दू- सिक्ख दोनों जाते ही हैं, इसके अतिरिक्त मुस्लिम सूफी सन्त, फकीरों तथा पीरों में भी हिन्दू तथा सिक्ख विश्वास रखते हैं और उनकी दरगाहों में जा कर मन्नते मांगते हैं । यद्यपि राजनैतिक कारणों से पंजाब में भी साम्प्रदायिक दंगे होते रहे हैं तथापि वहां की सामान्य जनता अन्य धर्मों के प्रति काफ़ी उदार है । यही पंजाब की धार्मिक विशिष्टता भी है ।

पंजाबी जीवन का राजनैतिक और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य :-

किसी भी प्रदेश की संस्कृति के निर्माण में कुछ तत्वों का विशेष योगदान रहता है, जिन्हें समझे बिना उस संस्कृति की विशेषताओं को नहीं जाना जा सकता । पंजाब की सांस्कृतिक विशिष्टता बहुत कुछ उसकी प्राचीनता और विविधता में निहित है । सीमावर्ती प्रदेश होने से उत्तर पश्चिमी दर्रों तथा उत्तरी पर्वतों को लांघ कर आने वाले आक्रमणकारी सर्व प्रथम पंजाब में प्रवेश करते और यहां की उपजाऊ

भूमि और प्राकृतिक सम्पदा से आकर्षित होकर एक बार तो यहीं बस जाते, बाद में चाहें दक्षिण की तरफ या आगे जाने का विचार उन्हें आता ।

इस क्षेत्र में बसी सोहन सभ्यता और कुछ जंगली जातियों का भी उल्लेख मिलता है किन्तु सिंधु घाटी की सभ्यता ही यहां की प्राचीन सभ्यता कहलाती है । अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सभ्यता अपने चहुंमुखी विकास पर थी, जब आर्यों ने यहां आक्रमण कर सब कुछ नष्ट कर दिया और एक ऐसी नई सभ्यता का विकास किया जिसमें द्रविड़ सभ्यता के भी बहुत से तत्व सम्मिलत हो गए । द्रविड़ लोगों का अपना धर्म, देवता, रीति-रिवाज, विश्वास थे, उनका जीवन सांस्कृतिक आचार-विचार और स्वयंनिर्मित निष्ठाओं से युक्त था । इसके विपरीत आर्य गांवों में या खुले में रहनेवाली जाति थी । वे आचार-विचार और रहन-सहन में ही नहीं बल्कि वर्ण और कद-काठी में भी द्रविड़ लोगों से भिन्न थे । आर्य गौरवर्ण, ऊंचीनाक और लम्बे डील-डौल के कारण अपने को श्रेष्ठ समझते थे और चपटी नाक, श्याम वर्ण के कारण द्रविड़ जाति को हीन । इस श्रेष्ठता की भावना के बावजूद धीरे-धीरे वर्ण-संकरजातियां दिखाई पड़ने लगीं और आर्य सभ्यता में द्रविड़ सभ्यता के तत्व प्रवेश पा गए । इसके पीछे दो कारण मूल रूप से दिखाई पड़ते हैं । पहला युद्ध-बन्दियों के रूप में अनेक द्रविड़ों को दास बनाना । इन्हें निम्न श्रेणी का कार्य करने के लिए बाध्य किया गया । फलस्वरूप शूद्र जाति का श्रीगणेश हुआ और जाति प्रथा की नींव पड़ी । दूसरा कारण आक्रमणकारियों द्वारा यहां की स्त्रियों

से विवाह करना था । इससे आगामी पीढ़ियों में दोनो जातियों का मिश्रण दिखाई पड़ने लगा । इन दोनों कारणों से आर्य निरन्तर द्रविड़ों की संगति में रहे । परिणामस्वरूप नई संस्कृति में आर्यों के मन्त्रोचारण हवन तथा प्राकृतिक शक्तियों की पूजा के साथ-साथ द्रविड़ संस्कृति में प्रचलित मूर्ति पूजा, लिंग पूजा और अनेक अन्धविश्वास भी स्थान पा गए ।

आर्य ही नहीं वरन् उनके बाद आने वाले अनेक आक्रमणकारियों द्वारा यही कहानी दोहराई जाती रही । महाभारत के युद्ध के परिणामस्वरूप कुरू वंश के पतन से सरस्वती घाटी में अनेक जातियाँ आकर बस गईं, जिनमें से अहीर और जाट प्रमुख हैं । अहीर सम्भवत: वे ही लोग थे जिन्हें हिब्रू, कनानाइट और मिश्र की पुस्तकों में इभ्री और अपिरू कहा गया है । अहीर सैनिक, आक्रमणकारी और विद्रोही थे [1] जबकि जाट स्वभाव के अशिष्ट माने जाते थे । जाटों के आगमन के बारे में विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वानों की मान्यता है कि जाट यदू या जदू नामक जाति के आर्य हैं और मूल रूप से राजपूतों के समुदाय के ही हैं, जिन्होंने अलग-अलग काल में भारत में प्रवेश किया ।[2] कुछ विद्वान इस क्षेत्र में प्रचलित विश्वास को मान्यता देते हैं कि एक ही समुदाय के ऐसे लोग राजपूत कहलाए जिन्होंने रक्त की शुद्धता को बरकरार रखते हुए हिन्दू जीवन की परम्परागत रूढ़ियों को निभाया,

---

1· डा· बुद्ध प्रकाश, हरियाणा का इतिहास : एक सर्वेक्षण – पृ· 6·

2· Khushwant Singh, A History of the Sikhs (1839-1974) p.127

किन्तु इन कसौटियों पर खरे न उतरने वाले लोग जाट कहलाए । [1] आजकल गांवों में जो पंचायत का स्वरूप दिखलाई पड़ता है उसे मूल रूप में जाट ही अपने साथ लाए थे । जाट मूल रूप से खेतिहर या योद्धा थे । वे अपनी भूमि की रक्षार्थ कमर में तलवार बांधे रखते थे । उनमें आपस में समानता का व्यवहार रहता था किन्तु ये अपनी स्वतंत्रता के बारे में बहुत सतर्क रहते थे । समानता की भावना के कारण ही उन्होंने ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मानने और उन्हें विशेष अधिकार देने से इनकार कर दिया । इस क्षेत्र में जाटों की विशेषता इसी बात से सिद्ध होती है कि कालान्तर में सिक्खों में निहंग अधिकतर जाट ही बने ।

विदेशी आक्रमणों द्वारा तुर्क, अफ़ग़ान, अरब, पठान, युनानी, मंगोल, बिलोच, पर्शियन, गक्खर आदि कई जातियां समय-समय पर यहां आकर बसती रहीं, ये अपने साथ अपना धर्म, भाषा और संस्कृति लेकर आई थीं । भाषाओं और संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन से यहां एक नई संस्कृति ने जन्म लिया, जिसके चलते यहां के निवासियों के अपने विश्वास, विचार तथा दृष्टिकोण निर्मित हुए ।

पंजाब में बसने वाली ये जातियां धीरे-धीरे अपनी मूल पहचान खोकर यहां के रंग में रंग गईं । उन्हें यहां की सर-ज़मीं से लगाव हो गया । इन लोगों की तरह-तरह की ज़ुबानों के मिश्रण से एक ऐसी भाषा का विकास हुआ जो सबके लिए मान्य थी । [2]

---

1. W. Crooke, Races of Northern India, p.92
2. Khushwant Singh, History of the Sikhs, p.13

इतना होते हुए भी एक सच्चाई ऐसी है जिसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता । आर्यों के बाद आने वाले अधिकतर विदेशी आक्रमणकारी इस्लाम धर्म के अनुयायी थे । कालान्तर में भारत के ऐतिहासिक जातीय भेदों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) से अलग हिन्दू मुस्लिम दो मुख्य धार्मिक जातियां यहां दिखाई पड़ने लगीं ।[1]

हिन्दू धर्म के कठोर अनुशासन, छुआछूत तथा अन्य कर्मकांडो के कारण शूद्र और नीची जाति के लोग दयनीय अवस्था में जीते थे ।[2] इसके विपरीत इस्लाम समानता पर बल देता था, जिससे आकर्षित होकर बहुत से नीची जाति के हिन्दू लोगों ने इस्लाम अपना लिया । धर्म परिवर्तन का एक मुख्य कारण राजनीतिक दबाव भी था । शासन मुस्लिम शासकों के हाथ में था और वे इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए भय, जोर-जबरदस्ती, लालच तथा प्रेम सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करते थे । इस्लाम कबूल करने की प्रक्रिया भी सरल थी जबकि एक बार इस्लाम कबूल करने के बाद हिन्दू धर्म में प्रवेश करना असम्भव था । इस प्रयास में मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से जनता त्राहि-त्राहि कर उठी । पंजाब के लोगों पर ये अत्याचार अपनी सीमा पार कर चुके थे ।

---

1. Muhammad Akbar, The Punjab under the Mughals, p.4

2. छुआ-छूत इतना ज्यादा मानते थे कि खाना भी दो प्रकार का " कच्चा तथा पक्का " माना जाता । उच्च ब्राह्मण वर्ग को छोड़ अन्य लोग पक्का खाना घर से बाहर खा लेते किन्तु नीच जाति के हाथ से नहीं । कच्चा खाना तो अपनी रसोई से बाहर खाना असम्भव ही था ।

हिन्दुओं की इस दारूण स्थिति को देख धर्म तथा जनता की रक्षा के लिए गुरू नानक ने एक नया धर्म सिक्ख पंथ चलाया । इससे सिक्ख जाति का उदय हुआ, जो तत्कालीन आवश्यकता और समय के साथ-साथ हिन्दू धर्म से अलग होती गई ।

अत: धर्म के आधार पर पंजाब में हिन्दु-मुस्लिम सिक्ख तीन जातियां दिखाई पड़ने लगी । बाद में ब्रिटिश राज्यकाल में उपर - लिखित कारणों से ही क्रिश्चियन जाति भी उभर कर आई, किन्तु यह जाति अल्प संख्या में ही पनप सकी । इसका कारण यह था कि अंग्रेज भारत में आकर बस नहीं गए । वे अपनी जन्म भूमि ब्रिटेन से जुड़े रहे और उन्होंने भारत को अपना साम्राज्यवादी उपनिवेश ही समझा । अत: धर्म परिवर्तन द्वारा जो हिन्दू या मुस्लिम क्रिश्चियन बने, वे ही इस समुदाय में आते हैं ।[1] हिन्दू मुस्लिम तथा सिक्ख इन तीनों धार्मिक जातियों में कई उपजातियां भी मिलती हैं । हिन्दू में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, राजपूत जाट, गूजर, यादव, नाई, डोम, चूहड़ा आदि । मुसलमानों में मुखीलद, गैरमुखीलद, शिया, अहमदी, जुलाहे, कुंजड़े, गाधी, मेहतर, हलालखोर, सैयद, शेख पठान, मुगल आदि । सिक्खों में नानक पंथी, उदासी, सेवापंथी, निर्मलाज, निहंग, सहजधारी, बन्दापंथी आदि ।

---

1. दक्षिण भारत " केरल " आदि के कुछ क्रिश्चियन मानते हैं कि वे मूलत: क्रिश्चियन ही हैं। स्वयं को ईसा के एक अनुयाई के वंशज बताते हैं जो बहुत पहले केरल क्षेत्र में आ कर बस गया था । किन्तु पंजाब में यह समुदाय धर्म परिवर्तित लोगों का ही है ।

हिन्दुओं में तो जात-पांत, छुआ-छूत मानने के कारण खान - पान, तथा शादी-ब्याह के मामले में अपनी जात-बिरादरी का ध्यान रखा जाता है किन्तु मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई जैसी जातियां जो सामान्यतः भाई-चारे और बराबरी में विश्वास रखती हैं वे भी इन भावनाओं से अछूती नहीं रहीं। वहां आर्थिक और अन्तः-धार्मिक स्थिति के अनुसार तो भेदभाव मिलता ही है, इसके अतिरिक्त विदेशी मुसलमान भारतीय नव-मुसलमानों को ‖ जो धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बने थे ‖ हेय दृष्टि से देखते थे। सिक्खों में भी मजहबी सिक्ख अपने को बाद में धर्म परिवर्तन कर बने नये सिक्खों से ऊंचा मानते थे। भारतीय ईसाईयों में भी बहुत से लोगों ने अपने नाम तथा जाति नहीं बदली केवल थोड़े से अनिवार्य धार्मिक आचार-विचार, विश्वास आदि में बदलाव स्वीकार किया।[1] इससे ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म से विभिन्न जाति के लोग धर्म परिवर्तन कर सिक्ख, मुसलमान तथा ईसाई बने थें। दिलचस्प बात है कि धर्म-परिवर्तन के पश्चात भी ये लोग शादी-विवाह तथा खान-पान का व्यवहार अपनी ही जाति में करते हैं। उदाहरण के तौर पर एक जाट सिक्ख इन सामाजिक व्यवहारों के लिए जाट सिक्ख को ही ढूंढेगा और मुस्लिम राजपूत, या ईसाई पंडित, मुस्लिम राजपूत और ईसाई पंडित को ही ढूंढेंगे। इस क्षेत्र में आकर बसने या उसपर शासन करनेवाली जातियों का प्रभाव तो यहाँ की संस्कृति पर पड़ा ही, इनके अतिरिक्त पंजाब के सम्बन्ध विश्व के अन्य देशों के साथ भी, विचारों और वस्तुओं के आदान-प्रदान के कारण बने। जैसे ईरान से अखरोट, बादाम, पिस्ता,

---

1. B.S. Saini, The Social and Economic History of the Punjab, p.56-57

धनिया, अनार, लहसुन, प्याज, हींग, जीरा, अंजीर, तरबूज, गाजर आदि यहां के लोगों के खाने में शामिल हो गए । कनिष्क के राज्य में आये चीनी मेहमान ने चीन के फलों खुबानी, आड़ू आदि से यहां के निवासियों को परिचित करवाया । कपड़ों में भी कोट, पैंट, बेल्ट, जूते चीनी सभ्यता की देन हैं । अस्त्र-शस्त्र में कवच, लम्बी तलवार, तथा घोड़े की नाल के रूप में, चीनी सभ्यता ने अपनी निशानी यहां हमेशा के लिए छोड़ दी ।[1] इस प्रकार पंजाब की संस्कृति पर विभिन्न जातियों और सभ्यताओं की छाप ने उसे एक नया स्वरूप प्रदान किया ।

पंजाबी जीवन :-

पंजाब में {खासकर गांवों में} मुख्य पेशा खेतीबारी है । यहां की भूमि और जलवायु सभी कुछ खेतीबारी के उपयुक्त हैं । पांच-पांच नदियों द्वारा सींची गई यहां की मिट्टी बेहद उपजाऊ है और लोग परिश्रमी हैं । गांवों में किसानों {जिनमें जाटों और जाट-सिक्खों की संख्या अधिक है} के पूरे परिवार खेतों में काम करते हैं और इन्हीं खेतों में इनके प्राण बसते हैं । खेतीबारी के अलावा स्वभावत: दिलेर और बहादुर होने के कारण यहां के लोग सेना में भर्ती हो जाते हैं। गांवों में सेना से वापस आने वाले लोगों ने ही चाय और कॉफी को प्रचलित किया । शहर के लोग धीरे-धीरे व्यापार, उद्योग धंधों तथा

---

1. Harbans Singh (ed.) Punjab Past and Present, p.15

नौकरियों की तरफ आकर्षित होते चले गए। गांवों में लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं। घर का मुखिया अर्थात् बुजुर्ग निर्विरोध पूरे घर की व्यवस्था संभालता है परन्तु आजकल, विशेषकर शहरों में, यह प्रथा समाप्त होती जा रही है। इसके कई कारण हैं। आवागमन के साधन सुलभ होने से लोग रोजी-रोटी की तलाश में दूसरे शहरों में बसने लगे। दूसरे आधुनिक परिवेश में घर के सदस्यों की पृथक-पृथक रुचियाँ, स्वतंत्र विचार, और स्वार्थ पनपने लगे। परिवारों में विचारों और स्वार्थों की परस्पर टकराहट से अशांति उत्पन्न होने लगी, जो इस परम्परा के टूटने का मुख्य कारण बनी।

भारत के अन्य भागों की तरह पंजाब के लोगों में भी बेटे और बेटी के प्रति दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। यह पक्षपात जन्म के अवसर से ही लक्षित होने लगता है। लड़के के जन्म पर कांसे की थाली बजाकर उसका स्वागत किया जाता है, जबकि लड़की के जन्म पर सूप पीटा जाता है, जो दरिद्रता की निशानी है। मुसलमानों में बच्चे के जन्म के सातवें दिन उसके कान में कुरान की आयतें फूंकी जाती हैं।

शादी-ब्याह के मामले में यहां चार तरीके अपनाए जाते हैं। 1· धर्म-पुण 2· टेके 3· वट्टा-सट्टा और 4· घर जावत्री।[1] धर्म-पुण में लड़की का मूल्य नहीं लिया जाता। टेके में दुल्हन खरीदी जाती है। वट्टा-सट्टा में लड़की के बदले लड़की दी जाती है अर्थात् जिस घर में लड़की की शादी होती है उसी घर से एक लड़की की शादी इस घर में

1· P.N. Chopra (ed.) Religions and Communities of India, p.192

होती है । घर जावात्री में लड़का लड़की के घर में एक निश्चित समय तक काम करता है । अवधि पूरी हो जाने पर लड़की से उसकी शादी कर दी जाती है ।

शादी की रस्में हिन्दू-सिक्खों में प्राय: एक सी ही हैं । अन्तर केवल इतना है कि हिन्दू अग्नि के सामने पंडित के मंत्रोच्चारण के दौरान शादी की रस्म पूरी करते हैं जबकि सिक्ख ये सारी रस्में गुरु ग्रन्थ साहिब को बीच में रख ग्रन्थ के शब्द-पाठ के दौरान करते हैं।

मुसलमानों में शादी एक सामाजिक इकरारनामा है जो काजी और दो वयस्क गवाहों के सामने कबूल किया जाता है । शादी का प्रस्ताव हमेशा लड़के वालों की तरफ से ही किया जाता है और जन्मपत्रियां भी नहीं मिलाई जातीं । काजी द्वारा लड़के और लड़की दोनो की रजामन्दी लेने के पश्चात ही निकाह पढ़ा जाता है । इतना अन्तर होते हुए भी बहुत सी रस्में दोनो धर्मों में समान रूप से मिलती हैं । जैसे - मेहंदी लगाना, द्वार रोकना, दहेज लेना, मिलनी आदि जो शायद सालों से दोनों धर्मावलम्बियों के एक साथ रहने का परिणाम हैं ।

शादी में बारात के साथ लड़कियों तथा औरतों का दुल्हन के घर जाना और बैंड-बाजे के साथ नाचना पंजाबी संस्कृति से धीरे-धीरे अन्य जातीयों में भी फैल रहा है, अन्यथा पहले बारात के साथ केवल आदमी जाते थे औरतें घर पर रहकर बाकी के रीति-रिवाज पूरे करती थीं और दुल्हन के स्वागत की तैयारी करती थीं । दुल्हे द्वारा दुल्हन की बहनों के लिए कलीचड़ी [1] ले जाने का रिवाज भी यहीं चलता है ।

1· सोने,चांदी की अंगूठियां । सोने की अंगूठी दुल्हन से छोटी बहनों के लिए तथा चांदी की अंगूठियां बाकी बहनों और सहेलियों के लिए ।

बहु विवाह :-

यद्यपि हिन्दुओं और सिक्खों में एक पत्नी रखने की प्रथा थी तथापि कई स्थितियों में बहुविवाह मान्य थे। जैसे पहली पत्नी से सन्तान न होना या फिर लड़का न होकर केवल लड़कियां होना। बेटे को वंश का प्रवर्तक और मरने के बाद आत्मा की मुक्ति का मार्ग समझा जाने के कारण ऐसी स्थिति में दूसरी शादी कर ली जाती थी। जरूरी नहीं था कि यह सिलसिला दूसरी शादी पर ही रूक जाए। खेतिहर जातियों में तो यह प्रथा आम थी क्योंकि इनमें विधवा-विवाह की अनुमति थी। विवाहित होते हुए भी कोई व्यक्ति अपने भाई की विधवा से विवाह करने का हक रखता था। इस रिवाज के पीछे जमीन-जायदाद हाथ से न निकलने देने की भावना काम करती थी। पंजाब के पहाड़ी इलाकों में पत्नी की उपयोगिता को खेतों में काम करने की दृष्टि से आंका जाता था अतः बहुपत्नीत्व की प्रथा वहां ज्यादा प्रचलित थी। मुसलमानों में तो धार्मिक रूप से चार विवाह जायज थे। हिन्दुओं को अनगिनत शादियों के सामने यह एक प्रकार का बन्धन ही था।

बहुपत्नीत्ववाद के विपरीत यहां एक स्त्री के कई पति भी लक्षित होते हैं। यह रिवाज छोटी जातियों तथा गरीब परिवारों में अधिक मिलता है। इन परिवारों में सभी लड़कों के लिए दुल्हन खरीद पाना संभव नही होता। यहां एक परिवार के कई भाईयों तथा कभी-कभी सौतेले भाईयों के बीच में भी एक ही पत्नी रहती है। ऐसे में रस्मों-रिवाज के अनुसार शादी बड़े भाई से होती है और बच्चे भी उसी के कहलाते हैं। बच्चे सभी भाईयों को मां के पति के रूप में

पिता सम्बोधित करते हैं। कहीं-कहीं बच्चों के पिता का निर्णय नम्बरवार किया जाता है। जैसे - पहला बच्चा बड़े भाई का और दूसरा बच्चा दूसरे भाई का। भाईयों की संख्या में वृद्धि होने पर एक और पत्नी भी लाई जा सक्ती है। किन्ही परिवारों में तीन या चार शामिल पत्नियां मिल जाती हैं। अगर कोई भाई साम - र्थ्यवान हो, और चाहे तो अलग से भी शादी कर सकता है। यह नई पत्नी पर निर्भर करता है कि वह सारे भाईयों को अपनाए या फिर केवल अपने शादी-शुदा पति को। यह रिवाज अब धीरे-धीरे समाज सुधारकों की प्रेरणा से खत्म हो रहा है।

विधवा विवाह :-

वैसे तो भारत के अन्य भागों की तरह इस क्षेत्र में भी हिन्दू और सिक्खों में विधवा-विवाह की अनुमति नहीं है। किन्तु खेतिहर जातियों तथा जाटों में ऐसे विवाह मिलते हैं जो धीरे-धीरे अन्य जातियों में भी प्रचलित हो रहे हैं। ऐसे विवाह अक्सर पति के छोटे या बड़े भाई से ही होते हैं (अधिकतर छोटे भाई से)। परिवार से बाहर विवाह करने पर लड़की पहले पति की जायदाद से वंचित हो जाती है। विधवा-विवाह के लिए जात-पाँत के बन्धन भी ढीले कर दिए जाते हैं।

मुस्लिम और ईसाइयों में वैसे तो विधवा विवाह मान्य है किन्तु कभी-कभी हिन्दुओं से लम्बे संसर्ग का प्रभाव वहां भी लक्षित होता है और समाज में ऊँचा स्थान रखने वाले लोग अपने घर की विधवाओं को इस कार्य के लिए हतोत्साहित ही करते हैं। मुसलमानों

में निकाह सानी अर्थात विधवा विवाह में सामान्य विवाह की तरह ही सारे रीति-रिवाज निभाए जाते हैं। हिन्दुओं और सिक्खों में विधवा विवाह बहुत साधारण तरीके से होता है।

कराओ या चादर-अंदाजी में लड़का लड़की के सिर पर लाल चादर डालता है और हाथों में चूड़ा पहनाता है। यह रस्म बिरादरी के लोगों के सामने पूरी की जाती है। विधवा लड़की से शादी करने के लिए उसका मूल्य चुका देने पर कोई भी रीति-रिवाज नहीं मनाए जाते।

मृत्यूपरान्त भी तरह-तरह के रिवाज यहां देखने को मिलते हैं। पंजाब में मृतक शरीर को जलाने के लिए दो विधियां अपनाई जाती हैं। 1. वैदिक 2. गुरूपुराण। वैदिक तरीके में मृतक शरीर को नहला धुलाकर नए कपड़े पहनाकर श्मशान घाट ले जाया जाता है।[1] अर्थी के साथ स्यापा[2] करते हुए औरतों का भी श्मशान घाट जाना और सबके साथ नहाकर लौटना केवल पंजाबियों में ही प्रचलित है, पंजाब की अन्य जातियों में औरतें घर पर ही रह जाती हैं। दूसरी रीति गुरू पुराण में शव को नहलाते वक्त उसके मूंह में पांच रत्न (सोने, हीरा, नीलम, लाल, और मोती के छोटे छोटे टुकड़े) भर दिए जाते हैं और अर्थी को घर से श्मशान घाट ले जाते समय चार पिंड (आटे या उबले चावलों के गोले) चार विभिन्न स्थानों पर रख दिए जाते हैं।

---

1. K.P. Bahadur, Caste Tribes and Culture of India, Vol-6, p.90
2. शोक प्रकट करते हुए छाती तथा घुटनो पर लय तथा ताल में हाथ मारते हुए जोर-जोर से रोना। कई औरतें इसमें पारंगत होती है उन्हें जरूरत पड़ने पर बुलाया जाता है।

हिन्दू और सिक्खों में शव को जला दिया जाता है जबकि मुसलमानों और ईसाईयों में दफ़नाया जाता है। वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर शोक के स्थान पर खुशी प्रकट की जाती है। इस अवसर पर अर्थी को सजा कर बैंड-बाजा बजाते हुए ले जाया जाता है।[1]

पंजाबी जीवन स्तर :-

पंजाबी गांवों में सपाट छतों वाले कच्चे मकान मिलते हैं। घरों के चारों ओर चारदिवारी खींच दी जाती है। यहां घर में खुले आंगन का बहुत महत्व है जबकि कमरे छोटे-छोटे अंधेरे और घुटन वाले होते हैं। आंगन के एक कोने में खाना बनाने के लिए मिट्टी के चूल्हे बने होते हैं। प्रत्येक घर में अपना एक तंदूर भी होता है। घर के बाहर तबेले में जानवर बंधे रहते हैं। कच्चे मकानों को गाय के गोबर से लीप-पोत कर साफ़ तथा शुद्ध रखा जाता है। यहां के लोग घर के अन्दर जितनी सफ़ाई रखते हैं घर के बाहर उतनी ही गन्दगी। घर के बाहर की सफ़ाई का उत्तरदायित्व ये अपना नहीं समझते। अतः अधिकतर गावों में भयंकर गन्दगी दिखाई पड़ती है। शहरों में भी गलियां गन्दी ही रहती हैं; अलबत्ता मकान जरूर पक्के और नए फैशन के बनने लगे हैं।

---

1. K.P. Bahadur, Caste Tribes and Culture of India, Vol-6, p.91

खान-पान :

खाने में यहां के लोग विभिन्नता और पौष्टिकता की बजाए मात्रा पर अधिक ध्यान देते हैं ।[1] पंजाब के लोग लम्बे ऊँचे डील डौल वाले हृष्ट पुष्ट होते हैं, जो सारे दिन कड़ी मेहनत करते हैं । अतः खाने की मात्रा अधिक होना स्वाभाविक ही है । पौष्टिक तत्वों का भी यहां के खाने में आभाव नजर नही आता । यहां के लोग गेहूं, मक्का, चना तथा बाजरे की रोटी खाते हैं । पहाड़ी क्षेत्रों में चावल भी शौक से खाये जाते हैं जबकि निचले क्षेत्रों में चावल की खपत कम है । रोटी के साथ सबजियों के रूप में सरसों, चने तथा पालकआदि का साग प्रचलित है । छोले, राजमा, साबुत उड़द जैसी प्रोटीनयुक्त दालें यहां पसंद की जाती हैं । साथ में मक्खन छाछ तथा दूध का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया जाता है । सामिष भोजन खाने वाले मांस-मछली का प्रयोग भी अपनी सामर्थ्यनुसार करते हैं । फलों का प्रचलन गांवों की अपेक्षा शहरों में अधिक है । विभिन्नता अर्थात तरह तरह के व्यंजन की अपेक्षा यहां के लोग सादा खाना ही खाते हैं । इसका प्रमुख कारण औरतों की व्यस्तता को मान सकते हैं । गांवों में औरतें घर और जानवरों का काम करने के साथ - साथ खेतों पर भी काम सम्भालती हैं और मर्दों के लिए खेतों पर खाना पहुँचाती हैं । इतने व्यस्त जीवन में सादा खाना ﴾ जिसमें रोटियां भी मोटी - मोटी पकाई जाती हैं । ﴿ पकाना ही संभव है । इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार की परम्परा होने से परिवार में सदस्यों

---

1. " There was a marked sameness about the diet of the people and bulk was stressed more than variety and balance" - B.S. Saini, The Social and Economic History of the Punjab, p.118.

की संख्या के साथ-साथ खुराक भी अधिक होने से खाने में विविधता लाना संभव नहीं । हां आजकल, खासकर शहरों में, नौकरियों तथा व्यापार के सिलसिले में विभिन्न प्रान्तों तथा विदेशी लोगों से भी संपर्क के कारण और संयुक्त परिवार के विघटन से छोटे परिवार होने के कारण खाने की मेज पर कई तरह के व्यंजन दिखलाई पड़ सकते हैं ।

पंजाब के लोग शराब के बहुत शौकीन होते हैं । शहरों में कम परन्तु गांवों में इसके अत्यधिक दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं । शराब यहां की खुशहाली को दीमक की तरह चाट जाती है । परिवार की हालत खस्ता होने के साथ-साथ शराब के नशे में लठ तक चल जाते हैं और सिर-फुटोब्बल की नौबत भी आ जाती है । पुश्तैनी दुश्मनियों से खुन्दक खाए दिमाग शराब के नशे में और उत्तेजित हो जाते हैं जिसका परिणाम सर्वनाश ही होता है ।

धूम्रपान के लिए हुक्के का प्रयोग किया जाता है ।

राजनैतिक विशिष्टता :-

पंजाब के लिए भारत का मुख्यद्वार होना जहां उसे राजनैतिक विशिष्टता का गौरव प्रदान करता है वहीं राजनैतिक कुचक्रों और घटनाओं का शिकार भी बनाता है । इसके सामरिक महत्व के कारण ही न केवल बाहरी आक्रमणकारियों ने इसे रौंदा बल्कि दिल्ली के शासकों तथा उनके द्वारा नियुक्त यहां के गर्वनरों की चालों का गढ़ भी पंजाब ही बना । इतिहास साक्षी है कि पंजाब के लोग प्राचीनकाल से ही रणनीति और राजनीति दोनों के परिणामों को झेलते रहे हैं । सोने की चिड़िया

कहलाने वाले भारत को जीतने आने वालों का सर्वप्रथम शिकार स्वाभाविक रूप से पंजाब ही बना । मिश्र के सम्राट, असीरिया की रानी तथा साईथियानो के आक्रमणों के बाद 326 ई॰ में सिकन्दर महान का आक्रमण हुआ । वह व्यास तक पहुंच गया था । इस प्रयास में झेलम तथा चिनाब के दोआबे पर राजा पुरु को हराने में उसे अपनी चुस्ती-फुर्ती के साथ-साथ राजनीतिक छल-बल का भी सहारा लेना पड़ा । सेना के इन्कार से विवश होकर उसे वापस लौटना पड़ा, किन्तु वापस लौटने से पूर्व सिकन्दर ने पंजाब के विभिन्न स्थानों में अपनी सेना नियुक्त की और सिन्ध नदी के किनारे अपने बेड़े खड़े कर दिए । उसके इन प्रयासों से पंजाब में उसकी दिलचस्पी और इस क्षेत्र को हाथ से नहीं निकलने देने की नीति का पता चलता है । सिकन्दर की वापसी के बाद मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकन्दर द्वारा नियुक्त किए गए अधिकारियों को खदेड़ दिया ।

पंजाब पर बाहरी आक्रमणों का तांता लगा रहा । मोहम्मद बिन कासिम, जुनैद और हाकम जैसे सफल शासकों के बाद पंजाब की राजनीतिक अवस्था बिगड़ती चली गई । अल्पतगीन के समय में गजनवियों ने पंजाब को अपना उपनिवेश बना लिया । बाद में ईरान और तुरान के अपने इलाके खो देने पर वे पंजाब पर ही निर्भर करने लगे और लाहौर उनकी वास्तविक राजधानी बन गई । 1186 ई॰ में शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी ने गजनी के शासकों को पंजाब से भगा दिया । 1193 में अजमेर के शासक पृथ्वीराज को हराकर मोहम्मद गोरी ने दिल्ली तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अपने सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को यहां का शासक नियुक्त किया । कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात पंजाब के शासक ताजुद्दीन को भगाकर इल्तुतमिश ने पंजाब को हथिया

लिया और बाद में दिल्ली का सिंहासन भी हस्तगत कर लिया । इल्तुतमिश की बेटी रजिया सुलताना के राज्यकाल में लाहौर के सूबेदार मलिक इजाफ़्दीन कबीरखाना और भटिंडा के गवर्नर अलतूनिया ने विद्रोह किया । अलतूनिया से विवाह करके भी रजिया अपनी गद्दी नहीं बचा सकी । बाकी सुलतानों के काल में भी पंजाब की शांति कभी मंगोलों और कभी गक्खरों द्वारा भंग होती रही । मंगोल बड़ी संख्या में आए और हालांकि वे यहां ज्यादा दिन नहीं रुके फिर भी भारी क्षति और विनाश का कारण बने । पंजाब के गवर्नर गाजी तुगलक उर्फ़ ग्यासुद्दीन तुगलक ने मंगोलों की सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया । ग्यासुद्दीन तुगलक ने पंजाब की पश्चिमी सीमाओं पर किलों की एक लम्बी श्रृंखला खड़ी कर दी, जिससे पंजाब में कुछ शांति बनी रही । 1341 में लाहौर के गवर्नर तातार खां के खिलाफ गक्खरों ने विद्रोह कर उसे पराजित किया । गक्खरों को सारंग खां ने दबा दिया । 1398 में तैमूर ने आक्रमण किया जिसके सामने पंजाब का शासक शहाबुद्दीन मुबारक खां टिक नहीं सका । तैमूर द्वारा नियुक्त खिज़्रखां के 7 साल के शासन में पंजाब में शांति बनी रही । किन्तु मुबारकशाह के समय में गक्खर फिर सक्रिय हो उठे । सरहिन्द के गवर्नर बहलोल लोदी ने सैयद अलाउद्दीन को हराकर लोदी वंश की नींव डाली । 1519 में पंजाब पर बाबर ने आक्रमण किया और 1526 में पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी को हराकर मुगल वंश की नींव डाली । पंजाब के गवर्नर दौलतखां तथा कुछ अन्य अमीरों ने बाबर को भारत पर आक्रमण का निमन्त्रण भेजा था । यह एक घिनौनी सियासी चाल थी जिसका शिकार ये षडयंत्रकारी स्वयं भी हुए क्योंकि बाबर ने किसी को नहीं बख्शा ।

बाबर से पहले पंजाब के इतिहास में राजनीति रणनीति का रूप धारण किए हुए थी। सियासी चालें भी युद्ध के मैदान में ही चली जाती थीं जिनका उद्देश्य युद्ध जीतना होता था। विद्रोह या बाहरी आक्रमण जो भी होते उनका कारण और उद्देश्य दोनो स्पष्ट थे। इनके पीछे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक जैसे आन्तरिक कारण नहीं थे। पंजाब पर लगातार होने वाले आक्रमणों के कारण यहां कोई भी स्थायी शासक नहीं बन सका। अस्थिरता और अशांति के इस दौर में राजनीति रणनीति के रूप में ही उपस्थित थी।

बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ के शासनकाल में उसके भाई कामरान ने पंजाब को बलपूर्वक हथिया लिया। उसने दिल्ली पर भी अधिकार करने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को हराकर उसे ईरान भागने पर मजबूर कर दिया। 1555 में हुमायूँ ने पंजाब के गवर्नर तातारखां को हराकर पंजाब हथिया लिया और फिर दिल्ली को भी जीत लिया। हुमायूँ को दिल्ली पुन: पंजाब के रास्ते से ही मिली। इस समय तक पंजाब एक पूर्णराज्य न होकर दो हिस्सो में बंटा था। एक पर मुगलों का शासन था और दूसरा-उत्तरी हिस्सा-आजाद था। उत्तरी हिस्से में बसने वाली जातियां सिकन्दर सूर को मदद कर रही थीं। सिकन्दर सूर को अकबर ने मानकोट में हराकर पूरे पंजाब पर कब्जा कर लिया।

अकबर ने पंजाब में अनेकों सुयोग्य गवर्नर भेजे। पंजाब का महत्व दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था। पंजाब की सीमाओं के पार रहने वाली जातियों की गतिविधियां उग्र और आक्रमक हो गई थीं। 1588-98 तक अकबर का मुख्य कार्य-स्थल पंजाब रहा, इस काल में

उसने बलूचियों को दबाया । अकबर की भाँति जहाँगीर ने भी लाहौर और काश्मीर की कई यात्राएँ की । जहाँगीर के बेटे खुसरो ने अपने विद्रोह के दौरान पंजाब में ही शरण ली और नौ दिनों तक लाहौर को हथियाए रहा । शाहजहाँ ने भी अपने सबसे बड़े बटे दारा-शिकोह को पंजाब का गवर्नर बनाया जो उसकी दृष्टि में सबसे योग्य था । औरंगजेब ने भी अपने योग्य गवर्नरों को पंजाब में नियुक्त किया । इस सबके बावजूद पंजाब में विद्रोही बराबर सिर उठाते रहे और पंजाब इन मुगल शासकों के लिए सदा सिरदर्द बना रहा ।

अकबर के शासनकाल तक पंजाब में अशांति बाहरी आक्रमणों या फिर सूबेदारों और सरदारों के विद्रोहों द्वारा उत्पन्न होती थी । ये लोग शासन पर अधिकार जमाने और अपनी प्रभुसत्ता कायम करने के लिा क्रियाशील रहते थे । किन्तु बाद के मुगल शासकों को धार्मिक असहिष्णुता और संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण पंजाब के लोग भी विद्रोह करने लगे । बाबर के समकालीन गुरु-नानक द्वारा चलाए गए सिक्ख पंथ को अकबर ने न केवल मान्यता दी बल्कि उसकी सहायता भी की । दुर्भाग्यवश जहांगीर धार्मिक दृष्टि से इतना उदार साबित नहीं हुआ । उसने खुसरो के विद्रोह में सहायता करने के " अपराध " में गुरु अर्जुनदेव को मरवा दिया । खुसरो को साहयता देना तो तत्कालीन बहाना बन गया पर वैसे भी जहाँगीर गुरु अर्जुन देव को पसन्द नहीं करता था । वास्तव में जहाँगीर की धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि उदार नही थी । अपनी माता जोधाबाई के हिन्दु होने के बावजूद वह मानसिक तौर पर कट्टर मुसलमान था । सम्राट के रूप में पर्व-त्यौहारों में हिन्दुओं के साथ शरीक होने के बावजूद वह व्यक्तिगत रूप से इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार के लिए कार्य करता था । इसके मूल में शायद

उन सरदारों तथा अमीरों के धार्मिक विचारों का प्रभाव और उनके प्रति आभार प्रकट करने की भावना भी रही होगी जिन्होंने अकबर की नाराजगी और खुसरो की लोकप्रियता के बावजूद जहांगीर को सिंहासन पर बैठने में सहायता की थी । गुरु अर्जुनदेव की बढ़ती हुई लोकप्रियता और ताकत को जहांगीर सख्त नापसंद करता था । गुरु अर्जुन देव के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर हिन्दू ही नहीं बल्कि कुछ मुसलमान भी सिक्ख पंथ स्वीकार कर रहे थे । यह बात तुजुकी-ए-जहांगीरी से स्पष्ट होती है । [1] कुछ विद्वानों का मत है कि गुरु अर्जुनदेव को मृत्युदण्ड देने के पीछे पूर्णतय: राजनैतिक कारण थे, धार्मिक नहीं । उनके अनुसार अगर गुरु अर्जुनदेव खुसरो को आर्थिक और सैनिक सहायता नहीं देते तो जहांगीर से उनके सम्बन्ध सामान्य रहते क्योंकि इस घटना के बाद जहांगीर द्वारा सिक्खों के विरुद्ध अन्य कोई भी कार्यवाही करने का वर्णन नहीं मिलता । उन्हें मृत्यु - दण्ड जुर्माना भरने से इन्कार करने पर दिया गया था । अन्यथा उन्हें 2000 रू. का आर्थिक दण्ड ही दिया गया था जिसे भरकर वे मृत्युदण्ड से बच सकते थे । खुसरो के विद्रोह में साथ देने वाले कई

---

1. "In Gobindwal, which is on the river Biyah (Beas) there was a Hindu named Arjun, in the garment of sainthood and sanctity, so much so that he had captured many of the simple-hearted of the Hindus, and even of the ignorant and foolish followers of Islam, by his ways and manners, and they called him Guru, and from all sides stupid people crowded to worship and manifest complete faith in him. For three or four generations (of spiritual successors) they had kept this shop-warm. Many times it occured to me to put a stop to this vain affair or to bring him into the assembly of the people of Islam"

   - The Tuzuk-i-Jahangiri or Memoirs of Jahangir (ed. H. Beveridge) p.72

मुसलमान अधिकारियों को भी कठोर दण्ड दिय गये थे, यही नहीं, जहांगीर ने अपने बेटे खुसरो की आँखे तक निकलवा ली थीं । [1]

गुरू अर्जुनदेव के वध से क्षुब्ध हो सिक्ख बदला लेने की भावना से भर गए । मुगलों तथा सिक्खों का संघर्ष औरंगजेब के समय में उग्र रूप धारण कर गया । औरंगजेब द्वारा नवें गुरू तेगबहादुर को इस्लाम स्वीकार नहीं करने पर मृत्युदण्ड दिया गया जिससे सिक्ख और भी भड़क उठे । गुरू तेगबहादुर को मृत्युदण्ड देने के कुछ ओर कारण भी बताए जाते हैं, मसलन – गुरू तेगबहादुर ने एक अफ़गान हाफिज आदम के साथ मिलकर पंजाब में उपद्रव किए थे । गुरू के वंश के कुछ व्यक्तियों ने भी उनके विरूद्ध षडयन्त्र किया था । काश्मीर के सूबेदार, शेर – अफ़गान की आतंकवादी नीतियों के विरूद्ध गुरू ने आवाज उठाई थी । उन्होंने कुछ मुसलमानों को सिक्ख धर्म की दीक्षा भी दी थी । [2]
गुरू तेगबहादुर के वध के अतिरिक्त सिक्ख-मुगल संघर्ष के पीछे अन्य राजनैतिक कारण भी थे । दसवें गुरू गोविन्दसिंह ने सिक्खों को सैनिक रूप प्रदान कर मुगलों के विरूद्ध अभियान शुरू किए । सिक्खों ने एक स्वतंत्र राज्य की परिकल्पना की थी जिसे साकार करने के लिए गुरू गोविन्दसिंह ने आस-पास के पहाड़ी राज्यों पर आक्रमण किए । इन राजाओं की फरियाद पर स्थानीय मुगल शासकों ने गुरू के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही की ।

---

1. Bakshish Singh Nijjar, Punjab under the great Mughals (1526-1707 A.D) p.86-87

2. डा॰सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास (1707-1740) पृ॰ 101.

सिक्खों और मुगलों के संघर्ष के पीछे कई सामाजिक कारण बताए जाते हैं जैसे - " सिक्ख गुरुओं को धर्म और संसार दोनों का संरक्षक समझा जाना (गुरु को "सच्चा बादशाह " कहा जाता था), गुरुओं का भौतिक आडम्बर बढ़ना तथा गुरु और अनुयायियों का शस्त्र धारण करना, भ्रातृत्व की भावना पर जोर देना जिसके कारण सिक्ख धर्म पंजाब में निम्न वर्ग जाट-किसानों, कारीगरों इत्यादि में प्रिय होता जा रहा था । "[1]

पंजाब में सिक्खों के संघर्ष के साथ-साथ सतनामी विद्रोह भी उठ खड़ा हुआ । मुगल बादशाहों को पंजाब में समय-समय पर पठानों से भी जूझना पड़ा जो अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम करना चाहते थे । ये सारे विद्रोह औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात मुगलसत्ता के कमजोर पड़ जाने पर ही सफल हो सके ।

सिक्खों का संघर्ष मुगल शासकों के अतिरिक्त नादिरशाह और अहमदशाह दुर्रानी के साथ भी हुआ । इन संघर्षों में धन तथा जन की अतीव हानि बरदाश्त करके भी सिक्खों ने अपने हौसले बुलन्द रक्खे और मिसलों के रूप में उनके स्वतन्त्र राज्य कायम हो गए । इन स्वतन्त्र राज्यों को एकरूपता प्रदान की महाराजा रणजीत सिंह ने, जिन्हें शेरे-पंजाब के नाम से याद किया जाता है । महाराजा रणजीत सिंह के कारण ही कांगड़ा तथा हिमाचल प्रदेश का एक बहुत

---

1. डा॰ सतीशचन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास (1707 - 1740), पृ॰ - 11.

बड़ा भाग आज नेपाल का हिस्सा नहीं होकर भारत का अंग है । महाराजा के प्रयासों का ही परिणाम है कि पंजाब तथा कश्मीर भारत का हिस्सा बने रहे और अफगानिस्तान की तरह अलग नहीं हो गए ।

महाराजा रणजीतसिंह के समय में ही अंग्रेज पंजाब में अपनी सियासी चालें चलने लगे थे । भारत में अपनी स्थिति मजबूत करने के पश्चात् अंग्रेज सारी दोस्ती भूल कर रणजीतसिंह को परेशान करने लगे और उनके मार्ग में रोड़े अटकाने लगे । राजनीति की चालों की सूझ-बूझ होते हुए भी महाराजा रणजीतसिंह अंग्रेजों से कई बार मात खा गए । 1809 में अंग्रेजों और सिक्खों के बीच हुई सन्धि के परिणामस्वरूप रणजीतसिंह फिरोजपुर पर अपना अधिकार खो बैठे और अंग्रेजों ने वहां अपनी सैनिक छावनी बना ली । फिरोजपुर पर उनके लम्बे शासनकाल को अंग्रेजों ने कोई अहमियत नहीं दी । रणजीतसिंह को विवश हो सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े क्योंकि इस समय तक अंग्रेजों का प्रभाव काफी बढ़ चुका था । यह सन्धि 1828 तक चली । इससे रणजीतसिंह को अपने राजनीतिक प्रभाव के कम होने का एहसास हुआ । फिरोजपुर में अंग्रेजों द्वारा सैनिक छावनी बनाने के जवाब में उन्होंने भी कसूर में सैनिक छावनी स्थापित कर ली ।

अंग्रेजों के प्रति शंकित और सतर्क होते हुए भी महाराजा रणजीतसिंह ने उनके विरुद्ध अपने पड़ोसी राज्यों की मदद नहीं करके भूल की । अंग्रेजों के साथ भरतपुर की लड़ाई में भरतपुर राजा द्वारा प्रार्थना करने पर भी महाराजा तटस्थ रहे । इससे भरतपुर की हार हुई और इस तरह अंग्रेज उनके राज्य के बहुत करीब आ गए ।

नेपाल और अंग्रेजों की लड़ाई में गोरखाओं का साथ नहीं देकर रणजीत - सिंह ने अपनी भूल को दोहराया । मराठों और अंग्रेजों के बीच संघर्ष में पेशवा बाजीराव की मांग को ठुकरा कर रणजीतसिंह ने तीसरी भूल की । इन भूलों के परिणामस्वरूप अंग्रेजों के हाथ मजबूत होते गए । महाराजा अंग्रेजों के द्वारा प्रस्तावित सन्धियों पर हस्ताक्षर करने को विवश थे । महाराजा रणजीतसिंह द्वारा की गई ये भूलें भारत के लिए कोई नई नहीं थीं । प्राचीनकाल से ही भारतीय राजा पड़ोस में होने वाले विदेशी आक्रमणों के प्रति तटस्थ और बेखबर रहते आए हैं । ऐसा ही कुछ रणजीतसिंह के साथ भी हुआ । चालाक और समझदार होते हुए भी उनके द्वारा की गई ये भूलें पंजाब और भारत के इतिहास में बहुत महंगी साबित हुईं ।

अंग्रेज अपनी " फूट डालो और राज करो " की नीति के अनुसार सैयद अहमद और महाराजा के झगड़े को बढ़ावा देते रहे । सैयद अहमद के हार जाने पर भी महाराजा की शक्ति का ह्रास ही हुआ जो अंग्रेजों के लिए लाभदायक था ।

सिन्ध के मामले में भी अंग्रेजों ने चालाकी से काम लिया और सिन्ध के अमीरों से मिली व्यापारिक सुविधा के बहाने से रणजीतसिंह को उधर बढ़ने से रोक दिया । जून 26, 1938 की सन्धि के कारण रणजीतसिंह को सिन्ध पर आक्रमण करने के अपने इरादों को स्थगित करना पड़ा । " यदि सिक्ख राज्य ने सिन्ध पर अपना अधिकार कर लिया होता तो उनको अंग्रेज विरोधी देशों से संपर्क करने का मौका

मिल जाता, लेकिन उन्होंने इस मौके को खो दिया । "[1] "ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सुनहरे कपड़े के मैदान की मुलाकात [संधि पत्र] सिक्खों के लिए राजनैतिक हार साबित हुई और लाहौर दरबार की मौत की घंटी । "[2]

सिंध के बाद अंग्रेजों का रुख अफगानिस्तान की तरफ हुआ । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने महाराजा को इस बात के लिए रजामन्द कर लिया कि वे अमीर सुल्तान मोहम्मद से पेशावर की कीमत वसूल करके उसे पेशावर दे दें । इससे अफगानिस्तान में अंग्रेजों के हाथ मजबूत हुए । शाहशुजा और महाराजा के बीच 1838 में हुई सन्धि का श्रेय भी अंग्रेजों ने अपने सिर ले कर शाहशुजा को अपना आभारी बना लिया ।

अगर मध्य एशिया में व्याप्त अंग्रेज विरोधी भावना का लाभ रणजीतसिंह ने उठाया होता तो अंग्रेज इतने प्रभावशाली नहीं हो पाते । हालांकि महाराजा के जीवनकाल में तो अंग्रेजों पर कुछ बंदिशें लगी रही और पंजाब स्वतन्त्र ही रहा, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति और राजमहल में होने वाले षड्यन्त्रों के कारण पंजाब भी अंग्रेजों के अधीन हो गया । पंजाब के साथ-साथ

---

1. डा॰ नत्थन सिंह, गौरव शिखर, पृ॰ 42

2. के॰के॰खुल्लर, महाराजा रणजीत सिंह, पृ॰ 78

सारा भारत अंग्रेजों का गुलाम हो गया । फिर तो पंजाब का स्वतन्त्र राज्य का सपना चूर-चूर हो गया ।

अंग्रेजों ने अपने फायदे के लिए पंजाब में हिन्दू, सिक्खों और मुसलमानों में भेदभाव की नीति अपनाई । उन्होंने सिक्खों को हिन्दुओं से अलग ही नहीं माना बल्कि केवल केशधारी खालसाओं को ही सिक्ख मानते हुए उन्हें अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान कीं । इन सुविधाओं और आर्थिक लाभ से आकर्षित होकर केशधारी सिक्खों की संख्या में वृद्धि होने लगी । सिक्खों को हिन्दुओं से अलग होने में लाभ दिखाई देने लगा । अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम जनता को भी एक दूसरे के खिलाफ खूब भड़काया जिसका परिणाम 1947 के देशविभाजन के रूप में सामने आया । अंग्रेजों ने कांग्रेस को हिन्दुओं की नुमाइन्दगी करने वाली और मुस्लिम लीग को मुसलमानों की पार्टी मानकर मुस्लिम लीग को अधिक संरक्षण और बढ़ावा दिया । मुस्लिम लीग के नेताओं ने भी द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता की । सरकारी खिताबों ने भी लोगों की भावनाओं में परिवर्तन पैदा कर दिए । देश भक्ति के गीत गाने वाले साम्प्रदायिक भावनाओं में कैद हो कर रह गए । मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के लिए एक अलग देश की मांग की । पंजाब में मुसलमानों की संख्या अधिक थी मगर वे आर्थिक रूप से पिछड़े हुए थे । जमींदारी, व्यापार और लेन-देन का कारोबार अधिकतर हिन्दुओं और सिक्खों के हाथ में था । लाहौर की 186 फैक्टीरियों में से 108 गैर-मुस्लिम लोगों के नाम पंजीकृत थीं । ऐसे इलाकों में भी, जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में थे, व्यापार और उद्योग-

थी अधिकतर हिन्दुओं और सिक्खों के हाथ में ही थे ।[1] ऐसे में मुस्लिम नेता अधिकारों और धर्म के नाम पर देश का बंटवारा चाहने लगे । कांग्रेस विभाजन के खिलाफ थी किन्तु मुस्लिम लीग की मांग को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हुए तथा देश में साम्प्रदायिक दंगो के फैलने का भय दिखाकर अंग्रेजों ने देश का बँटवारा कर दिया । पश्चिमी पंजाब का वह हिस्सा जिसमें मुस्लिम जनसंख्या अधिक थी पाकिस्तान में चला गया और पंजाब दो टुकड़ों में बँट गया । इस प्रकार पंजाब में अंग्रेजों की चाल सफल हुई ।

हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य पैदा करने में जहां अंग्रेजों ने मुख्य भूमिका निभाई वहां हिन्दू और सिक्खों में अलगाव के और भी कारण थे । आर्य समाज ने सिक्खों की अस्मिता को कोई खास महत्व नहीं दिया बल्कि अपने शुद्धि आन्दोलन के अन्तर्गत सिक्खों को हिन्दू धर्म में मिलाने का प्रयास ही किया ।

इस तरह के छिटपुट कुप्रचारों का परिणाम यह हुआ कि कुछ सिक्खों ने हिन्दुओं से अपने अलगाव की घोषणा कर दी । सिक्खों की " अकाली दल " और "सिंघ सभा " जैसी सियासी पार्टियां बन गईं जो सिक्खों के अलग वजूद और अधिकारों के प्रति सतर्क थीं । उनके सिर पर अंग्रेज सरकार का हाथ था । 1920 में अकाली दल ने सिक्खों के पूजा स्थान गुरुद्वारों का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए आन्दोलन किया । इससे पहले गुरुद्वारों का प्रबन्ध महन्तों के हाथ में

---

1. Kirpal Singh, The Partition of the Punjab, p.4

था जो हिन्दू या मोना सिक्ख होते थे। महन्तों की मनमानी और व्यभिचारों के कारण गुरूद्वारों का वातावरण पवित्र नहीं रह गया था। इस आन्दोलन के कारण 1925 में गुरूद्वारा एक्ट पास हो गया, जिसके तहत गुरूद्वारों का प्रबन्ध शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी को सौंप दिया गया। इस कमेटी की घोषणानुसार सच्चा सिक्ख वही है जो दस गुरूओं और ग्रन्थ साहिब को छोड़कर अन्य किसी में विश्वास न रखता हो।

इन सब के बावजूद सिक्ख और हिन्दू जिस प्रकार पहले इस्लामी शासकों के विरूद्ध मिल कर लड़े थे उसी प्रकार अंग्रेजों के खिलाफ भी एकजुट हो लड़े। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान पंजाब अंग्रेज सरकार के विरोध में पूर्ण रूप से सक्रिय रहा। भगतसिंह, सुखदेव, लाला लाजपतराय, उधमसिंह आदि वीर नेताओं और क्रान्तिकारियों के बलिदान, साईमन कमीशन-विरोध, जलियावाला बाग और कूका विद्रोह जैसे कांडो में भी जो पंजाबी जनता शहीद हुई उनमें हिन्दू-सिक्ख दोनो थे।

अंग्रेजों द्वारा फूट डालने वाली चालों का भयंकर परिणाम बाद में सामने आया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दू-सिक्ख सम्बन्ध तड़कने लगे। एक जुट होकर विदेशियों से लड़ने और उन्हें भगाने का मकसद समाप्त होते ही सिक्ख अपनी अलग स्थिति के प्रति सतर्क होने लगे। पश्चिमी पंजाब में रहने वाले अधिकतर सिक्ख अमीर तबके के (जमींदार, उद्योगपति, लेन-देन का कारोबार करने वाले) लोग थे, जिन्हें विभाजन के समय अपना सब कुछ छोड़कर तथा जान बचाकर वहाँ से भागना पड़ा। इसके विपरीत यहां से जाने वाले मुसलमान खेतीहीन

किसान थे अत: सिक्खों को उनके द्वारा छोड़ी गई नाम मात्र की चीजों पर संतोष करना पड़ा । आजाद भारत में सिक्खों को धर्म निरपेक्षता की स्थिति में रहना पड़ा जबकि अंग्रेजों ने पहले उन्हें विशेषाधिकार और आरक्षण दिए हुए थे । स्वतंन्त्र भारत में उन्हें योग्यता के बल पर अन्य लोगों के साथ संघर्ष करने के लिए बाध्य होना पड़ा । सिक्खों के मन मस्तिष्क में " राज करेगा खालसा, आकी रहे ना कोय " की पंक्ति भी बसी थी ।

भाषाई आधार पर राज्यों की सीमाएं निर्धारित करने की शासकीय घोषणा होने पर सिक्खों ने भी अलग राज्य की मांग की, लेकिन इसे मंजूरी नहीं मिली । भारत में भाषा के आधार पर सर्व प्रथम आन्ध्र - प्रदेश को अलग राज्य घोषित किया गया, फिर गुजरात को । पंजाब को सीमा प्रान्तीय प्रदेश होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से अलग राज्य घोषित नहीं किया जा रहा था । इसी बीच 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया और सीमा पर स्थित होने से पंजाब पर ही इसका सबसे ज्यादा असर हुआ । 1966 में दंगा-फसाद होने पर पंजाब को भाषा के आधार पर अलग राज्य घोषित कर दिया गया । पंजाब एक बार फिर हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और पंजाब तीन हिस्सों में बंट गया । इस नये पंजाब में सिक्ख 60% थे ।

इतने पर भी पंजाब के लोगों के नसीब में शांति नहीं थी । अप्रैल 1973 में अकालियों ने आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव पारित किया जिसके अन्तर्गत पंजाब को एक अलग देश बनाने की मांग की गई और हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान की सीमाओं में आने वाले

पंजाबी भाषाई क्षेत्रों को पंजाब की सीमाओं में मिलाने की मांग रखी गई ।[1] उनके अनुसार हिन्दुओं को हिन्दुस्तान मिल गया और मुसलमानों को पाकिस्तान किन्तु आजादी से सिक्खों को क्या मिला । अलग खालिस्तान की मांग अकाली दल द्वारा दबे-ढंके स्वरों में आजादी से पहले भी उठाई गई थी । उनकी यह मांग सिरे तो नहीं चढ़ी किन्तु इससे पंजाब के हिन्दू-सिक्खों में परस्पर अविश्वास और सन्देह की भावना अवश्य उत्पन्न हो गई । आजाद भारत में यह मांग दोहराई गई किन्तु स्वदेशी सरकार ने इसे मान्यता नहीं दी । खालिस्तान की मांग को पूरा करने के बहाने पंजाब में आतंकवाद ने अपने पैर फैला लिए । उग्रवादियों के द्वारा सरकार पर दबाव डालने के लिए पंजाब को जनता को मोहरा बनाया गया । तरह-तरह से उनकी धार्मिक भावनाओं को उभारा गया, धार्मिक स्थलों को हिंसक कारवाईयों का केन्द्र बनाया गया, जिसका एक परिणाम आपरेशन ब्ल्यू स्टार था । पंजाब में एक बार फिर अशांति का साम्राज्य हो गया । आंतकवादियों को विदेशी सहायता मिलने लगी और ये विदेशी शासकों के हाथों की कठपुतली बन गए । हिन्दू व सिक्खों के साम्प्रदायिक झगड़ों की आड़ ले कर पनपे आतंकवाद का शिकार आज हिन्दू और सिक्ख दोनों समुदाय समान रूप से हो रहे हैं ।

---

1. Amarjit Kaur, The Punjab Story, p.8.

पंजाब में आतंकवाद की समाप्ति कब होगी इस प्रश्न का उत्तर भविष्य के गर्भ में छिपा है, किन्तु इतना जरूर है कि जब तक राजनीति से धर्म को अलग करके नहीं देखा जाएगा यह स्थिति समाप्त होती नज़र नहीं आती । "हो सकता है कि आतंकवाद की व्यर्थता समय पाकर अकालियों के सामने स्वयमेव स्पष्ट हो जाए, या सरकार अपने प्रयत्न से उसे समाप्त कर दे ।"[1] कहा जाता है कि हर अंधेरी रात के बाद सुबह जरूर आती है, पंजाब के लोग उसी सुबह की आशा में हर स्थिति का सामना करते जी रहे हैं ।

1· तूफान के दौर से पंजाब, - पृ· 205·

तृतीय अध्याय

हिन्दी उपन्यास और पंजाबी जीवन का समाजशास्त्र

पंजाब परम्परागत रूप से भारत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं जीवंत प्रदेश रहा है। भूगोल और इतिहास ने इसे पुराने जमाने से सारी सम्पन्नता और कीर्ति दी है। आज भी वहाँ के सांस्कृतिक जीवन की सारी बहुरंगी झलक दिखायी दे जाती है। एक लेखक ने पंजाब के जीवन की विविध - विशेषताओं से प्रभावित हो कर उच्छ्वसित शब्दों में अपने मन के भावों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है - " पाँच पवित्र नदियों से सींचा हुआ प्रदेश-पंजाब, उत्साह, उल्लास और उमंग से उमगता हुआ प्रदेश पंजाब, खेल के मैदान में हो, या युद्ध के मैदान में, अपने पराक्रम-पुरूषार्थ से संसार को चकित कर देने वाला प्रदेश पंजाब, रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर भाँगड़ा नृत्य में रस-रंग लेने वाला प्रदेश-पंजाब तुझे किस-किस रूप में देखें ? पंजाब, जहाँ धरती सोना उगलती है, जहाँ दूध-दही की नदियाँ बहती हैं, जहाँ की सुन्दर स्वस्थ युवक-युवतियाँ प्रीति करना जानती हैं, प्रीति को निभाना भी जानती हैं। पंजाब भारत का भूषण है,

भारत का श्रृंगार है । "[1] वस्तुत: इस कथन में अतिरंजित प्रशंसा-भाव नहीं है, बल्कि बहुत हद तक यह सच्चाई है । पंजाब का यह सुन्दर सम्पन्न बहुरूपी जीवन हमें अनेक हिन्दी उपन्यासों में भी कलात्मकता से चित्रित मिलता है ।

अन्य प्रदेशों की तरह पंजाब भी अधिकांशत: गाँवों में ही बसा था और है, यद्यपि पहले की बनिस्बत ये गाँव तेजी से परिवर्तित हो रहे हैं । कस्बे तथा शहरों की अनेक सुविधाएँ यहाँ पहुँच रही हैं । गिने चुने शहरों में लाहौर, रावलपिंडी, मुलतान, अमृतसर, जालंधर, आदि अपने व्यापार और कला के लिये मशहूर थे, जबकि ग्रामीण जीवन मुख्यत: खेती-बारी पर ही निर्भर था । इस तरह गाँवों और शहरों के बीच संतुलन और सामंजस्य से पंजाब का आर्थिक ढाँचा सुदृढ़ खड़ा था । पंजाब के आर्थिक आधार को मजबूत करने वाले ये ग्रामीण क्षेत्र अपने-आप में पूर्ण थे । यहाँ के निवासियों की जरूरतें सीमित थीं जो वहीं से पूरी हो जाती थीं । आवागमन के साधनों के अभाव में इनका शहर से सम्पर्क नहीं के बराबर था । केवल गाँव के दुकानदार या व्यापारी लोग सामान लाने या बेचने के लिये महीने दो महीने में आवश्यकतानुसार इक्का-दुक्का चक्कर शहर का लगा लेते थे । दैनिक जरूरतों का अधिकांश सामान गाँव में ही बनता था ।[2] विभिन्न जातियों और वर्गों के लोग अपना-अपना कार्य करते थे और परस्पर आदान-प्रदान से यहाँ का जीवन सुगमतापूर्वक चलता था । पैसे का चलन यहाँ नहीं के बराबर था । अनाज की पैदावार अधिक होने के कारण यहाँ दानों का मोल ही अधिक था ।

" निक्का निमाणा " उपन्यास में निक्का पंजाब के एक ठेठ गाँव घोपलू की याद में उसकी विशेषताएँ गिनाता चला जाता है - " घोपलू में कोई चाचा कृष्णा होता है, कोई भूरो होती है, कोई नम्बर होता है । बेबे वड्डी होती है ।

---

1. रामेश्वरदयाल दूबे, भारत की प्रणय कथाएँ - पृ. 15.
2. रात, चोर और चाँद - पृ. 118 (" यूँ भी पंजाब के गाँव में साधारण आवश्यकता की चीजें लगभग हर किसी को मिल जाती हैं । ")

भुआ के चरखे की तान तुमने सुनी हो तो तुम्हें पता चले कि तपती दोपहरी में पीलू के पेड़ की छांव क्या होती है । गाय की माँ SSSSS क्या होती है । बछड़े की कुदान क्या होती है । बरसात की टप-टप क्या होती है । मिट्टी की सोंहदी खुशबू क्या होती है । सैकड़ों जिन्दगियाँ जमती हैं । घुटनों के बल रिड़ती हैं । बोहड़ के पीछे लुकनछुप्पी खेलती हैं । जवान होती हैं । मुट्यार होती हैं । बीज डालती हैं । मचान पर चिड़ियाँ उड़ाती हैं । कमानों में गन्ने चूसती हैं । बण्डी उतार कर बेरी पर सुखाती हैं । झर-झर बहते पानी में सिमट-सिमट कर पिण्डा धोती हैं । गीली कमर पर सुथ्थन बाँधती हैं, सरसों के फूल अपनी गुत में टाँकती हैं ।"[1] " जिंदगीनामा " के शुरू के कुछ पृष्ठों में कृष्णा सोबती ने पंजाब, वहाँ की सौंधी मिट्टी, निवासियों, पेड़-पौधों, रहट, नदियों तथा उनके मीठे पानी आदि वस्तुओं के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्गार काव्यमय शैली में व्यक्त किये हैं ।[2] " तमस " में डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड के माध्यम से पंजाब की मिट्टी के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है । रिचर्ड अपनी पत्नी लिजा को बताता है कि - " यह बड़ी ऐतिहासिक घाटी है । हिन्दुस्तान में आने वाले सभी हमलावर इसी रास्ते से आये थे । मध्य ऐशिया से आने वाले भी और मंगोलिया से आने वाले भी, " अलेक्सांडर भी इसी रास्ते हिन्दुस्तान में आया था । ····· इसी रास्ते सौदागर लोग भी और बुद्ध धर्म के प्रचारक भी दूर-दूर तक जाते थे । बड़ा ऐतिहासिक इलाका है । ··· जगह-जगह पुरानी इमारतों के खंडहर हैं, किले, बुद्ध-बिहार, सरायें ··· "[3]

" चक्पीरां का जस्सा " में बग्गासिंह कहता है कि " कम से कम मैंने तो पंजाब में किसी सिक्ख को भीख माँगते नहीं देखा ··· सिक्ख भिखारी नहीं होते ।

1· निक्का निमाणा - पृ· 163·

2· जिन्दगीनामा - पृ· 1 - 28·

3· तमस - पृ· 34·

हाँ, अगर कभी पंजाब खत्म हो गया तो फिर सिक्ख भी भिखारी बन जायेंगे । "[1] पंजाब के लोग, खासकर सिक्ख, निडरता और साहस के पुतले होते हैं । वे डाकू और खूनी हो सकते हैं, लेकिन भिखारियों वाली निरीहता उनमें नहीं पायी जाती ।

पंजाब के निवासी अपनी कर्मठता, सहनशक्ति और अदम्य साहस के बल पर कठिन से कठिन परिस्थितियों से गुजरते हुए भी अपनी पंजाबियत को कायम रखे हुए हैं । ऐसे जीवंत समाज की अपनी विशेषताएँ होती हैं, जो उनके आचार-विचार परिवार तथा समाज के अध्ययन से सामने आती हैं । पंजाबी जीवन को आधार बना कर लिखे गये हिन्दी उपन्यासों का अपना कथा-विन्यास होने के बावजूद उनमें पंजाबी जीवन के विविध पहलू वर्णित हुए हैं । इन पहलुओं का अध्ययन आगे के पृष्ठों में किया गया है ।

किसी भी समुदाय - विशेष के जीवन की विशेषताएँ खास-खास बातों में उभर कर आती हैं । व्यक्तियों तथा जगहों के नाम, खान-पान, वेश-भूषा, धर्म रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जिनमें लोगों का सामाजिक, आर्थिक जीवन अभिव्यक्ति पाता है । हिन्दी उपन्यासों के सहारे हम इन तत्वों में पंजाब के जीवन की विशेषताएँ पहचानने की कोशिश करेंगे ।

उन्नीसवीं सदी के अंत तथा बीसवीं सदी के आरम्भ में धीरे-धीरे आधुनिकी - करण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण पंजाब का ग्रामीण जीवन विचलित होने लगा । ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी शहर की ओर देखने लगे । शहरों और कस्बों के विस्तार के कारण भी गाँव, शहर-कस्बे में मिलकर अपना निजी और पुराना स्वरूप खोने लगे । बचे-खुचे ग्रामीण क्षेत्र भी अब पहले जैसे स्वावलंबी नहीं रह सके ।

1· चक्पीरां का जस्सा, पृ· 25 (हिन्दी के एक युवा कहानीकार की प्रसिद्ध कहानी का शीर्षक ही है - " क्या तुमने सरदार भिखारी देखा है ? ")

जटिल आधुनिक जीवन-प्रणाली की दौड़ में उन्हें अपनी जरूरतों के लिये बार-बार शहर भागना पड़ता है । इससे भी गाँवों के निवासी (जैसे ग्रामीण जट्ट) अपनी चारित्रिक विशेषताएँ खोते जा रहे हैं और उनका तेजी से शहरीकरण होता जा रहा है ।

विविध पेशे :-

अतीत के पंजाबी गाँवों को चित्रित करने वाले हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से हम पंजाब के ग्रामीण जीवन की झलक पा सकते हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य पेशा खेती-बारी ही रहा है । पाँच नदियों के जल से भरपूर और उपजाऊ भूमि खेती के अत्यंत अनुकूल भी थी । ग्रामीण जीवन को आधार बना कर चलने वाले हिन्दी उपन्यासों में खेती-बारी से सम्बन्धित जीवन को अधिक विस्तार से पाठकों के सामने पेश किया गया है । " कभी न छोड़े खेत " में नम्बरदारों के करतार की घोड़ी की टापों से नीलोचालियों की सीतलकौर के थोड़े से उपले टूटने और गोबर के छींटे उसके मुँह पर पड़ने की छोटी-सी घटना को लेकर जो दंगे-फसाद हुए उन के पीछे खेतों और जमीन के कारण ही उत्पन्न होने वाली रंजिश की लम्बी भूमिका थी । राजू की आँखों के सामने पारसाल अपने खेतों में लगायी गयी आग का दृश्य आ जाने से उसका खून खौल उठा और वह करतार पर टूट पड़ा ।[1] किसानों को परम्परा और संस्कार से खेत और जमीन इतनी प्यारी होती है कि नत्था-सिंह खेत बेचने की बजाय अपने एक लड़के की बलि देने को तैयार हो जाता है - " मेरे चार पुत्तर हैं । एक को फांसी भी लग गयी तो तीन बचे रहेंगे ... हम तो मुकदमा सरीर पर ही झेलेंगे । बाकी जो होगा, देखा जाएगा । "[2] " मुट्ठी भर कांकर " और " घासगोदाम " उपन्यासों में, पैसा मिलने पर भी,

---

1· कभी न छोड़े खेत - पृ· 10·

2· - वही - पृ· 176·

जमीन छिनने से वहाँ के लोग दु:खी, बरबाद और बेकार हो गये । " चक्पीरों का जस्सा ", " दो अकालगढ़ " और " रात, चोर और चाँद " में भी जीवन मुख्यत: खेती-बाड़ी के चारों ओर ही घूमता है । " जिन्दगीनामा " तो खेतिहर जिन्दगी का खुला दस्तावेज ही है । पंजाब की उपजाऊ भूमि, मस्ती से भरा वातावरण, चनाब के मीठे पानी के साथ-साथ वहाँ के लोगों की बहुमुखी समस्याएँ भी यहां देखने को मिलती हैं ।

गाँव में जमीन के मालिक ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करते थे जबकि बटाई पर काम करने वाले किसानों और मजदूरों का जीवन अभावग्रस्त ही था । फसल निकलने पर कुछ उधार और ब्याज चुका कर जो अनाज बचता उससे कुछ दिन आराम से बीतते, तत्पश्चात फिर छोटी-छोटी जरूरतों के लिये ये मजदूर किसान जमींदारों और साहूकारों के पास दौड़ते थे, जहाँ सौ मिन्नतों के बाद एहसान के साथ भारी ब्याज पर थोड़ी-सी सहायता मिलती । इस तथाकथित सहायता के बदले कई बार तो पीढ़ियों तक लोग बेगार से बंधे रहते थे । " जिन्दगीनामा " में शाह से उधार लेने की सलाह देने वाले से मद्दी चिढ़ कर कहता है - " बस ओए, यह सूद वाली शह हमे न बता । ढोर-डंगर तो कभी-कभार वच्छे-वच्छा देते हैं । उधार का सूद दिन-राती जन्मता बढ़ता रहता है । "[1] मैयासिंह कहते हैं - " मैंने कहा खेती शाहों की भी होती है, पर दूसरी तरह की । इस खेती में दमड़ों के बीज और दौलत की फसलें । "[2] शाह के पास बन्धक पड़े खेतों की पीड़ा के साथ-साथ बेगार की मार सहने वालों में से मेहर अली साफ-साफ बोलने लगता है -"खेत तो शाहों के ही ना । अपने हिस्से तो यही मेहनताना - बाड़ी की कुछ भरियाँ ··· शाहों की देनदारी में तो हम घुटने - घुटने खुबे हैं । "[3] वह आगे कहता है - " चार आना सूद एक रुपये पर और एक पण्ड

1· जिन्दगीनामा - पृ· 165·
2· - वही - पृ· 120·
3· - वही - पृ· 101·

दानों को बीघा जमीन पर । बाकी जो बचा-खुचा उसमें कम्मी-कमीनों की उमरें पार । "[1]

" कभी न छोड़े खेत " में बचोंतसिंह और नत्थासिंह मुकद्दमेबाजी के दौरान गांव के साहूकार के पास सस्ते में अनाज बेचने और जमीन गिरवी रखने को मजबूर हो जाते हैं । " मुट्ठी भर कांकर " में ज्यों ही सरकार से जमीन का पैसा गांव वालों को मिलता है त्यों ही गांव का दुकानदार और साहूकार दुनीचंद उनकी तीन पुश्तों का लेखा-जोखा मिलाने बैठ जाता है । " दो अकालगढ़ " में तो एक गांव में इतने साहूकार बताए गए हैं कि उस गांव का नाम ही साहूकारों का गांव पड़ गया - " वह साहूकारों का गांव कहलाता था । इन साहूकारों की खासियत यही थी कि वे किसानों और दूसरे आदमियों को भारी सूद पर कर्जा दिया करते थे । "[2] इस प्रकार खेती के साथ-साथ साहूकारे का पेशा भी गांव में जोर-शोर से चलता था ।

खेतीबारी से सम्बन्धित औजार आदि बनाने वाले लुहार और बढ़ई अपने-अपने कार्यों में निपुण होते थे । ये लोग खेती के काम आने वाले औजार और घरों में काम आने वाली चीजें सभी कुछ बनाते थे । " रात, चोर और चांद " में एक पात्र दोनों बढ़ई है जिसकी दुकान तो नौजवानों के गपशप करने का अड्डा ही बन गई थी । वह काम कम करता और गपशप का आनन्द ज्यादा उठाता था । वैसे तो वह लुहार के रूप में प्रसिद्ध था, फिर भी बढ़ई का काम करता था । यह गांव में पेशा बदलने का एक उदाहरण है । " दोनों था तो लुहार के नाम से प्रसिद्ध (उसके पूर्वज लुहार रहे होंगे) परन्तु अब वह बढ़ई का काम करता था ।"[3]

1· जिन्दगी नामा - पृ· 101

2· दो अकालगढ़ - पृ· 96·

3· रात, चोर और चांद - पृ· 116·

" धरती धन न अपना " में " मिस्तरी सन्तासिंह का मुख्य कार्य गाँव के काश्तकारों के लिये हल-पंजालो और कृषि सम्बन्धी दूसरे औजारों के लिये लकड़ी के भाग बनाना और उनकी मरम्मत करना था । इसके लिए उसे प्रतिहल रबी और खरीब पर एक एक मन अनाज मिलता था । "[1] चाकू-छुरी बनाने का काम शिग्लीगर करते थे, " शिग्लीगर काले-कलूटे और नाटे कद के सिक्ख चाकू छुरे बनाते थे । वे अक्सर पुरानी रेतियाँ जमा कर लाते और जो चाकू और छूरे वे इन रेतियों के लोहे से बनाते थे, उन्हें बेचते भी ज्यादा दामों में थे ।"[2] कुम्हार मिट्टी की सुराहियाँ, मटके, और बर्तन बना कर बेचते थे, " गाँव के बाहर कुम्हारों के घर थे । जब दीदारसिंह और तेजासिंह कुम्हारों के मकान के पास से गुजरे तो कच्चे बर्तनों को पकाने वाले भट्टे की सेंक से उन्हें जरा रास्ते के परले किनारे से होकर चलना पड़ा ।"[3] एक स्थान पर कुम्हारों की लड़की स्कूल के बोर्डिंग हाउस से घर जाने वाले लड़के को अपने बर्तन बेचते हुए कहती है - " आजकल हमने नमकीन मिट्टी की सुराहियाँ बना रखी हैं । एक ले जाओ । पानी इतना ठण्डा हुआ करेगा कि बस याद करोगे उमर भर । "[4] अराई लोग अपने खेतों में या थोड़ी-बहुत जमीन में सब्जी-भाजी उगा कर बेचा करते थे । यही इनकी आय का साधन था - " बोर्डिंग हाउस के पीछे अराईं [सब्जी बोने वाला] के खेत थे । "[5] " शरद ऋतु " में नसीबन अरायन कचहरी में तहसीलदार से मिलने आती है - " फर्श पर नसीबन अरायन ऐंड़ियों के बल बैठी हुई थी । .. नसीबन जनाने में तरकारी-भाजी बेचने आया करती थी । "[6]

1· धरती धन न अपना - पृ· 92 - 93

2· दो अकालगढ़, - पृ· 81·

3· - वही - पृ· 199·

4· - वही - पृ· 13·

5· - वही - पृ· 10·

6· शरद - ऋतु - पृ· 11·

जुलाहे कपड़े बुनने और सूत कातने का काम करते थे। "रात, चोर और चाँद" में सरनों पालो को बताती है - "मैं निधे ‖ पास के गाँव ‖ तक गई थी, जुलाहों को सूत दे रखा है हमने।"[1] एक जमाने में घर-घर में औरतें सूत कातने का काम किया करती थीं, पर आज के गाँवों में स्थितियाँ पहले से भिन्न होती जा रही हैं। आर्थिक दृष्टि से कुछ काम-धन्धे पुराने पड़कर छूटते गये हैं। घरों में चक्की पीसना, सूत कातना ऐसे ही काम थे जिनमें जितना परिश्रम करना होता था उसकी तुलना में आय कम होती थी।

गांव में किसी-किसी के लिये आटा-पीसने की मशीन भी अतिरिक्त आमदनी का जरिया है। कभी-कभी नाजायज धन्धा करने वाले भी दिखावे के लिये आटे की चक्की बैठा लेते हैं। "दो अकालगढ़" में दीदारसिंह के परिवार में आटे की चक्की अतिरिक्त आय का साधन थी।[2] जबकि "रात, चोर और चाँद" में ज्वालासिंह ने लोगों की नजर से बचने के लिये यह चक्की लगा रखी थी "खरास की आय पर्याप्त थी। भला ज्वालासिंह को इसका बोझ क्यों मालूम होता। ... आय के असली साधन तो और थे परन्तु दिखावे के लिये कोई न कोई उचित पेशा तो होना ही चाहिये।"[3]

गाँवों में पुरोहितों का घर भी होता है और गाँव की जिन्दगी के वे भी हिस्सा होते हैं। वे मन्दिरों में पूजा करते हैं। घरों में विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों तथा अन्य धार्मिक कार्यों के लिए मुहूर्त निकालने या पत्रा देखने से लेकर उन को पूरा अंजाम देने के लिये पुरोहिताई का पेशा भी किसी कदर चल जाता है। "मय्यादास की माड़ी" में पुरोहित इसी प्रकार के कार्यों से अपनी जीविका कमाता

---

1. रात, चोर और चाँद - पृ. 131.
2. दो अकालगढ़ - पृ. 71.
3. रात, चोर और चाँद - पृ. 75.

है - " पुरोहित पुरोहिताई करता फिरता था । प्रथानुसार बिरादरी के हर घर में उसका " हन्दा " बंधा हुआ था, हर तीज-त्यौहार पर भी छोटी-मोटी दक्षिणा मिल जाती । "[1] कहना न होगा कि आज केवल पुरोहिताई पर सम्मानित जिन्दगी जीना कठिन हो चला है, अत: इस पेशे के लोग दूसरे धन्धे भी अपनाने लगे हैं ।

अन्य प्रान्तों की तुलना में पंजाब में औरतें जीविका कमाने में पुरूषों को ज्यादा ही सहयोग देती हैं । यह सहयोग खेतों में काम करने से लेकर खरबूजे या तरबूज के बीज निकालने तथा सूत कात कर बेचने तक की शक्लों में अनेक प्रकार से होता है । कुछ जातियों की औरतें तो बड़ी दुस्साहसी भी होती हैं । " पंजाब के देहातों में एक जाति होती थी जिसकी औरतें गुलेलियां कहलाती थीं । वे ज्यादातर सुइयां, बटन, इजारबन्द, घुटोले और इसी तरह की चीजें बेचा करती थीं । "[2]

इन पेशों के अलावा गांवों का साबका नम्बरदार, पटवारी, दरोगा तथा स्कूल-मास्टर जैसे सरकारी अहलकारों से भी पड़ता ही रहता है । वस्तुत: गांवों में धनी और गरीब वर्गों के अन्तर्गत पेशों को बांट कर देखा जा सकता है। " रात, चोर और चांद " में बलवन्तसिंह लिखते हैं - " गांव की आबादी दो भागों में बंटी थी । एक तो विशिष्ट और दूसरे जनसाधारण। विशिष्टों में नम्बरदार, पटवारी, साहूकार और उनके संगी-साथी थे और अन्य लोगों को जनसाधारण में गिना जा सकता था । "[3] " मुट्ठी भर कांकर " में सरकारी ओहदेदार पटवारी, हालांकि " सरकारी हुक्म " के हथियार से सबको परेशान कर देता है फिर भी लोगों का उस

1· मय्यादास की माड़ी - पृ· 14

2· दो अकालगढ़ - पृ· 272·

3· रात, चोर और चांद - पृ· 6·

पर इसलिए विश्वास कायम रहता है कि, " पटवारी सरकारी अहलकार है । झूठ क्यों बोलेगा । "[1] " धरती धन न अपना " में जमीन की नपाई के सिलसिले में होने वाले झगड़े को शांत करने के लिये घड़म चौधरी निक्कू चमार से कहता है - " जमीन दबा रहा था तो पटवारी के पास जाता । वह माप कर जमीन निकाल देता । "[2] " शरद ऋतु " में तहसीलदार के रौब-दाब और अधिकार को विस्तार से दर्शाया गया है । तहसीलदार का नौकर भी जब चाहे गांव के लोगों की चीजें उठा लेता है । अल्ला वसाया नसीबन अराईन का मेमना जबरदस्ती हथिया लेता है और विरोध करने पर कहता है - " तहसीलदार साहब का आदेश है । "[3]

अंग्रेजों के जमाने से ही तहसीलदार का पद ऊपरी आमदनी वाली नौकरी के रूप में समझा और माना जाता रहा है । जमीन्दार, तहसीलदार और दारोगा की मिली भगत का होना आम बात थी और गांवों में यह तिकड़ी बड़े जुल्म ढाया करती थी । गांवों की कृषि-आधारित अर्थ व्यवस्था वाले तंत्र का तहसीलदार बड़ा महत्त्वपूर्ण पुर्जा होता था क्योंकि वह कलम के इशारे से जमीन का मालिकाना हक बदल दे सकता था । जर, जोरू के साथ जमीन के लिये जो मार-काट, मामला मुकदमा चला करता उसमें तहसीलदार की खासी और सक्रिय भूमिका रहती ।

पुलिस की नौकरी में, सबसे नीचे की सीढ़ियों पर होने के बावजूद, थानेदार, दारोगा और सिपाही ऊपर की कमाई के साथ-साथ अच्छा खान-पान और मौज मस्ती भी करते हैं । " दो अकालगढ़ " में दिखाया गया है कि पुलिस के आने पर सरदारों का खानदान उनकी अच्छी-खासी आवभगत करता है । " घर के घी

1· मुट्ठी भर कांकर - पृ· 25·

2· धरती धन न अपना -पृ· 87·

3· शरद ऋतु - पृ· 45·

में जब शोरबेदार मुर्गा बना तो उसके साथ तन्दूर की रोटियाँ खाकर मेहमान तृप्त हो गये। तीसरे पहर बादाम, खशखाश और चारों मगज़ घोट कर ठंडाई तैयार की गई। दिन ढले शराब का दौर शुरू हो गया। अब मुर्गे तन्दूर में पकाये गये। "[1] इसी तरह "रात, चोर और चाँद" में – "दरोगा जी गाँव की इकलौती कुर्सी पर विराजमान हैं और सब लोग हाथ बाँधे खड़े हैं। अण्डे इकट्ठे किये जा रहे हैं। यदि दरोगा जी सिक्ख हैं तो मुर्गियाँ "झटका" की जाती हैं, यदि रसूल के नाम लेवा हैं तो उन्हें इस्लामी ढंग से "जबह" किया जाता है। "[2] पुलिस वाले कहीं कोई वारदात होने पर चाहे जिस किसी को थाने में बुला लेते हैं और या तो रिश्वत ले कर उसे छोड़ देते हैं या फिर तरह-तरह की यातनाओं के द्वारा अपनी बात मनवाते हैं।[3] सीधे-सादे व्यक्ति तो पुलिस से दूर रहने में ही अपनी भलाई समझते हैं। वैसे तो एकाध अच्छे पढ़े-लिखे और रहमदिल पुलिस वाले भी होते हैं किन्तु पेशेवर मुजरिम ऐसे पुलिस अफसर के काबू नहीं आते।[4]

पंजाब में जगह-जगह सड़क के किनारे ढाबे (छोटे-मोटे रेस्टोरेंट या खाने की दुकान) खुले रहते हैं। आलोच्य उपन्यासों में कई स्थलों पर इनका वर्णन मिलता है। "झूठा-सच" का नायक जयदेव पुरी मुसीबत के समय में ऐसे ही एक ढाबे में काम करता है और देखता है कि – "महरा तंदूर के समीप गद्दी पर बैठा, हथेलियों से गढ़ कर रोटियाँ तंदूर में लगाता जा रहा था। .. थाली में रोटियाँ, दाल की कटोरी, कड़छी भर कद्दू की तरकारी और चुटकी भर चटनी ग्राहकों के सामने रख देता था। गिलास में जल दे देता।"[5] "मनुष्य के रूप" में

---

1. दो अकालगढ़ – पृ. 175.
2. रात चोर और चाँद – पृ. 8.
3. कभी न छोड़े खेत – पृ. 80 – 83.
4. – वही – पृ. 71 – 72.
5. झूठा सच – II, पृ. 10 – 11

अगर भटकते हुए धनसिंह को " एक ढाबे (तन्दूर) से आती रोटी की सोंधी सुगन्ध ने आकर्षित किया "[1] तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। ढाबे पंजाबियों की अपनी पहचान हैं और " शेरे-पंजाब " जैसे शानों-शौकत भरे रोचक नामों के साथ लगभग पूरे देश में बिखरे हुए हैं। इन ढाबों ने पंजाबी खान-पान को देश के पैमाने पर लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका निभायी है। तंदूरी, फ्राइड दाल, तड़का, सरसों का साग, लस्सी – जैसे अनेक खाँटी पंजाबी " डिशों " ढाबों ने देशव्यापी रूप से सुलभ करा दी हैं। ये ढाबे राष्ट्रीय राजमार्गों तथा अन्य महत्वपूर्ण सड़कों पर जगह-जगह मिल जाते हैं जो खासकर ट्रक चालकों की सुविधा को ध्यान में रख कर बनाये जाते हैं। यहाँ ट्रक-चालकों के खाने की ही नहीं, ठहरने-सुस्ताने की भी व्यवस्था होती है।

पंजाब के लोग ट्रक-ड्राइवरी के लिये मशहूर हैं। पंजाब के अलावा देश के दूसरे हिस्सों में यहाँ तक कि विदेशों में भी, सिक्ख ट्रक-ड्राइवरी करते हुए दिखाई पड़ते हैं। " रात, चोर और चाँद " में पालीसिंह गाँव वालों को बताता है – " कलकत्ते में हमारे इलाके के बीसियों सिक्ख गये हुए हैं। मोटर-ड्राइवरी का सारा काम इन्हीं के हाथों में है। ... जो सिक्ख बहुत पहले से गये हुए हैं उनके पास तो बहुत धन इकट्ठा हो गया है। एक-एक ठेकेदार के पास कई-कई लारियाँ हैं।"[2] "मनुष्य के रूप में" धनसिंह पहाड़ी क्षेत्रों में कम्पनी की लारियाँ चलाता है। कम्पनी में और भी कई सिक्ख तथा पंजाबी ड्राइवर भरती हैं जो लम्बे तथा खतरनाक रास्तों पर यह परिश्रम भरा कार्य रात दिन करते हैं।[3]

---

1. मनुष्य के रूप – पृ. 131.
2. रात, चोर और चाँद – पृ. 94.
3. मनुष्य के रूप – पृ. 10.

ईंटों का भट्टा लगा कर भी लोग जीविका उपार्जन करते हैं तथा मुनाफा कमाते हैं । यहाँ ईंटों को सांचे में ढाल कर पकाया जाता है । " धरती धन न अपना " में काली अपना पक्का मकान बनाने की साध में ईंटों के भट्टे पर ईंटें लेने जाता है तो भट्टे का मालिक उसे ईंटों की अनेक किस्में बता कर पूछता है कि उसे कौन सी चाहिये ।[1]

रोजी-रोटी का जीवन संघर्ष :-

पंजाब के लोग परंपरा से ही साहसी और बहादुर होने के कारण सेना में भर्ती होना गौरव की बात समझते रहे हैं । खतरों से खेलने वाले वीर और निर्भीक नवयुवक अगर सेना में भर्ती हुए तो अपनी बहादुरी के लिये ईनाम पाते हैं अन्यथा डाकेजनी का खतरनाक " पेशा " अपना लेते हैं । पंजाब के बहादुर नौजवानों के कारण ही पंजाब बटालियन बाजी मार ले जाती है । " जिन्दगी - नामा ", " टुण्डा लाट ", " आधा पुल ", " शरद ऋतु "; " रात, चोर और चाँद " आदि उपन्यासों में सेना में भर्ती होने वाले जवानों का वर्णन मिलता है । " जिन्दगीनामा " की लेखिका बताती हैं कि गाँव में भर्ती-अफसर के आने पर प्राय: सभी नवयुवक अपना नाम फौज में लिखाने के लिये तत्पर हो जाते हैं । खाकी-वर्दी पहन कर बन्दूक हाथ में लेने की उनकी तमन्ना छिपाए नहीं छिपती । गाँव के बुजुर्ग भी इसे गौरव की बात मानते हैं कि उनके गाँव के ज्यादा से ज्यादा युवक फौज में भर्ती हैं । सेना से वापस आने पर जवानों का बड़े जोर-शोर और उत्साह से स्वागत किया जाता है । " टुण्डा लाट " उपन्यास में फौजी सुनील सेना से बुलावा आने पर अपने माता-पिता के बारे में सोचता है - " जब उन्हें पता चलेगा कि वह सेना में वापस चला गया है तो उन्हें बहुत खुशी होगी । शायद वे

1• धरती धन न अपना - पृ• 59•

पड़ोसियों में मिठाई भी बाँटेंगे । बाबूजी तो एक बार फिर से मलमल की सादा पगड़ी की बजाय मांड़ीदार पगड़ी पहनना शुरू कर देंगे । "[1] लड़ाई में यही सुनील दुश्मन के कई टैंक बर्बाद कर अपने दाहिने हाथ की कई उंगलियां गंवा बैठता है ।[2] " आधा पुल " में कैप्टन इलावत आधे पुल को जीतने के लिए साहस और बहादुरी का अद्भुत नमूना पेश कर लड़ाई में मारा जाता है । उपन्यास के अन्य पात्र कर्नल गिल, मेजर ढिल्लों आदि भी सैनिक-सुलभ जिंदादिली की मिसालें पेश करते हैं । " शरद ऋतु " में सेना में भर्ती के लिए सरकार से आर्डर आने पर तहसीलदार साहब अपने इलाके से अनेक युवकों को सेना में भेजते हैं । " रात, चोर और चांद " में गांव वाले सूरतसिंह का इसीलिए आदर करते हैं और उसे बड़ा आदमी मानते हैं क्योंकि वह सेना में लेफ्टिनेण्ट है । निरंजनसिंह भी जवानी में सेना में रह आया है ।

पंजाब में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनका सम्बन्ध गैरकानूनी और नाजायज धन्धों से होता है । शुरू से ही साहसी और तगड़े नौजवान, जो ज्यादा ही जोशीले या जहरीले थे, डाकों और कत्लों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते रहे । कइयों का तो यह खानदानी पेशा ही बन गया । " रात, चोर और चाँद " में डाके का प्रोग्राम बनाते हुए ज्वालासिंह पालीसिंह को बताता है - " अपने जिले का सबसे बड़ा साहूकार है, कोई छोटा-मोटा नहीं । जो एक बार दांव चल गया तो समझो बेड़ा पार है । जैलसिंह की शादी होने वाली है ना वह वहाँ से अपनी औरत के लिये गहने लाना चाहता है । "[3] पालीसिंह के गाँव लौटने पर गाँव से बाहर कुछ लोग उसे लूटने की कोशिश करते हैं । इस धंधे के

1· टुण्डा लाट - पृ· 98·
2· - वही - पृ· 193·
3· रात, चोर और चाँद - पृ· 257·

बारे में पूछने पर बताते हैं कि- "नहीं, पेशा तो नहीं ·· लेकिन तुम जानते ही हो, यह जगह सुनसान है । कोई शिकार आ फंसे तो उसे हम छोड़ते भी नहीं । "[1]

"काले-कोस" में पिशौरासिंह गाँव की एक बैठक में शहर से आये अपने बेटे सूरतसिंह को गाँव के बारे में बताते हुए कहता है, " हमारे गाँव किसी समय अपनी बदकारियों और डाकुओं के लिये मशहूर थे, लेकिन धीरे-धीरे काफी सुधार हो गया है । "[2] बात आगे बढ़ाते हुए बेलीशाह अफसोस के साथ कहता है- " बस बुराई तो यही है कि हमारे यहाँ जो लड़का अच्छा जवान निकलता है वह मार-धाड़ और डकैतियों में भाग लेने लगता है । "[3] इतना ही नहीं " पीर का टट्टा " नामक गाँव में हुई डकैती में तो कूरा अपनी सगी बहन के घर डकैती डालने में शामिल था ।[4] डाकेजनी की वारदातें पंजाब के इन धाकड़ इलाकों के लिये आम हैं ऐसा बलवन्तसिंह के उपन्यासों से पता चलता है । संभव है, देश के दूसरे इलाकों की अपेक्षा ऐसी दुस्साहसी घटनाएं पंजाब में अधिक घटित होती हैं।

डाके के अलावा लड़कियों और औरतों को भगाकर ले जाने और फिर उन्हें बेच देने का काला धंधा भी कुछ लोग अपना लेते हैं । " रात, चोर और चाँद " में ज्वालासिंह पालोसिंह को बताता है - " मित्तसिंह पुराना पापी है । औरतें और युवा लड़कियों को घरों से भगा ले जाना और उन्हें किसी के हाथ बेच डालना उसका विशेष धन्धा है, वह इस कला का गुरू है ······· दूसरे भले कामों अर्थात्, चोरी, डाके आदि में भी भाग ले लिया करता है। "[5]

" काले-कोस " में करीमू नामक व्यक्ति यही धंधा करता है ।[6]

1· रात, चोर और चाँद - पृ· 22·

2· काले-कोस, - पृ· 51·

3· वही - पृ· 53·

5· रात, चोर और चाँद, - पृ· 179

6· काले-कोस - पृ· 34·

लेकिन सभी युवक ऐसे कामों को अच्छा नहीं समझते । पिरसासिंह करीमू के पेशे के बारे में जानकर अपने दोस्त सिराज से कहता है - " यार, सच्ची बात यह है कि यह पेशा बड़ा गन्दा है । यों औरतों से मिलना-जुलना, याराना गांठना और बात है, पर उन्हें भगाना और बेचना बड़े घटिया आदमियों का काम है । "[1]

देश के अन्य भागों की तुलना में पंजाब में शराब का चलन कुछ अधिक ही है । दिन-भर कड़ी मेहनत कर यहां के निवासी शाम को शराब की मस्ती में कुछ इस तरह ढालते हैं कि यह व्यसन यहां अपनी समस्त बुराइयों के साथ विराजमान हो जाता है । " कभी न छोड़े खेत " में तो दिलदार रोज सुबह से ही नशे में दिखाई पड़ता है और अनाप-शनाप बोलता रहता है । पुलिसवाले, जमींदार, किसान, यहाँ तक कि कभी-कभी किशोर नवयुवक भी, इसके सरूर में झूमते दिखाई पड़ सकते हैं । गांवों में अधिकतर कच्ची शराब का प्रयोग किया जाता है और यह गैरकानूनी ढंग से बनाई जाती है । शराब बेचने का धंधा पुलिस की नजरें बचाकर, या उनसे सांठ -गांठ करके चलाया जाता है । " कभी न छोड़ें खेत " में दरोगा छापा मार कर माल सहित अपराधियों को पकड़ता है । पुलिसवाले आपस में बातचीत करते हैं कि - " नूरपुर के लोगों ने शराब कशीद करने के कारखाने लगा रखे हैं । .... सारा गांव खेती छोड़ यही धन्धा करने लगा है । "[2] शराबी दिलदार इसी आशा के साथ रोज थाने का चक्कर लगाता है कि शायद नाजायज शराब बनाने वाले कैदियों से मुलाकात हो जाए । "[3]

गांवों में जहां विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित एक आध दुकान ही मिलती है वहाँ शहरों में बड़े-बड़े बाज़ार तरह-तरह के सामानों से सजे होते हैं । वहाँ हर प्रकार का सामान मिल जाता है । " शहर में घूमता आईना " में जालंधर के " बाजियां वाले बाज़ार " का चित्रण हुआ है ।[4] "तमस" में (रावलपिंडी/लाहौर के (" शिवाले के बाजार " का चित्रण उपन्यासकार कुछ इस प्रकार करता है --

---

1· काले-कोस - पृ· 170·
2· कभी न छोड़े खेत - पृ· 67
3· वही - पृ· 67
4· शहर में घूमता आइना पृ· 3·

"शहर में सब काम जैसे बँटे हुए थे : कपड़े की ज्यादातर दूकानें हिन्दुओं की थीं, जूतों की मुसलमानों की, मोटरों-लारियों का सब काम मुसलमानों के हाथ में था, अनाज का काम हिन्दुओं के हाथ में। छोटे-छोटे काम हिन्दू भी करते थे, मुसलमान भी।"[1] इस प्रकार शहरों में भी व्यापार अधिकतर धर्म या जाति के अनुसार बँटा था। "रात, चोर और चाँद" के अनुसार पंजाब से बाहर के शहरों में लारियों का काम अधिकतर पंजाब से बाहर गये सिक्ख ड्राइवर देखते थे, लेकिन रावलपिंडी में मुसलमान ड्राइवरों के जिम्मे यह काम था। आगे चलकर फैशनेबल तथा रेडीमेड कपड़ों का व्यापार पंजाब में जोर पकड़ गया। "सभै घट राम बोले" में दुर्गा के तीनों बेटे कपड़ों की दुकान करते हैं। बड़ा बेटा अमृतसर में रेडीमेड कपड़ों की थोक दुकान चलाता है तो छोटे दोनों बेटे जालंधर में इसी पेशे के द्वारा रोजी-रोटी कमाते हैं।[2] छोटे-मोटे उद्योग धंधों तथा विभिन्न व्यवसायों में पंजाब के लोग लगे रहते हैं। सभी लोग कुछ न कुछ काम करके ही रोटी हासिल करना चाहते हैं। कर्मठता वहाँ है पर साथ ही येन-केन प्रकारेण भौतिक वस्तुओं को हासिल करने के लिये होड़ भी दिखायी पड़ती है। इस आपाधापी में अगर कभी मानवीय जीवन-मूल्य हाथ से निकलने भी लगें तो क्या आश्चर्य ?

पंजाब के निवासी अपनी धरती से दूर जाकर भी जीविकोपार्जन करने से कभी नहीं हिचके। अधिक कमाई और तरक्की की उम्मीद में यहां के लोग पंजाब से बाहर यहाँ तक कि विदेशों में भी जाते रहे हैं। "सभै घट राम बोले" में जालंधर की निवासी कृष्णादेवी के दो बेटों में से एक कलकत्ता में किसी फर्म में नौकरी करता है तो दूसरा कानपुर में अपना छोटा-मोटा कारोबार देखता है।[3]

---

1. तमस - पृ. 91-92
2. सभै घट राम बोले, - पृ. 23
3. वही - पृ. 33

एक प्रदेश के लोगों का दूसरे प्रदेशों और नगरों में जा कर रहना कई कारणों से हो सकता है और ऐसे पंजाबी पात्र अनेक हिन्दी उपन्यासों में बहुसंख्या में उपलब्ध होते हैं ।[1]

महेन्द्र भल्ला के उपन्यासों " दूसरी तरफ " और उड़ने से पेश्तर " में देश से बाहर रहने वाले पंजाबियों के जीवन और उनकी कठिनाइयों का चित्रण किया गया है । मोहन राकेश के " अंधेरे बन्द कमरे " में हरबंस और नीलिमा यहाँ का अच्छा खासा जीवन छोड़कर समृद्ध जीवन की मृगतृष्णा के पीछे विदेश की खाक छानते और परेशान होते हैं । " जिन्दगीनामा " में गज्जनसिंह और दर्शन सिंह दोनों भाई व्यापार करने पहले तो मुलतान जाते हैं लेकिन बाद में विदेश (कनाडा) पहुँच जाते हैं । उनके विषय में गाँव वाले बातें करते हैं कि, " उन्हें यहाँ क्या कोई कमी थी । पर देखो खट्टने-कमाने पहुँचे भी तो विलायत के विलायत । "[2] "शाहों की बहन वजीरो का घरवाला अफ्रीका पहुँचा हुआ है ।"[3] " लोगों की धारणा है कि " बन्दा गोला बनके कमाये और राजा बन के खाये ।"[4] यह है जीवन के प्रति पंजाब की खाँटी भौतिकवादी मानसिकता । इसलिए भी पंजाबी कौम ने भारत के दूसरे क्षेत्रों की तुलना में अधिक भौतिक समृद्धि हासिल की है । मेहनत के साथ भोगवादी दृष्टिकोण ने इस कौम की नैतिकता को अपने अनुकूल आकार भी प्रदान किया है ।

---

1. उदाहरण के लिये महीपसिंह का उपन्यास "यह भी नहीं", स्वदेश दीपक के "57 स्क्वैड्रन", "मायापोत" आदि अनेक रचनायें देखी जा सकती हैं ।
2. जिन्दगीनामा – पृ॰ 310
3. – वही – पृ॰ 312
4. – वही – पृ॰ 311

व्यक्ति-स्थान संबंधी पंजाबी नाम :-

पंजाब के निवासियों के नामों पर गौर करते ही तुरंत एक तथ्य उभर कर आता है कि वहाँ अधिकतर नाम ऐसे होते हैं जो स्त्री तथा पुरूष दोनों के लिये प्रयोग किये जाते हैं । सिर्फ इन नामों के पीछे " कौर " (या " देवी ") तथा " सिंह " जोड़ कर स्त्रियों तथा पुरूषों के लिये प्रयोग कर लिया जाता है । " झूठा-सच " के नायक पुरी की बहन तारा उपन्यास की महत्वपूर्ण पात्र है । उपन्यास में एक जगह एक बालक के नामकरण संस्कार का प्रसंग आता है जिसमें उसका नाम तारासिंह रखा जाता है । इस रोचक संयोग पर कटाक्ष करते हुए असद तारा से कहता है - " भुजंगी तो तुम्हारा भाई हो गया । "[1] मेलादेवी - मेलासिंह करतार कौर - करतारसिंह, हरनामकौर-हरनामसिंह जैसे हजारों नाम स्त्री-पुरूषों में समान रुप से मिलते हैं । ऐसा क्यों है कहना मुश्किल है । शायद पंजाबी समाज में प्राचीनकाल से ही चली आ रही स्त्री-पुरूष की समानता का भाव इसके पीछे रहा है ।

हर समाज में और हर काल में लोगों के कुछ नाम तो निरर्थक अथवा अति विचित्रता लिये हुए भी होते हैं । पंजाब भी इसका अपवाद नहीं है । यहाँ भी निरर्थक शब्द-नाम कम नहीं, जो अजीबो-गरीब और तुच्छता का सूचक होते हैं, जैसे पिग्लू, गिग्लू, भड़ोली [2] आदि । " झूठा-सच " में " त " अक्षर से नाम निकालने पर जो नाम सुझाए जाते हैं, वे हैं - तख्तसिंह, तोपसिंह, तोतासिंह [3] आदि । कई बार मनोरंजन के हलके मूड में ऐसे नाम भी रख लिये जाते हैं ।

---

1. झूठा-सच - 1 पृ. 54.
2. बांधो न नाव इस ठांव - 2, पृ. 41.
3. झूठा - सच - 1, पृ. 54.

कई व्यक्तियों को उनकी शारीरिक बनावट, किसी आदत या अन्य किसी विशेषता को लक्ष्य कर हिकारत अथवा प्यार से एक अतिरिक्त नाम भी दे दिया जाता है। कई बार तो ये अतिरिक्त नाम ही इतने प्रचलित हो जाते हैं कि असली नाम को लोग भूल जाते हैं। "शरद ऋतु" में मास्टर फ़कीरुद्दीन को लिंगे मुरगे की उपाधि मिली तो दूसरी ओर "सनकी चाचा" का यह उपनाम इतना चल निकला कि उनका असली नाम किसी को याद नहीं रहा।[1] घरेलू नौकरानी हशमत सनातन धर्मी पंडित कृष्णानंद को बाज कहती है।[2] "दो अकालगढ़" में हॉस्टल में सब से कमजोर तथा दुबले लड़के को बकरीसिंह नाम दिया गया। "एक नन्हीं किन्दील" में बेदर्दी से पीटने वाले मास्टर को लड़के भूतना[3] कहकर बुलाते हैं। इस प्रकार मजाक तथा मनोरंजन के लिये ऐसे नाम दिये जाते हैं तो कई बार दिल की भड़ास निकालने के लिये भी इस तरह के नाम प्रदान किये जाते हैं। बड़े नामों को छोटा करके बोलने की परिपाटी पंजाब में आम है। साथ ही मूल नामों अथवा उपाधि नामों को मुख-सुख (उच्चारण की सुविधा) के लिये बिगाड़ कर बोलने का खूब चलन है। उपन्यासों में प्यार से गाली भरे सम्बोधन, हार्दिकता, आत्मीयता और निश्छलता आदि के हजारों उदाहरण मिलते हैं।

व्यक्तियों के नामों की तरह ही यहाँ के गाँव, कस्बों तथा शहरों के नाम भी अलग से पहचाने जाते हैं। जैसे डेरा जट्ट, डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माईल खाँ, हरिपुर, शेखपुर आदि। ये नाम इन गाँवों को बसाने वाले व्यक्ति-विशेष या जाति विशेष के नाम पर रखे गये होंगे। इनके अतिरिक्त स्यालकोट, लायलपुर, मुलतान, वजीराबाद, पटियाला, लाहौर, रावलपिंडी, जालंधर, लुधियाना, पीर का ठट्टा आदि नाम अपने में ठेठ पंजाबीपन लिये हैं।

---

1. शरद ऋतु - पृ. 29 - 30.
2. शरद ऋतु - पृ. 27.
3. एक नन्हीं किन्दील - पृ. 224.

घर - मकान :-

पंजाब के गाँवों में मकानों की बनावट सीधी-सादी ही होती थी। फैशनेबल या सुन्दर मकानों की अपेक्षा आवश्यकता और उपयोगिता को ध्यान में रख कर परम्परागत मकान बनाये जाते थे क्योंकि यहाँ का जीवन सीधा-सादा, मोटा-सोटा खाने पहनने से ही गुजर जाता था। कोरे फैशन वाली शौकीन मिजाजी यहाँ के निवासियों में नहीं मिलती। कड़ा परिश्रम और पुष्ट खुराक और सीधी-सादी जिन्दगी। इसीलिये यहाँ गाँवों में घरों के निर्माण में सौन्दर्य को नहीं, आवश्यकता को ध्यान में रखा जाता था। फलस्वरूप गाँव के सारे मकानों की बनावट लगभग एक जैसी ही होती थी। हैसियत के अनुसार अवश्य मकानों का क्षेत्रफल बढ़ता था या फिर मकान कच्चा या पक्का होता था। "दो अकालगढ़" में गाँवों में मिलने वाले कच्चे-पक्के मकानों का विस्तार से वर्णन किया गया है। बलवन्तसिंह बताते हैं - "अब भी उसकी दीवारें मिट्टी की कच्ची ईंटों से बनी हुई थीं। कहीं-कहीं तो कच्ची ईंटों का भी इस्तेमाल नहीं किया गया था, सिर्फ पानी में गुंधी हुई मिट्टी को ही थोप-थाप कर दीवारें खड़ी कर दी गई थीं .... यहाँ किसी मकान की एक दो दीवारें पक्की ईंटों की बनी दिखायी देती थीं। बाज मकानों की ड्योढ़ियों के चबूतरे पक्के थे और चबूतरे के दोनों ओर एक-एक कुर्सी बनी हुई थी। पलस्तर का वहीं नाम तक न था। सिर्फ पक्की ईंटें अपनी झलक दिखा रही थीं।"[1] इस प्रकार उपन्यासकार ने उच्चा अकालगढ़ तथा नीवा अकालगढ़ के माध्यम से पंजाब के गाँवों के मकानों का बहुत बढ़िया खाका खींचा है।

गाँवों में मकान से लगा तबेला होता था जहां घर का फालतू तथा टूटा-फूटा सामान रखा जाता था। - चक्पीरां का जस्सा " में जस्सू की उसके चाचा बागड़सिंह से पहली मुलाकात तबेले में ही होती है। - " यह तबेले का कमरा था

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 50.

लगभग बीस कदम चौड़ा और पैंतालिस कदम लम्बा । कमरे का एक कोना तो कई प्रकार की वस्तुओं से अटा हुआ था । "[1] तबेले के पीछे की ओर रिहाइशी मकान बना होता था – " तबेले में से निकलकर भजनों जस्सू के कन्धे पर हाथ रखे पिछवाड़े-वाले भाग से मकान की ओर बढ़ी । मकान का स्तर इतना ऊँचा था कि वहां तक पहुँचने के लिये मिट्टी की सीढ़ियाँ बना दी गई थीं । नौ-दस कदम की सीढ़ी चढ़कर एक छोटा सा दरवाजा था जिसमें से झुककर गुजरना पड़ता था । "[2] सीढ़ियां चढ़ने के बाद आँगन में प्रवेश होता था, जिसके एक कोने में तंदूर तथा बिना छत वाली रसोई रहती थी, जिसका प्रयोग प्राय: गर्मियों में ही होता था । इस रसोई के एक आँगन में धरती खोदकर अँगीठी बनाई जाती थी, जिसमें उपलों की मन्दी-मन्दी आँच पर दूध से भरी चाटी रखी रहती थी । धीमी-धीमी आँच पर दूध पक कर गाढ़ा, भूरा और मलाईयुक्त हो जाता था ।[3] आँगन के बाद कमरे बने होते थे जिन्हें पसार कहा जाता था । कमरों से अन्दर जा कर भी कमरे होते थे । ये कमरे बक्से तथा कीमती चीजें रखने के साथ-साथ घर के सबसे प्राईवेट कमरे होते थे । इनमें रोशनी की व्यवस्था छत पर सुराख बना कर की जाती थी जिससे यहाँ रोशनी नाममात्र को ही रहती थी । " चकपीरां का जस्सा " में बग्गासिंह इसी अन्दरवाले पसार में एक भारी सन्दूक के नीचे अपना रूपैया-पैसा छिपा कर रखता था ।[4] इन घरों को साफ सुथरा रखने के लिये गोबर-मिट्टी तथा तूड़ी से लीपा जाता था ।[5] आँगन या सेहन की दीवारें नीची ही होती थीं ज्यादा ऊँची नहीं इसीलिये गलियों में गाँव के सब लोग घोड़ों या डाचियों से उतर कर पैदल ही चलते थे ।[6] मकान की छत पर

---

1. चकपीरां का जस्सा – पृ. 23.
2. – वही – पृ. 30.
3. – वही – पृ. 31.
4. – वही – पृ. 35.
5. – वही – पृ. 66.
6. दो अकालगढ़ – पृ. 333.

जाने के लिये सीढ़ियां भी बनी होती थीं । छत पर ममटी में ईंधन की लकड़ियां तथा अन्य छोटा-मोटा सामान रखा जाता था ।[1] पंजाब में मकान एक दूसरे से जुड़े होते थे, छतों को छोटी-छोटी मुंडेरों से ही सीमा में बांधा जाता था । इन मुंडेरों को फलांग कर औरतें तथा बच्चे एक घर से दूसरे घर पहुंच जाते थे ।[2] घर का सेहन तथा दरवाजा छोटा होने की स्थिति में पशु गांव के बाहर वाले तबेले में बांधे जाते थे । " दो अकालगढ़ " में दीदारसिंह अमरो से डाची को बाहर वाले तबेले में बांधने के लिये कहता है ।[3] ऊंचे और अमीर घरों में घर के बाहर वाले हिस्से में मेहमानों की खातिरदारी करने तथा उन्हें ठहराने के लिये बैठक भी बनी होती थी ।[4]

शहरों के मकानों की बनावट गांवों से कुछ अलग ही किस्म की होती है । शहरों में मकान पक्के होने के बावजूद उनमें वह खुलापन नहीं होता जो गांवों में मिलता है । " झूठा-सच " में यशपाल ने इन मकानों का खाका इस प्रकार खींचा है - " मकान उसी ढंग का था जैसे लाहौर की गलियों में पुराने ढंग के मकान थे । ड्योढ़ी के साथ बैठक के पीछे आंगन को घेरे कोठड़ियां, गुसलखाना । आंगन से ऊपर की मंजिल के लिये जीना । आंगन पर लोहे का जाल । ऊपर की मंजिल में गली और बड़ा कमरा । जाल को घेरे दो और कमरे और रसोई । "[5]
" झूठा-सच " में मास्टर रामलुभाया दो कमरों के छोटे से मकान में रहते हैं,

---

1. रात, चोर और चांद - पृ. 167
2. जिन्दगीनामा - पृ. 30, 185
3. दो अकालगढ़ - पृ. 66.
4. - वही - पृ. 174 - 524
5. झूठा - सच - 1 - पृ. 357.

जिसमें आंगन भी छोटा ही है। कमरों की घुटन से खुली छत ही नजात दिलाती है। छत पर एक बरसाती भी बनी है। मध्यवर्गीय मुहल्लों में मकान अलग-अलग न हो कर सीढ़ियों से जुड़े रहते थे। सीढ़ियाँ चढ़ने पर एक तरफ मास्टर जी का मकान है तो दूसरी तरफ रतन का मकान है। [1] गलियों में बने इन मकानों के सामने चबूतरे भी बने रहते थे जिनपर खाली समय में बैठकर स्त्रियाँ गप्पें मारती हुई छोटे-मोटे हाथ के काम निबटाती जाती थीं। [2] किन्तु आधुनिक उच्च वर्गीय रईसों के मकान आधुनिक ढंग के, सब सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण, होते हैं। इन लोगों की कॉलोनियाँ भी शहर से हटकर खुली जगह में अलग से बसी होती हैं। लाहौर की ग्वालमंडी और मॉडल-टाउन ऐसी ही जगहें थीं।

खान-पान :-

पंजाब मेहनतकशों तथा बहादुर लोगों का समृद्ध क्षेत्र रहा है। यहाँ के लोग अच्छी और पौष्टिक खुराक खाते हैं और डटकर मेहनत करते हैं। दूध, मक्खन, दही, लस्सी आदि यहां के निवासियों के भोजन के अनिवार्य अंग हैं। यहां दूध, दही की बहुतायत होने से इन वस्तुओं को जुटाना भी कोई बड़ी समस्या नहीं है। विशेषकर गांवों में तो हर घर में गायें भैंसें पाली जाती हैं और स्त्रियाँ सुबह तारों की छांव में ही दही बिलोने का कार्य शुरू कर देती हैं। [3] तत्पश्चात वे छाहवेला अर्थात् सुबह का नाश्ता तैयार कर खेतों में काम कर रहे पुरूषों को पहुँचाती हैं - " औरतों में से कुछ तो खेतों पर गए अपने मर्दों के लिये " छाहवेला " यानी सुबह का नाश्ता, पराठे, आचार, मक्खन, लस्सी की

---

1. झूठा - सच - 1 - पृ. 15.
2. - वही - पृ. 57.
3. जिन्दगीनामा - पृ. 40.

मटकियाँ सिर पर रख कर अपनी मंजिल की ओर चल भी दी थीं । "[1] "चकपीरां का जस्सा " में भजनों घर आये मेहमानों को इस प्रकार नाश्ता करवाती है - " हर थाल में उसने घी से तर दो-दो पराठे रख दिये और गुड़ डाल दिया । काँसे के बने हुए धन्ने (कटोरे) मट्ठे से भर दिये । [2] बाहर से आने पर हर किसी को लस्सी और मक्खन पेश किया जाना तो आम बात है । " रावी पार " में जब बागड़सिंह बूड़सिंह से मिलने जाता है तो वह उससे पूछता है - " अब यह बताओं कि कच्ची लस्सी पियोगे या पक्की । " [3] इसी प्रकार काबलासिंह की घोड़ी को वापस लाने वाले सुजान सिंह को भी सबसे पहले कुएं की टिण्डों में भरे ठण्डे पानी में गाढ़ा मठ्ठा मिला कर तैयार की गई लस्सी पेश की जाती है । [4] " रात, चोर और चांद " में काहनसिंह अपने मेहमानों को बासी रोटी पर मक्खन के साथ हाथ-हाथ भर लम्बे झाग से भरे गिलास पेश करता है । [5] खूब कढ़ा हुआ मलाईयुक्त दूध हर समय हर घर में तैयार रहता है । वक्त-बेवक्त भूख लगने पर या किसी मेहमान के आने पर उसमें खाँड मिला कर पेश किया जाता है । [6] दूध, दही, मक्खन के साथ तन्दूर पर सिकी रोटियाँ और खेतों से ताजी तोड़ी गई सब्जियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं । " काले - कोस " में विरसासिंह के अचानक पहुँचने पर सिराज उसके लिये खेत से गोंगलू (शलजम) तोड़ कर लाता है और गोंगलू की सब्जी के साथ उसे रोटी खिलाई जाती है । [7] " कभी न छोड़े खेत " में बचिन्तसिंह के खेत से गांव की स्त्रियाँ

1· दो अकालगढ़ - पृ· 51·
2· चकपीरां का जस्सा - पृ· 31·
3· रावी पार - पृ· 54·
4· - वही - पृ· 157·
5· रात, चोर और चांद - पृ· 315·
6· दो अकालगढ़ - पृ· 238·
7· काले-कोस - पृ· 170

साग तोड़ कर ले जाती हैं । [1] यहां मांस खाने का शौक भी बहुत है । यह शौक ज्यादातर पुरुष ही रखते हैं और उसे पकाते भी तबेले में हैं [2] " रात, चोर और चांद " में चिन्तों और प्यारों जैसी औरतें जो डाके तक में पुरुषों का साथ देती हैं, घर में मांस पकाती हैं और खाती भी हैं । [3]

इस प्रकार पंजाब के लोग अपने डील-डौल के अनुसार पौष्टिक खुराक खाते हैं और बाकी फिजूलखर्ची तथा शौकीनी से भरसक दूर रहते हैं । अलबत्ता शहरों में लस्सी, दूध का स्थान शरबत, फलों के रस तथा ठण्डे पेय लेने लगे । इसका एक कारण शहरों में गाय, भैंस पालने की सुविधा का नहीं होना था । " झूठा-सच " में कनक को भूख नहीं लगने पर उसे फालसे का शरबत पिलाया जाता है । [4] " घास गोदाम " में दुनिया दुकानदार अपनी दुकान पर संतरे आदि ठंडे पेय की बोतलें रखता है तथा मुखिया के घर मेहमानों के आने पर पेश करता है । खेद तब होता है जब मेहमानों द्वारा घाटी की लस्सी की मांग की जाती है किन्तु मुखिया के घर में वैसी लस्सी उपलब्ध नहीं होती । [5] चाय का चलन भी धीरे-धीरे पंजाब में जोर पकड़ने लगा है ।

खाने की तरह यहां की मिठाइयां भी सीधी-सादी किन्तु स्वादिष्ट होती हैं । रंग-बिरंगी बूंदी के बड़े-बड़े लड्डू, मैदे की चकोर मिठाई तथा चौड़ी और खूब मोटी-मोटी फीकी मठरियां [6] अक्सर बेटी को ससुराल भेजते वक्त या फिर किसी के हाथ उसकी ससुराल भेजी जाती हैं । " चक्पीरां का जस्सा " में रामप्यारी छोटे जस्सू को भुने हुए गेहूं के मंरुंडे, खांड का बना हुआ गट्टा और

1· कभी न छोड़े खेत - पृ· 204·

2· चक्पीरां का जस्सा - पृ· 100·

3· रात, चोर और चांद - पृ· 184·

4· झूठा-सच - 1 - पृ· 245·

5· घासगोदाम - पृ· 117·

6· दो अकालगढ़ - पृ· 106·

चीनी की चकौर मिठाई के टुकड़े खाने के लिये देती है । [1] विवाह के घर से उसे बेसन की मोटी सेवइयों पर खाँड चढ़ाकर बनाई गई नुगदी मिलती है । [2] मेले-ठेलों में या फिर मन आने पर गाँव के हलवाई भी बड़े-बड़े जलेब (जलेबी) बनाते हैं और गाँव के लोग बड़े शौक से इन्हें खाते हैं । "दो अकालगढ़" में बख्शीसिंह मेले में हलवाई की दुकान से जलेब और कचौड़ी ले कर खाता है । [3] "रात, चोर और चाँद" में गाँव का हलवाई अपनी सुविधा और मर्जी से जलेब बनाता है । [4] "जिन्दगीनामा" में जब शाह के बेटे की पहली दिवाली आती है तो इस खुशी के अवसर पर गाँव के लोग शाह से अपनी-अपनी पसंद की मिठाई बनवाने की फरमाइश करते हैं । गण्डासिंह लूणके के लड्डू और खांड गलेफे मट्ठे की बात करते हैं तो मौलादाद जी को मक्खन बड़े से प्रेम है । चौधरी फतेहअली को अदरसे की गोलियाँ पसंद हैं तो मुंशी इल्मदीन को शीरनी की याद आती है । रावलपिण्डी की मशहूर मिठाई छेनामुर्गी की यहां कोई कदर नहीं, उनके अनुसार यह मिजाजी शहरियों की मिठाई है । उनकी कसौटी पर तो वजनी कलाकन्द या बड़े-बड़े कतलम्में खरे उतरते हैं । [5]

पहनावा :-

पंजाब के निवासियों की परंपरागत पोशाक में पुरुष लट्ठे की सलवार या तहमद, कमीज, सिर पर पगड़ी या साफा पहनते हैं । कमीज पर समयानुसार वास्केट भी पहन लेते हैं । बलवन्तसिंह ने प्रतिष्ठित देहातियों की वेशभूषा का वर्णन "काले-कोस" में कुछ इस प्रकार किया है - "सिर पर कलफ लगी हुई पगड़ी,

---

1. चकपीरों का जस्सा - पृ. 71.
2. - वही - पृ. 77.
3. दो अकालगढ़ - पृ. 32.
4. रात, चोर और चाँद - पृ. 219-220
5. जिन्दगीनामा - पृ. 165 - 166.

जामुनी रंग की लुंगी, हरे रंग की धारियोंवाला कुरता, बगल और कंधे के चारों ओर लपेटा हुआ फीके लाल रंग का अंगोछा, पांव में कडुए तेल से चुपड़ा हुआ मोटे चमड़े का जूता और मोटे बेंत का मुड़े हुए हत्थेवाला खूंटा । "[1] "दो अकाल - गढ़ " में सरदार गुलजारासिंह ने, जो गांव के धनी व्यक्तियों में से हैं, " दो घोड़े की बोस्की का कुर्ता और चाबी मार्का लट्ठे की गुब्बारनुमा शलवार पहन रखी थी और उसका रेशमी इजारबन्द फैशन के अनुसार बाहर लटक रहा था । "[2] गज्जनसिंह जब अपनी पत्नी का गौना कराने ससुराल जाता है तो उसके स्वागत में लड़की के माँ-बाप इस प्रकार सज-धज कर निकलते हैं - " दोनों ने चाबी मार्का लट्टे की दूध जैसी सफेद, कलफ लगी, फूली-फूली सलवारें पहन रखी थीं । उनके लाल और हरे रंग के रेशमी इजारबन्द घुटने तक लटके हुए थे । सास ने गोटे वाला गहरे जामुनी रंग का शनील का कुर्ता पहन रखा था और ससुर की बोस्की की कमीज़ पर सफेद सीप के बटनों वाली काली वास्केट बहार दिखा रही थी । ससुर के सिर पर " पेशावरी लुंगी " बंधी थी, जिसका ऊपर का शमला नीचे को लटका हुआ था । "[3] देहाती औरतें सलवार और तहबंद दोनों का प्रयोग करती हैं । " रात, चोर और चाँद " में जब गांव की लड़की रक्खी अपनी सहेली सरनों से मिलने आती है तो गहरे नीले रंग का तहबंद और लाल छींट का कुर्ता पहने होती है ।[4] " शरद ऋतु " में नन्हें के घर के सभी सदस्य शलवार पहना करते थे । स्त्री क्या, पुरुष क्या । "[5] किन्तु तत्कालीन पंजाबी समाज में शायद औरतें तहबन्द अधिक पहनती थीं, इसीलिये दौरे पर आये मून साहब तहसीलदारन को शलवार-कमीज पहने देख कर आश्चर्य प्रकट करते हैं - " तुम्हारी वावूटी (पत्नी)

---

1. काले-कोस - पृ. 159.
2. दो अकालगढ़ - पृ. 67.
3. - वही - पृ. 154 - 155.
4. " रात, चोर और चाँद " - पृ. 170.
5. शरद ऋतु - पृ. 39.

तहमद नहीं बाँधती ? "[1] "झूठा-सच " में बाबू रामज्वाया पैसे वाले आदमी हैं और अच्छे कपड़े पहनने के शौकीन भी । उनकी दूसरी पत्नी (पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है) भी इस मामले में उनसे कहीं कम नहीं । अत: बाबू रामज्वाया " सिर पर महीन मलमल का कलफ लगा साफा, खूब सपेद कलफ लगी कालरदार कमीज और पायजामा । लाल, रेशमी ज़रीदार कमरबन्द के छोर कमीज के नीचे से तनिक झांकते रहते थे । वे ऋतु के अनुसार कालरदार सूती या ऊनी कोट पहनते थे । " उनकी पत्नी " शीलो की माँ पतंग के कागज की तरह महीन छब्बी की मलमल के कलफ से ऐंठे हुए, झाग की तरह श्वेत दो दुपट्टे जोड़कर ओढ़ती थी । कलाइयों पर सोने की चूड़ियां और कड़े बदलते रहते थे । "[2] फल बेचने वाले राई की वेशभूषा का सजीव चित्रण करते हुए यशपाल बताते हैं -- " फल बेचनेवाले के उस्तरे से मुडे सिर पर, भारी टोकरी को संभालने के लिये लम्बी पगड़ी गेंडुली की तरह गोल-गोल लिपटी हुई रखी थी । मूंछे मुख के भीतर न जायें इसलिये उन्हें होठों के साथ-साथ कतर दिया गया था परन्तु होठों के दोनों कोनो पर मूँछें चिड़िया के परों की तरह लटकी हुई थीं । दाढ़ी पर मशीन फिरी हुई थी और दाढ़ी की कोरें उस्तरे से संवारी हुई थीं । भारी, चौड़े कन्धों से लटका नकली रेशम का ढीला कुरता और कमर पर बंधा एड़ी से नीचे धरती पर रगड़ता, नीले रंग का तहमद उसके मुसलमान राई (काछी) होने की निर्विवाद पहचान थी । "[3] जगदीशचन्द्र ने विभाजन के समय पश्चिमी पंजाब के विभिन्न प्रान्तों से आए लोगों की वेशभूषा का वर्णन इस प्रकार किया है - " सरहदी सूबे और आस-पास से आये वे लोग मुसद्दी पगड़ियां, शलवारें और कमीजें पहने हुए थे । पोठोहार रावलपिण्डी के इलाके से आये लोगों की पगड़ियों के तुर्रे पंख फैलाये मोर की तरह खड़े थे । "[4]

---

1. शरद ऋतु - पृ० 36०
2. झूठा-सच । - पृ० 17०
3. झूठा-सच - पृ० 58०
4. घास-गोदाम - पृ० 175०

"निहंग सिंहों की वेश-भूषा सबसे अलग होती थी जो दूर से ही पहचानी जाती थी। इन सिंहों की पीठ पर ढाल, कमर में तलवार और खंडा, हाथ में भाला, सिर की लम्बूतरी पगड़ी में लोहे के चक्र फंसे होते थे।"[1]

पुराने समय में भी पंजाब के शहरों में आधुनिक तथा फैशन के अनुसार पहनावा प्रचलित था। यह अलग बात है कि उच्च वर्ग की लड़कियां या स्त्रियां ही ऐसे वस्त्रों का प्रयोग करती थीं। लाहौर की ग्वालमंडी या माॅडल टाउन जैसी काॅलोनियों में रहने वाली तथा समाज में उच्च स्थान रखने वाले आदमियों के घरों की स्त्रियां ही शलवार-कमीज के स्थान पर "साड़ी" पहन सकती थीं, जो उस समय अत्याधुनिक फैशन माना जाता था।[2] कमर पर फिट जम्पर तथा खुले पायचों की सलवार पर महीन दुपट्टे का प्रयोग काॅलेज में पढ़ने वाली अमीर लोगों की लड़कियाँ करती थीं। "मनुष्य के रूप" में यशपाल तीन पीढ़ियों के पहनावे में आने वाले अंतर को मनोरमा, उसकी माँ, तथा उसकी भाभी के माध्यम से दर्शाते हैं - "माँ जी काले रेशम का भारी लहंगा पहने, सिर पर मलमल के दो दुपट्टे जोड़ कर ओढ़े और आधे बालिश्त का घूंघट खींचे पांव में सली पर पहने चलतीं। ज्वालासहाय जी के बैरिस्टर पुत्र की पत्नी रेशमी साड़ी का आंचल सिर पर रखती परन्तु बिना घूंघट के और नीची एड़ी का जूता पहनती। लड़की मनोरमा नंगे सिर, गर्दन पर भारी जूड़ा सम्भाले, ढीली पतलून पहने और कंधे से बटुआ लटकाये दिखाई देती।"[3] पुरूषों में भी पतलून और कमीज का चलन तेजी से जोर पकड़ रहा था। शहरों की देखा देखी देहाती लड़के भी इनका प्रयोग करने लगे।

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 55.
2. झूठा सच - 1 - पृ. 37
3. मनुष्य के रूप - पृ. 83.

आभूषण :-

पंजाब आर्थिक समृद्धि, अलमस्त जीवन और इश्क-मुहब्बत का प्रदेश होने के कारण यहाँ आभूषणों का शौक और चलन होना स्वाभाविक ही है । स्त्रियाँ और लड़कियाँ तो तरह-तरह के आभूषणों से श्रृंगार करती हैं किन्तु शौकीन मिजाज पुरुष तथा देहाती नवयुवक भी गले में कंठे तथा कानों में सोने की मुकरियां आदि धारण किये रहते हैं । दुल्हन शादी के समय पाँव में पायल, अंगूठे पर आरसी, अंगुलियों में नन्हीं-नन्हीं घंटियों वाली अंगूठियाँ, कलाइयों में सोने के गोखरू और हाथीदाँत की लाल चूड़ियाँ, नाक में नथ, कानों में लम्बे-लम्बे झुमके, कनपटियों पर तवी-तड़ियाँ, सिर पर सोने का बड़ा सा चौंक[1] धारण करती हैं । शादी, त्योहारों और उत्सवों के दौरान महिलाओं का अपने सारे आभूषणों से सज्जित होना स्वाभाविक ही है । आम दिनों में भी थोड़े-बहुत आभूषण कानों, गले, पाँवों आदि में वे धारण किये रहती हैं ।

हथियार :-

यहाँ के लोग (विशेष कर देहातों में) धाकड़, अक्खड़ और कुछ ज्यादा ही स्वाभिमानी होने के कारण बात-बात पर लड़ पड़ते हैं और पीढ़ियों तक उनकी दुश्मनी कायम रहती है । मौका मिलते ही बदला चुका लिया जाता है । ऐसे लोगों के हथियार भी उनके पास हर समय तैयार रहते हैं । ये लोग लाठियों को कई दिन तक सरसों के तेल में भिगो कर उनमें एक-एक बालिश्त पर तांबे के तार कस देते हैं । लाठी के दोनों सिरों पर पीतल की टोपी चढ़ा दी जाती है । लाठी की लम्बाई लाठी वाले आदमी के कान तक पहुँचनी चाहिये ।[2] छव्वी और सफाजंग

1· दो अकालगढ़ - पृ· 158, 192 एवं रात, चोर और चाँद - पृ· 362·

2· दो अकालगढ़ - पृ· 183·

यहां के खतरनाक हथियारों में आते हैं। छव्वी को लाठी पर लगा कर दुश्मन के पेट में घोंप कर लाठी झटके से पीछे खींच ली जाती है जिससे उसकी आँते ही बाहर निकल पड़ती हैं। सफाजंग का वार सिर या गर्दन पर किया जाता है।[1] " कभी न छोड़ें खेत " में लड़ाई में दोनों पक्ष किरपाण, बल्लम, गंडासी, कुल्हाड़ी तथा फावड़ों का प्रयोग करते हैं।[2] इनके अतिरिक्त बन्दूकनुमा दुनाली पिस्तौल जिस में बारह बोर के कारतूस भरे जाते हैं[3] तथा राइफलों का प्रयोग भी यहां के लोग डाकुओं को भगाने में या फिर स्वयं डाका डालने में करते हैं।[4] सिक्खों के लिए तो किरपाण धारण करना उनकी धार्मिकता का अंग ही है।

खेल :-

वैसे आजकल तो पंजाब के निवासी हर प्रकार के खेल खेलते हैं किन्तु पंजाब के कुछ खेल ऐसे भी हैं जो पुराने समय से चले आ रहे हैं और जिन्हें यहां के निवासी बड़े शौक से खेलते हैं। ऐसे खेलों में महारथ हासिल करना पूरे गाँव के लिये गौरव की बात मानी जाती है। मेलों-ठेलों में इन खेलों के मुकाबले होते हैं और खेलनेवाले जीत के लिये जी-जान लड़ा देते हैं। इन खेलों में छोटी कबड्डी, कुश्ती, सौंचो, मुगदर हिलाना, मुगली घुमाना, सोहागा उठाना[5] लम्बी दौड़ और ऊँची छलांग लगाना[6] आदि शामिल हैं। रोजमर्रे की जिन्दगी में गाँव की बगीचो में (जो क्लबघर का सा काम देती है) लोग चौसर और शतरंज भी खेलते हैं। बच्चे " बारां कटाल " तथा " डइडू कौड़ियाँ "

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 184.
2. कभी न छोड़े खेत - पृ. 10.
3. दो अकालगढ़ - पृ. 174.
4. रात, चोर और चाँद - पृ.
5. काले कोस, पृ. 19, 33, 36, 75.
6. दो अकालगढ़ - पृ. 353.

खेलते हैं। [1] खेलों में विशेष रुचि लेना यहां के निवासियों की विशेषता है, इसीलिये आज भी हॉकी, कबड्डी, कुश्ती, घुड़सवारी, तलवारबाजी जैसे खेलों में यहां के लोग आगे ही रहते हैं।

प्रेम जीवन :-

इश्क, प्यार, मुहब्बत की बातें तो पंजाब की फिजां में सदियों से ही घुली रही हैं। यहां की खुली हवा में सांस लेते अलमस्त बेपरवाह नौजवान तथा चंचल शोख नवयुवतियां, लाख समाजी पाबंदियों तथा रोक-टोक के होते हुए भी इस क्षेत्र में अपने-आप स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। " हीर-रांझा ", " सस्सी पुन्नू ", " शीरीं-फरहाद ", " सोहनी - महीवाल " आदि न जाने कितनी प्रेम-कथाएँ पंजाब की हवाओं में गूंजती रहती हैं, और शायद बहुत सी प्रेम-कथाएँ ऐसी भी होंगी जिनके बारे में किसी को कुछ पता नहीं। कहने की जरूरत नहीं कि यह सिलसिला अब भी बरकरार है।

अपने उपन्यासों में पंजाब का चित्रण करने वाले उपन्यासकारों की लेखनी साहसिक, नाटकीय तथा रोमांचकारी प्रेम-प्रसंगों से अछूती कैसे रह सकती थी। लगभग सभी उपन्यासों में प्रेम मुख्य कथावस्तु का अंग बन कर आता है और उपन्यासों के माध्यम से हमें प्रेम के अनेकानेक रूप और रंग मिलते हैं। बलवन्तसिंह के उपन्यास " दो अकालगढ़ " में नायक दीदारसिंह का उनके खानदानी दुश्मन गुलजारसिंह की लड़की रूपा से खतरों भरा इश्क बेधड़क चलता है। [2] दीदारसिंह का दोस्त नूरा अपने गांव की लड़की हस्सो पर जान देता है और वह भी उसे चाहती है।

---

1. रात, चोर और चाँद - पृ. 83.
2. दो अकालगढ़ - पृ. 80.

" रात, चोर और चाँद " में सरनकौर लैफ्टीनेंट पृथ्वीपालसिंह के प्रेम जाल में फँसती है । " चकपीराँ का जस्सा " में जस्सासिंह और दीपा की प्रेम-कथा चलती है । " काले-कोस " में बिगड़ा हुआ विरसासिंह गोविन्दी के प्यार के कारण सुधर जाता है । " रावी-पार " में सुलतान-फ़ातिमा तथा सुरजीत और सुजानसिंह का प्यार चलता है ।

कृष्णा सोबती के उपन्यास " जिन्दगीनामा " की फतेह शेरा से प्रेम-विवाह कर लेती है किन्तु उसकी छोटी बहन राबियाँ शाह जी से मूक प्रेम ही करती रहती है । शीरीं जेल से छूटे बरखुरदार को खाली बघियाड़ की उपाधि ही नहीं देती, अपना दिल भी दे बैठती है । योगेश कुमार के उपन्यास " शरद-ऋतु " में अनाथ युसुफ़ मौलवी साहब की साहबजादी जुबैदा खानम से इश्क करने की हिमाकत के दण्ड स्वरूप तहसीलदार साहब से कोड़े खाता है और जुबैदा खानम का निकाह एक अधेड़ व्यक्ति से कर दिया जाता है ।

प्रेम-प्रसंग केवल गाँवों में ही नहीं घटित होते, शहरों के पढ़े-लिखे युवाओं में भी प्रेम की अनेकों दास्तानें उपन्यासकारों ने पायी हैं । यशपाल के " झूठा-सच " में जयदेवपुरी-कनक, तारा-असद, शीलो-रतन, नरोत्तम-कंचन, नैयर-कांता, आदि प्रेमियों की अनेक जोड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं । " मनुष्य के रूप " की कथावस्तु तो ट्रक-ड्राईवर धनसिंह और पहाड़ी विधवा युवती सोमा की प्रेम कहानी के इर्द-गिर्द ही घूमती है । सेठ ज्वालाप्रसाद की सुपुत्री मनोरमा भी कामरेड भूषण को चाहती है । अश्क के कई उपन्यासों के प्रमुख पात्र चेतन का भी कई युवतियों से इश्क का चक्कर चलता है किन्तु शादी उसके पिता की पसन्द की लड़की चन्दा से ही होती है । " धरती धन न अपना " में काली और ज्ञानो एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं । गांव में जाति पांति के कारण इस प्यार का परिणाम अच्छा नहीं होता । ज्ञानो को उसकी माँ जहर दे देती है और

काली गाँव से भाग जाता है । दरअसल उपन्यासों में चित्रित प्रेम-प्रसंग पंजाबी समाज को ही प्रतिबिंबित करते हैं । प्रेम, दुस्साहस आदि पंजाबी समाज की अपनी पहचान बनकर उपन्यासों में आते हैं ।

नैतिकता :-

जहाँ निश्छल प्रेम के स्थान पर मात्र यौनाचार दिखाई पड़ता है वहां नैतिकता का प्रश्न उठता है । विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्धों को तथा विवाहोत्तर अनैतिक सम्बन्धों को समाज मान्यता नहीं देता । "शरद ऋतु" में तहसीलदारन और कृष्णानंद [1] तथा चम्पा और कृपाराम [2] के सम्बन्ध कुछ ऐसे ही हैं । "दो अकालगढ़" में "राजो की यारी" किसी मुसलमान से हो जाने पर वह अपने पति के खाने में कुछ मिला देती है जिससे उसका पति रात में ही मर जाता है । [3] "धरती धन न अपना" में चौधरियों का लड़का हरदेव चमारों की लड़की प्रीतो को धोखे से अपनी हवस का शिकार बनाता है । "झूठा-सच-2" की सीता विभाजन के बाद दिल्ली आ कर पैसे की चकाचौंध से अंधी हो कर दैहिक व्यापर कर गलत आचरण अपना लेती है । अगर तारा ने उसे नहीं संभाला होता तो इसमें सन्देह नहीं कि वह अपना जीवन ही बरबाद कर बैठती । "मय्यादास की माड़ी" में दीवान गोकुलदास खुलेआम एक रखैल घर ले आता है । इसी रखैल का बेटा धनपत आगे चलकर माड़ी पर अपना कब्जा जमा लेता है । "कड़ियाँ" का नायक महेन्द्र अपने ऑफिस में काम करने वाली सुषमा के चक्कर में पड़कर अपनी पत्नी प्रमिला को घर से निकाल देता है । बाद में सुषमा से भी सम्बन्ध विच्छेद कर वह ऊँची सोसाइटी की युवतियों से सम्बन्ध बनाना चाहता है। "रात, चोर और चाँद" में

---

1. शरद ऋतु - पृ. 28.
2. - वही - पृ. 126.
3. दो अकालगढ़ - पृ. 361.

एक अद्भुत प्रसंग है । पालीसिंह जब सरनो से विवाह करने में असफल रहता है तो एक दिन उसके घर जाकर उससे बलात्कार करता है । सरनो उसे धिक्कारते हुए घृणायुक्त स्वर में कहती है - " क्यों, मुंह काला कर चुके अपना ? ...... तुम प्रेम के योग्य नहीं, तुम केवल बलात्कार कर सकते हो । " [1] उपन्यासों में इस तरह के प्रेम-संबन्धी नैतिक-अनैतिक माने जाने वाले अनेक प्रसंग मिलते हैं ।

यह सच है कि ऐसे प्रेम-प्रसंग और अनैतिक रिश्ते प्राय: हर समाज और स्थान में मिल सकते हैं । ये घटनायें कहीं भी घट सकती हैं किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि पंजाब में इनकी संख्या कहीं ज्यादा होती है । इसका कारण यहां के लोगों में मिलने वाली स्वाभाविक निडरता, बेपरवाही, मस्त तबीयत और खतरों से खेलने की आदत है । साथ ही यहां की समृद्धि ने भी लोगों की विलास-प्रियता बढ़ायी है । आर्थिक चिंताओं से मुक्त यहां के लोग आगे बढ़ने के लिये कठिन परिश्रम करते हैं तो वासना की जिन्दगी को भी खतरों और उसकी पूरी रंगीनी के साथ जीते हैं ।

धर्म सम्प्रदाय :-

धर्म को अक्सर अंग्रेजी के religion शब्द के पर्याय के रूप में देखा जाता है जो उचित नहीं । वास्तव में " धर्म " अत्यन्त अर्थ-गर्भित शब्द है तथा इसकी हू-ब-हू प्रकृति की व्याख्या करना कठिन है । Religion शब्द की अर्थ-छायाएँ " धर्म " की पूरी गहराई और व्यापकता को छू भी नहीं पातीं । संस्कृत में धर्म के अनेक अर्थों में प्रयोग मिलते हैं । हिन्दी में भी स्वभाव या गुण (जैसे-आग का

---

1. रात, चोर और चाँद - पृ. 406.

धर्म जलाना है), कर्तव्य (छात्र का धर्म पढ़ना है, परोपकार सच्चा मानवीय धर्म है (आदि के अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है तथा सम्प्रदाय के अर्थ में भी, जैसे हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म आदि। विभिन्न मतवादों, सम्प्रदायों के सन्दर्भ में जब धर्म का रूढ़ एवं संकीर्ण प्रयोग होता है तो वह अंग्रेजी के religion पर्याय के करीब होता है। इस प्रकार के अर्थ-संदर्भ से युक्त " धर्म " की भी अनेकों परिभाषाएँ की जाती रही हैं। ऐसी ही एक परिभाषा के अनुसार - " किसी उच्चतर श्रेष्ठ और पवित्र शक्ति पर विश्वास करके उससे प्रार्थना, पूजा या आराधना के माध्यम से भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही धर्म है। "[1] धार्मिक सम्प्रदाय आस्तिक तथा नास्तिक दोनों प्रकार के होते हैं, इसे भी ध्यान में रखना जरूरी है।

संसार में धर्म का अस्तित्व कब से है यह कहना मुश्किल है। इतना तो तय है कि अति प्राचीन काल में जब से समाज और परिवार बना, तब से ही मनुष्य के सामाजिक जीवन का धर्म एक प्रभावकारी एवं महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है। वर्तमान काल में शायद ही कोई समाज ऐसा हो जहाँ कोई न कोई धर्म किसी न किसी रूप में विद्यमान नहीं हो। प्रत्येक जाति और समुदाय अपने-अपने धर्म का कमोबेश पालन करता है। पंजाब की तो संस्कृति ही विभिन्न जातियों, समुदायों और धर्मों के मेल से बनी है। कई धर्मों और विश्वासों को मानने वाले लोग सदियों से यहां एक साथ रहते आये हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई इन चार प्रमुख धर्मों के साथ-साथ यहां इनके भेदोपभेद भी मिलते हैं, जैसे हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सनातन धर्म, गुरुकुल समाज और आर्य समाज जैसे धार्मिक रूप एवं संस्थाएं भी यहां खूब फली-फूलीं। सिक्ख पन्थ, हिन्दू धर्म और इन धार्मिक संस्थाओं में बहुत अधिक तात्त्विक भेद नहीं था क्योंकि जहां सिक्ख पन्थ हिन्दू धर्म से निकला वहां आर्य समाज जैसी धार्मिक संस्थाएँ वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना और हिन्दुओं की भलाई को दृष्टि में रख कर बनायी गयी थीं। इस्लाम धर्म और उसके अनुयायियों

---

1. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य - पृ. 28.

की संस्कृति के प्रति भी यहां के मूल निवासियों में सम्मान का भाव था ।

पंजाब (तथा पूरे भारत) में हिन्दू धर्म के लोग बहुत हैं । यह सभी निर्विवाद रूप से मानते हैं कि हिन्दू धर्म अत्यधिक उदार और विस्तृत है । हिन्दू धर्मावलम्बी परिवार में पैदा होने भर से व्यक्ति हिन्दू हो जाता है, चाहे वह हिन्दू धर्म की मान्यताओं, आचारों और पद्धतियों में विश्वास नहीं भी करता हो। अत: आस्तिक हो या नास्तिक, एकेश्वरवादी हो अथवा बहुदेव - वादी, सगुणमार्गी मूर्तिपूजक हो या निर्गुणमार्गी-सभी के लिये यहां स्थान है । बहुदेववाद के रूप में शैव, शाक्त, वैष्णव आदि इसकी कई शाखाएं बन गईं। फलत: हिन्दू धर्म में असंख्य देवी देवताओं के लिये जगह बन गयी । इसका एक रोचक पहलू यह है कि सामान्यत: एक हिन्दू अनेक देवी-देवताओं में विश्वास करता है और भरसक उनकी पूजा आराधना भी करता है । यह पूजा आन्तरिक श्रद्धा भाव से ही हमेशा नहीं होती, अक्सर इसमें दिखावा भी होता है । " झूठा-सच " में एक मजेदार प्रसंग आता है । नैयर की मां और उसके बहनोई की मां में सुबह-सुबह एक प्रकार से पूजा-पाठ की प्रतियोगिता ही शुरू हो जाती है - " नैयर की मां प्रात: बहुत देर तक जपजी साहब (सिक्खों के धर्म-ग्रन्थ) का पाठ करती रहती थी । कभी सुखमणी साहब का पाठ करने लगती थी । इतने से भी उनकी तुष्टि न हो पाती तो वे हनुमान चालीसा, गंगा स्तुति जो भी याद था, सबका पाठ करती । उनकी स्पर्धा में नैयर के बहनोई की मां घण्टी बजाकर पिटारी में साथ लाये ठाकुरों की पूजा करती रहती और फिर चांदी के फ्रेम का चश्मा लगा कर बहुत मोटे-मोटे अक्षरों में छपी हुई देवी भागवत ऊंचे स्वर में बांचने लगती । "[1] नैयर आधुनिक परिवेश में पला और शिक्षित हुआ है । उसे ऐसी पूजा में श्रद्धा नहीं । वह अपनी बहन की सास

---

1. झूठा - सच - पृ. 312.

और अपनी माँ को पूजा-पाठ देख कर व्यंग करता है कि - " हिन्दू तो किसी भी देवी-देवता को पूजे बिना नहीं छोड़ना चाहता । अपने देवताओं को पूज लेता है तो पड़ोसी के देवताओं को भी पूज लेना चाहता है । "[1] लोग अशिक्षा अंधविश्वास, असुरक्षा बोध आदि के कारण देवताओं की शरणागति चाहते हैं और इस तरह देवी-देवताओं की संख्या हिन्दू धर्म में निरन्तर वृद्धि पाती जाती है। इस मामले में स्त्रियां कुछ अधिक ही सहयोग देती हैं । इसके पीछे शायद उनका घर-परिवार के संबंधों से भावात्मक रूप से अधिक जुड़ा होना है । वे अपने घर - परिवार का मंगल चाहती हैं, चाहे वह किसी भी देवी-देवता की कृपा से हो और शायद इसीलिये वे प्रत्येक देवता की कृपा प्राप्त करने से चूकना नहीं चाहती हैं । हिन्दू धार्मिकता से अलग मुस्लिम पीरों और फकीरों की भी कृपा प्राप्त करने की कोई मनाही हिन्दुत्व में नहीं है । " झरोखे " में भी इस बात की चर्चा एक बालक के अनुभवों के माध्यम से की गई है । वह देखता और महसूस करता है कि - " माँ केवल आर्य समाजी ही नहीं है । कभी-कभी वह कटोरी में आटा या घी डालकर, सिक्खों के गुरुद्वारे में भी जाती है, कभी-कभी सनातन धर्म मन्दिर में भी जाती है । जब कभी घर में कोई बच्चा बीमार पड़ जाए तो माँ सुबह गुरुद्वारे जरूर जाती है और शाम को (हम) दोनों बेटों के सिर पर से मिर्चें वारा करती हैं । कभी-कभी वह " संग्रांद " का व्रत भी रखती है । जब कभी माँ की सहेली गोमां दोपहर को घर आती है तो वह उसके साथ सनातन धर्म मन्दिर में भी जाती है और जाते समय (हमें) कह जाती है, " पिता जी को मत बताना । मैं शिवाले वाले मन्दिर में जा रही हूँ । वहां श्रीमद्भागवत की कथा है ।"[2] आश्चर्यजनक बात यह है कि " अंधविश्वास " से भी धार्मिक " उदारता " आती है और शिक्षा के बावजूद धार्मिक संकीर्णता दिखायी देती है । समाज में धार्मिक सह-अस्तित्व एवं सहिष्णुता पंजाब की विशेषता रही है ।

---

1. झूठा - सच, - पृ. 312. 2. झरोखे, - पृ. 53

" दो अकालगढ़ " में बलवन्तसिंह बताते हैं — " किसी मज़हबी मौके पर मौलवी सलामतउल्ला को मुसलमानों से ज्यादा सिक्खों से चन्दा मिलता था। .. सिक्खों के अलावा अमीर हिन्दू भी बड़ी श्रद्धा से दिल खोलकर गुरुद्वारों को चंदा देते थे। "[1] यहाँ पर मस्जिद को सिक्खों से ज्यादा चन्दा मिलने का कारण हालाँकि जनसंख्या का अनुपात बताया गया है, किन्तु तब भी धार्मिक सद्भावना का परिचय तो मिलता ही है।

विश्व के धर्मों में अत्यन्त प्राचीन हिन्दू धर्म में युग-युगान्तर से व्याप्त बुराइयों को दूर करने और उसमें सुधार लाने के प्रयास समय-समय पर होते रहे हैं। चिन्तक, दार्शनिक और समाज-सुधारक भटके हुए हिन्दुओं को सही राह दिखाने का प्रयास विभिन्न समयों में करते रहे हैं। जाति-पाँति आदि के कारण कुछ हिन्दू जो धर्म-परिवर्तन कर विधर्मी बन गये थे उनकी शुद्धि कर उन्हें पुनः हिन्दू बनाने के लिये भी प्रयास हुए। इस सम्बन्ध में समाज सुधारकों द्वारा विभिन्न धार्मिक संस्थाओं का जन्म हुआ। संक्षेप में कहें तो हिन्दू धर्म की संरक्षा और सुधार के लिये कतिपय संस्थाएं उठ खड़ी हुईं। ये संस्थाएँ हिन्दू धर्म की पुनर्व्याख्या करने के साथ लोगों से परंपरागत धर्म में आ गयी कुरीतियों और आडम्बरों को त्यागने तथा ज्ञान की नई रोशनी अपनाने का आग्रह करती थीं। आरंभ में इनका विरोध भी हुआ। " झूठा-सच " में एक जगह उल्लेख मिलता है कि वृद्धा की मृत्यु का समाचार पाकर " बुद्ध समाज " की बहिनें आ गयी थीं। बहिनें समाज से कुरीतियां दूर करने का और सदाचार का प्रचार करती थीं।"[2] किन्तु इन बहिनों के उपदेशों का गली की स्त्रियों द्वारा डट कर विरोध ही हुआ।

स्वरूप में अखिल भारतीय होने के बावजूद आर्य-समाज ने सबसे ज्यादा सफलता पंजाब में पाई। पंजाब में तरह-तरह के समाज-सुधारक कार्य-क्रम अपनाये गये। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों की ओर लौटो (बैक टू वेदाज) का नारा लगा कर हिन्दू

---

1. दो अकालगढ़ – पृ. 53.
2. झूठा-सच – 1, पृ. 11.

धर्म को पुनः सक्रिय और प्रतिष्ठित किया । आर्य-समाज में हवन का बहुत अधिक महत्व है । हवन से ये वातावरण को शुद्ध करने का प्रयास करते हैं ।[1] यज्ञशाला में सामूहिक यज्ञ के अतिरिक्त ये लोग व्यक्तिगत स्तर पर घरों में भी हवन करते हैं। प्राचीन काल में आर्य जिस तरह वैदिक मंत्रोच्चार के साथ हवन करते थे उसी तरह आर्यसमाजी भी हवन को महत्व देना चाहते हैं । आर्य समाज में नियमित रूप से गायत्री पाठ तथा संध्या की जाती है । आर्य-समाज का वार्षिक उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है । इस अवसर पर कार्यकर्ता बड़ी श्रद्धा से लोगों की सेवा करते हैं। बड़े-बड़े स्वामी, महात्मा आदि आते हैं और नगर कीर्तन किया जाता है ।[2]

आर्य समाज के समाज-सुधार के कार्यक्रमों के अंतर्गत विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा के प्रयत्न शामिल थे, पर साथ ही बेमेल विवाह और बाल-विवाह जैसी कुरीतियों को रोकना भी था । "मनुष्य के रूप " में यशपाल बताते हैं - " पहले लाम के बाद (आर्य समाजी) विधवा ब्याह कराने लगे थे ।" " आर्यसमाज के मंत्री चौधरी निर्भय-राम का जिले भर में नाम था । उन्होंने बीसियों भगाई हुई स्त्रियों की रक्षा की थी ..... कुछ विधवाओं के विवाह वैदिक रीति से करा दिये थे । "[3]

आर्य समाज ने समाज कल्याण के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक कार्य किये । शहरी और देहाती क्षेत्रों में जगह-जगह औषधालय खोले गये साथ ही मुफ्त में औषधियां दी जाने लगीं । यह बात और है कि कभी-कभी कार्यकर्ताओं के आलस और भ्रष्टाचार के कारण कुछ जगह यह काम बिलकुल ठप्प हो जाता था या फिर मंदा पड़ जाता था । उत्साह का आरंभिक उफान धीरे-धीरे बैठने लगता है । " झरोखे " में इसी कमजोरी को एक स्थान पर चिह्नित किया गया है - " आर्य समाज का बड़ा फाटक भी बन्द है । औषधालय के बन्द दरवाजों के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है, " धर्मार्थ आर्य

---

1. झरोखे - पृ. 44 - 45.
2. झरोखे - पृ. 41.
3. मनुष्य के रूप - पृ. 45, 77

औषधालय । ... सामने की दीवार पर, बरामदे की एक-एक मेहराब के ऊपर अलग-अलग रंगों में छोटे-छोटे वेद-वाक्य लिखे हैं ।" 1

आर्य समाज का प्रमुख कार्य भय, लालच, दबाव या मजबूरी में आकर धर्म परिवर्तन के द्वारा मुस्लिम या ईसाई बनने वाले हिन्दुओं को शुद्ध कर वापस हिन्दू धर्म में प्रवेश करवाना था । इस प्रकार यह संस्था सामाजिक बुराइयों और प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दू धर्म के लिये उत्पन्न संकट को यथासंभव टालने का प्रयत्न कर रही थी । इस कार्य में उसे सफलता और असफलता दोनों का सामना करना पड़ा । इस सामाजिक-धार्मिक कार्यक्रम का कई धूर्त एवं स्वार्थी तत्वों ने नाजायज फायदा भी उठाया । " झरोखे " में ऐसी ही एक घटना पर एक सामान्य, अनपढ़ घरेलू औरत के द्वारा कटाक्ष करवाया गया है, " तुम लोग आर्य - समाजी बनाते फिरते हो । जिन लोगों को पहले बना चुके हो उन्हें तो पहले पचा लो । वह मुसलमान शुद्ध किया था न । सभी आर्य-समाजी अर्जनदेव-अर्जनदेव कहते थकते नहीं थे । ... कहाँ गया अर्जनदेव ? दसियों लोगों की चादरें-कपड़े ले कर चम्पत हो गया । " 2 ऐसी घटनाओं के पीछे किसी धर्म में आस्था के मुकाबले अवसर और पैसे के लालच का पलड़ा अधिक भारी रहता है । ऐसे लोभी तत्व धर्म-परिवर्तन करने से मिलने वाली सारी सुविधाएँ समेट कर वापस भाग खड़े होते हैं । आस्था या विश्वास के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से होने वाले धर्म-परिवर्तन में मनुष्य की पिछली भावनाएँ नहीं बदलतीं केवल अस्थायी रूप से बाह्य परिवर्तन होता है, आंतरिक बदलाव नहीं होता । "धरती धन ना अपना " का एक पात्र नंदकुमार चमार पहले गुरू का सिक्ख बन कर नंदसिंह बनता है फिर ईसाई धर्म अपना लेता है । " जिन्दगीनामा " में चाची महरी कहती है - " धियो जी कोई कहे धर्म का चोला

1· झरोखे - पृ· 100·

2· - वही - पृ· 50 - 51·

बदलने से मनुक्ख की तासीर बदल जाती है सो झूठ । "[1] अत: शुद्धिकरण की कुछ घटनाओं में आर्यसमाज को असफलता का मुँह देखना पड़ा, किन्तु तब भी आर्य समाज के कार्यकर्ता अपना कार्यक्रम मुस्तैदी से निभाते रहे ।

पंजाब में हिन्दू धर्म के विशाल वटवृक्ष की एक शाखा के रूप में सिक्ख धर्म या पंथ[2] सामने आया था । इसके पर्याप्त सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक कारण थे । हिन्दू और सिक्ख धर्मों में निकट आत्मीय सम्बन्ध ऐतिहासिक रूप से बने रहे हैं यद्यपि कभी-कभार इनका सहअस्तित्व समस्याग्रस्त भी हुआ है । हिन्दू धर्म संसार के प्राचीनतम धर्मों में से है । सिक्ख पन्थ का अस्तित्व अपेक्षाकृत एक दम नया है । इसके बावजूद पंजाब में सिक्ख धर्म ने ही सबसे अधिक आस्था और विश्वास पाया । सिक्ख पन्थ क्योंकि हिन्दू धर्म से उत्पन्न हुआ था और इसके सभी गुरु पहले हिन्दू थे अत: सामान्य हिन्दुओं में भी इस के प्रति गहरी आस्था थी । यहाँ के लोग मन्दिर और गुरुद्वारे दोनों में समान रूप से जाते रहे हैं ।

सिक्ख पन्थ परमेश्वर को सबका पिता मानता है और मानवों में आपसी भाईचारे की भावना पर बल देता है । यह समाज में प्रचलित लिंग, धर्म, जाति और वर्ण भेदों को नकार कर सब को बराबर मानता है । फलस्वरूप स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में आवाज उठाई गई । छठे गुरु ने विधवा विवाह का समर्थन करते हुए सती प्रथा पर प्रश्न-चिन्ह लगाया ।[3] गुरु के सिंहों के लिये बहु - विवाह पाप माना गया । उन्हें एक पति और एक पत्नी के आदर्श सिद्धान्त पर अमल करने को कहा गया ।

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 219.
2. अलग अलग, विद्वानों ने "सिक्ख धर्म" "सिक्ख पंथ", शब्दों का प्रयोग किया है । हम दोनों का सामान अर्थों में प्रयोग कर रहे हैं ।
3. Surender Singh - Sikhism and Guru Granth Sahib, p.35.

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरू-नानक के जीवन का वर्णन " जन्म साखी " के नाम से और उनके उपदेश " गुरु वाणी " के नाम से जाने जाते हैं । [1] गुरू वाणी अर्थात् गुरू की बाणी । गुरूद्वारे में गुरू वाणी " का पाठ ग्रन्थी बड़ी श्रद्धा भाव से करता है और संगत उसे बड़े मनोयोग से सुनती है । बहुत-से लोग तो कई बार इसे समझ भी नहीं पाते किन्तु फिर भी उनकी धार्मिक श्रद्धा बनी रहती है । " चक्पीरा का जस्सा " में जस्सासिंह के साथ प्राय: ऐसा ही होता है - " कुछ देर तक उसने पवित्र वाणी का पाठ सुना । यह वाणी उसके समझ में नहीं आती थी, लेकिन गुरु की वाणी को पवित्र मानकर वह बड़े धैर्य से इसे सुन लिया करता था । " [2] सिक्खों के पवित्र " आदि ग्रन्थ " में गुरुओं के उपदेश संकलित हैं ।

समाज में प्रचलित भेद-भाव और छुआ-छूत की दुर्भावना को मिटाने के लिये गुरू के लंगर की व्यवस्था की गई जहाँ सब लोग एक साथ पंक्ति में मिल बैठ कर, बिना किसी भेद-भाव के, खाना-खाते हैं । लंगर सबके लिये खुला रहता है । गाँव के लोग सेवा-भाव से मिल कर खाना बनाते हैं । सब लोग अपनी श्रद्धा के मुताबिक कार्य करते हैं । " चक्पीरा का जस्सा " में पूर्णमासी के दिन चलने वाले शब्द-कीर्तन और लंगर का वर्णन आया है । इसमें आस-पास के देहातों के लोग भी इकट्ठे होते हैं - बड़े-बड़े देगचों में उर्द चने की दाल चढ़ा दी जाती । ... दाल तैयार हो जाने पर बड़ी-बड़ी भीट्ठयों में आग जलायी जाती और उनके ऊपर लोहे के चादरों के बने हुए लम्बे-चौड़े तवे टिका दिये जाते थे । इन पर एक ही बार में बीस-बीस बाईस-बाईस परशादे (चपातियाँ) तैयार हो सकते थे । "[3] " रावी पार " में बताया गया है कि बैसाखी के अवसर पर आस-पास के देहातों से मेला देखने के लिये आने वाले लोग गुरु के लंगर में ही खाना खाते हैं । गुरू के लंगरों में खाना मुफ्त खिलाया जाता है । इसी प्रकार कोई भी मुसाफिर गुरूद्वारे

---

1. W. Owen - Sikhism and its Indian Context (1469-1708), p.1.
2. चक्पीरा का जस्सा - पृ. 211.
3. - वही - पृ. 95.

में टिक सकता है । मुसाफिर के भोजन की व्यवस्था करना ग्रन्थी की जिम्मेदारी होती है जिसे वह गाँववालों की सहायता से पूरा करता है ।[1] " दो अकालगढ़ " में कुछ लोगों की अक्खड़ता के कारण ग्रन्थी को थोड़ी परेशानी भी होती है, क्योंकि ऐसे समय उसे घर के बाहर काफी इंतजार करना पड़ जाता था - " गाँव में ग्रन्थी के लिये मुसाफिर भी बड़ी मुसीबत थे । न वे रोज-रोज आते न उसको रोटियाँ माँगनी पड़तीं । "[2]

गुरूद्वारे में दोनों समय शब्द कीर्तन और पाठ होता है । श्रद्धालु गुरूद्वारे में मत्था टेकने के बाद ही अपनी दिनचर्या शुरू करते हैं । अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार लोग घरों में भी शब्द कीर्तन और अखण्ड पाठ का आयोजन करते हैं । ऐसे समय गुरू-ग्रन्थ साहब को गुरूद्वारे से बड़ी सावधानी और श्रद्धा के साथ लोग सम्बन्धित घर में ले आते हैं । इस क्रिया को " सवारा साहब " कहा जाता है ।

" झूठा-सच " में सुरेन्द्र के घर उसके भानजे के नामकरण के अवसर पर " अखण्ड पाठ " बिठाया जाता है । " कमरे में दाहिनी ओर स्थान पर एक वृद्ध ग्रन्थी (सिक्ख पुजारी) चौकी पर रखे हुए श्री गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ कर रहे थे । ग्रन्थ साहेब रेशम के बस्तों के बिछौने पर रखा हुआ था । सुरेन्द्र के पिता चौकी के समीप बैठे हुए श्रद्धा से ग्रन्थ साहब पर चंवर डुला रहे थे ।[3] पाठ के दौरान स्त्री-पुरूष अलग-अलग पंक्तियों में सिर ढँक कर बैठते हैं । नंगे सिर संगत में नहीं बैठा जाता । सिर ढंकना " गुरू-ग्रन्थ साहब " के प्रति आदर का सूचक है । पाठ पूर्ण होने पर ग्रन्थी जी " अरदास " करके भोग लगाते हैं और फिर कड़ाह प्रसाद संगत में बांट दिया जाता है । प्रसाद हमेशा हाथों में ही लिया

1· दो अकालगढ़ - पृ· 55·
2· - वही - पृ· 215
3· झूठा सच - पृ· 53·

जाता है । बरतन या दोने में लेने से प्रसाद का अपमान होता है ।[1] गुरुद्वारे का कार्य श्रद्धालुओं द्वारा दान में दी गई जमीनों और धन से बखूबी चलता है । " कभी न छोड़ें खेत " में जगदीशचन्द्र लिखते हैं - " इलाके में सबसे अधिक ज़मीन डेरे के पास ही थी जो लोगों ने मन्नतें पूरी होने पर दान दी थीं । "[2] गुरुद्वारे का सारा प्रबन्ध " गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी " देखती है और वही " ग्रन्थी " को भी नियुक्त करती है । किन्तु कमेटी बनने से पहले गुरुद्वारों का सारा प्रबन्ध महन्तों के पास रहता था और ये बड़ा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे । " कभी न छोड़ें खेत " में जसवन्तकौर गुरुद्वारे में मत्था टेककर महन्थ के रिहायशी भाग में उसकी सेवा के लिये जाती है तो देखती है कि - " महन्थ शामसिंह मक्खन में शहद और बादाम मिलाकर चाट रहा था । मलाई से ढँका हुआ दूध का गिलास तिपाई पर पड़ा था । एक स्त्री उसके सिर पर बादाम रोगन से मालिश कर रही थी और दो स्त्रियाँ उसकी पिंडलियाँ दबा रही थीं । "[3] किन्तु अब महन्थ नहीं होते और गुरुद्वारे में " ग्रन्थी " केवल एक सेवादार की हैसियत ही रखता है ।

सिक्ख-धर्म की विशेषताओं से प्रभावित हो कर बहुत से लोगों ने सिक्ख धर्म अपना लिया । सिक्ख धर्म अपनाने वालों में सर्वाधिक संख्या हिन्दुओं की होती थी । हिन्दुओं के लिए सिक्ख धर्म में प्रवेश बड़ा ही सहज था, मानो एक ही मकान के दूसरे कमरे में जाना हो । बहुत से हिन्दू परिवारों में एकाध पुत्र बड़े स्वाभाविक ढंग से सिक्ख बना दिया जाता था । ऐसा किसी मजबूरी या लालच से नहीं होकर श्रद्धा और भक्ति की वजह से होता था । जब कोई हिन्दू, सिक्ख धर्म अपनाना चाहता तो गुरुद्वारे में इसका आयोजन होता । आयोजन के कई दिनों पूर्व वह अपने केश और दाढ़ी बढ़ाना शुरु कर देता और मुकर्रर दिन पर शब्द-कीर्तन और आनन्द पाठ के साथ " अमृत छक " कर गुरु का सिंह सज जाता । अगर हिन्दू के

---

1. झूठा सच - पृ. 55.
2. कभी न छोड़ें खे. - पृ. 129.
3. - वही - पृ. 131.

अतिरिक्त किसी अन्य धर्म का व्यक्ति सिक्ख धर्म अपनाना चाहता तो अत्यधिक उत्साह चारों ओर फैल जाता और बड़े पैमाने पर आयोजन की तैयारियां होती । इस बात से जाहिर होता है कि सिक्खों के लिये हिन्दू धर्म कोई गैर या दूर का धर्म नहीं था । अन्य धर्म अवश्य ही हिन्दू धर्म की अपेक्षा उनके लिये " दूर " के " गैर " धर्म थे । हिन्दुओं में से सिक्ख बनने की प्रक्रिया हमेशा चलती रहती थी, इसमें कोई नयापन न था । अत: हिन्दू-इतर किसी धर्मावलम्बी के सिक्ख बनने पर उनका अतिरिक्त प्रसन्न होना स्वाभाविक था ।

पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा चलाये गये इस्लाम धर्म के अनुयायी धीरे-धीरे संसार भर में फैल गये । अरब देशों के लोग जहाँ-जहाँ गये अपना धर्म भी अपने साथ ले कर गये । पंजाब में भी इसी कारण मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक रही है । कट्टर धार्मिक सत्ता तथा धर्म युद्धों के सहारे भी इस्लाम धर्म खूब फैला । इस्लाम में धार्मिक अनुशासन के पालन पर बड़ा जोर रहा है । अत: इतने बरसों बाद भी इसके स्वरूप में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है । इस्लाम में वर्ण भेद नहीं है । इसमें समानता पर बल दिया जाता है । जिस हुक्के से गांव का रईस चिलम पीता है उसी हुक्के से चाहे तो जुलाहे, अराई आदि भी तम्बाकू पी सकते हैं, इसमें कोई धार्मिक बन्दिश नहीं है । ﴾फिर भी निम्न स्तर के लोग दांतों से नली को नहीं पकड़ कर मुट्ठी से पकड़ते हैं । ﴿[1] स्त्रियों के अधिकारों की बात भी इस धर्म में रखी गयी है । निकाह के वक्त लड़की से उसकी रजामन्दी पूछी जाती है, रजामन्दी के बगैर निकाह नहीं हो पाता ।[2] दुल्हन के भविष्य को ध्यान में रख कर मेहर का इंतजाम किया गया है, जिससे तलाक की हालत में मेहर की रकम उसके काम आ

1· दो अकालगढ़ - पृ· 116·

2· झूठा - सच - 1 -पृ· 360·

सके। मेहर की रकम ज्यादा होनेसे तलाक का अंदेशा भी कम हो जाता है। धर्म के अनुसार बुर्के के बिना स्त्रियों का घर से निकलना जायज नहीं समझाजाता|वस्त्रों की भाँति बुर्कों से भी सामाजिक स्तर प्रकट होता है। "शरद ऋतु" में अल्ला वसाया को नयी बेगम के दूधों धुले बुर्के का, जिसमें रेशमी पर्दा है, जिक्र है, जो बड़ी बेगम के मैले बुर्के से बिल्कुल भिन्न है।[1] इसी उपन्यास में मौलवी साहब की जवान लड़की खन्नों तथा अधेड़ बीवी फातिमा भी बुर्के के बिना बाहर नहीं निकलतीं।

प्रातः, मुँह अंधेरे ही, मस्जिद में मुल्ला अजान पढ़ता है[2] और सब लोग नमाज अदा करते हैं। नमाज अदा करने से पहले वजू किया जाता है जिसका इन्तजाम मस्जिद में रहता है। "वजू करने के ताल के पास बहुत से आदमी बैठे थे।"[3] इस्लाम में पाँचों वक्त की नमाज और रोजों का अत्यधिक महत्व है। पक्का मुसलमान पाँचों वक्त की नमाज अदा करता है और सारे रोजे भी रखता है। रोजों के दौरान सुबह ही खा पी लिया जाता है, तत्पश्चात पूरे दिन अन्न-जल ग्रहण नहीं किया जाता। "झूठा-सच" में वर्णन है : "ताजों तायी और साथ रहने वाली बदरू और कादिरा प्रातः चार बजे ही आसावरी के स्वर में प्रार्थना गाकर रोजा रखने वाले मुसलमानों को सचेत कर देती थीं। - - - लोग समय रहते सहरी (सूर्योदय से पूर्व का भोजन) खाकर और नेचे पर एक दो चिलमें पीकर सूर्यास्त तक रोजे (उपवास) के लिये आसूदा हो जायें।"[4] ...... "रोजे से रहते समय किसी प्रकार की सुगन्ध या भोजन की इच्छा उत्पन्न करने वाली गन्ध लेना शरह (नैतिक-शास्त्र) के अनुसार मकरूह (निन्दनीय) है।"[5] रोज़ा खोलते वक्त सबसे पहले खजूर खाना

---

1. शरद ऋतु - पृ. 12.
2. तमस - पृ. 29.
3. वही - पृ. 136.
4. झूठा सच-I- पृ. 348.
5. - वही - पृ. 360.

चाहिए अर्थात् खजूर खा कर रोजा खोलने से अधिक सबाब मिलता है, ऐसा माना जाता है क्योंकि हजरत मुहम्मद ने भी खजूर खा कर ही रोजा खोला था ।[1]

धार्मिक ग्रन्थ " कुरान शरीफ " को कंठस्थ करनेवाले को हाफिज कहा जाता है ।[2] उसका समाज में विशेष सम्मान रहता है । इस्लाम के अनुयायी हज़ करने (तीर्थस्थान) मक्का-मदीना जाते हैं । हज करने वाले को " हाजी " कहा जाता है । " दो अकालगढ़ " में बूड़चक्क के नम्बरदार को भी इसी कारण " नम्बरदार जी " नहीं बुलाकर गाँव वाले " हाजी जी " बुलाते हैं ।[3]

इस्लाम धर्म में गैर धर्मी लोगों को धर्म-परिवर्तन द्वारा " दीन " में शामिल करवाना पुण्य का काम माना जाता है । इसीलिये " झूठा-सच " में हाफ़िज जी तारा को प्यार से बहला-फुसला कर तथा दोजख का डर बता कर दीन कबूल करने के लिये मजबूर करते हैं ।[4] वे कहते हैं - " यह तुझ पर उसका रहम है कि उसने तुझे यहाँ पहुँचाने का जरिया बनाया कि तू लाइलाहिल्लाहु मुहम्मद रसूल्लाह पर ईमान लाये और उम्मत में शरीक हो और हमें तुझे उम्मत में शरीक करने का सबाब हासिल हो ।[5] " तमस " में भी बलवाइयों के चंगुल में फंसा इकबाल सिंह जान बचाने के लिये दीन कबूल करने को मजबूर होता है ।[6] डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड अपनी पत्नी लीज़ा को यहां के लोगों के बारे में बताते हुए कहता है -

---

1. झूठा सच - पृ. 366.
2. - वही - पृ. 355.
3. दो अकालगढ़ -पृ. 374.
4. झूठा सच -पृ. 359.
5. - वही - पृ. 364.
6. तमस - पृ. 209 - 210.

" मुसलमान सुअर का मांस नहीं खाते, ... मुसलमान हलाल का मांस खाते हैं।"[1] सूअर का मांस खाने की बात तो दूर इस धर्म में इसका नाम लेना भी वर्जित है। इन्हीं भावनाओं से निजी फायदा उठाते हुए शरारती तत्व मस्जिद की सीढ़ियों पर सूअर की लाश फेंक कर शहर में दंगा करवा देते हैं। सामान्य जनता को धार्मिक अन्ध विश्वासों के प्रचार के जरिये दूसरे धर्म के खिलाफ उकसाया जाता है। समाज में आम लोग शान्तिप्रिय होते हैं। किन्तु समाज-विरोधी तत्वों, संकीर्ण दृष्टि वाले नेताओं, स्वार्थी पूंजीपतियों के हाथों में धार्मिकता एक आसान अस्त्र बन जाती है। वोट, सत्ता और धन के लिए धर्म की आड़ में हिंसा का तांडव होने लगता है। पंजाब को ऐसी स्थितियों से अक्सर गुजरना पड़ा है।

भारत में ईसाई धर्म का प्रवेश अंग्रेज शासकों और धर्म प्रचारकों के माध्यम से हुआ। प्रचारकों ने सर्वप्रथम दक्षिण में प्रवेश किया था। बाद में पंजाब में भी अंग्रेजों का अपना शासन स्थापित होते ही इसाई मिशनरीज धर्म-प्रचार में जुट गये। फलस्वरूप यहाँ भी धीरे-धीरे गिरजों के साथ-साथ मिशनरी स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि खुलते गये। सोची-समझी योजनाओं के तहत धन खर्चा जाने लगा। ईसाई बनने पर अच्छी नौकरियों के साथ-साथ उनका सामाजिक स्तर भी ऊँचा उठता था। परिणामस्वरूप दीन, दलित तथा छोटी जाति के सताये हुए लोग धर्म-परिवर्तन कर ईसाई बनने लगे। " दो अकालगढ़ " में तो ऐसे लोगों की कॉलोनियां या टोलियां गाँव के बाहर बसायी जाने की बात कही गई है - " गाँव के बाहर हिसाइयों (ईसाइयों) के घर थे। ये वे लोग थे जिन्हें अंग्रेजी या अमरीकी मिशनरियों ने भंगियों से ईसाई बना लिया था। अब वे लोग हिसाई या क्रिस्टान कहलाते थे।"[2] इतना ही नहीं हिन्दू धर्म के छुआ-छूत, भेद-भाव तथा उच्च जाति द्वारा छोटी जातियों पर होने वाले अत्याचारों से क्षुब्ध उच्च-जाति के पढ़े-लिखे नौजवान भी यीशु Jesus Christ की शरण में जाने लगे। " मेरी - तेरी उसकी बात " के नवयुवक पात्र

---

1. तमस - पृ. 45.
2. दो अकालगढ़ - पृ. 140.

पं॰देवदत्त ने भी अपनी जाति वालों का अत्याचार देख कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया - " देवदत्त ने आयु उन्नीस हो जाने पर महीना भर भी प्रतीक्षा न की । बप्तिस्मा लेकर विधिवत ईश्वर के पुत्र ईसू की शरण प्राप्त कर ली । ... पृथ्वी से हिन्दू धर्म की क्रूरता और कुसंस्कारों को मिटाने के लिये जीवन अर्पण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा [1] उच्च जाति के व्यक्तियों का असली नाम अर्थयुक्त होता था, अतः धर्म परिवर्तन के बाद भी उनका नाम बदला नहीं जाता था जबकि छोटी जाति के व्यक्तियों के निरर्थक लगने वाले नामों को बदल दिया जाता था । उनके नये नामों के साथ धर्म परिवर्तन करवाने वाले पादरी का नाम उपनाम या गोत्र की तरह जुड़ जाता था । [2] इन लोगों के नाम परिवर्तन के पीछे उनके कष्टमय अतीत और उनके भीतर की हीन भावना को खत्म करना था । उच्च जाति के जो व्यक्ति सोच-समझ कर तथा आस्थानुसार ईसाई बने थे उनके अतीत को बदलने या छिपाने का कोई कारण नहीं था । उनके नाम इसलिए भी रहने दिये जाते थे क्योंकि ये उच्च जाति के व्यक्तियों द्वारा भी ईसाई धर्म स्वीकार करने के प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा विज्ञापन थे । शासक धर्म होने के सभी फायदे ईसाई धर्म ने उठाये । शासन तंत्र से जुड़े अंग्रेजों तथा पादरियों के द्वारा ईसाई धर्म में लोगों की आस्था जगाने के सारे भौतिक प्रयत्न यथासम्भव किये जाते थे । स्कूलों, कॉलिजों तथा मेलो-ठेलों में खुलकर धर्म-प्रचार किया जाता था । ईसाई मिशन के स्कूलों और कॉलिजों में तो बाईबल की एक, क्लॉस अलग से होती थी जहाँ ईसा-मसीह तथा अन्य ईसाई सन्तों के त्यागों और उपदेशों को विस्तार से बताया जाता था । इतना ही नहीं हिन्दू-धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों की खुलकर आलोचना की जाती थी । यशपाल लिखते हैं कि -- " उस समय ईसाई शिक्षा संस्थायें अशिक्षित भारतीयों का केवल इहलोक नहीं परलोक सुधारने के लिये भी यत्नवान रहती थीं । " [3]

1· मेरी तेरी उसकी बात - पृ· 152·

2· - वही - पृ· 153·

3· - वही - पृ· 148·

मेलो-ठेलों में ये प्रचारक अपने तम्बू गाड़कर लोगों को अपने धर्म से सम्बन्धित किताबें बाँटते थे और " मास " ‖ इबादत ‖ में शामिल होने के लिये बुलाते थे। तम्बुओं पर कुछ इस तरह की इबारतें लिखीं मिलती थीं " दुनिया के दुखी इन्सानों, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें आराम दूंगा, " " दुनिया के भटके हुए इन्सानों मुझ पर ईमान लाओं, मै तुम्हें जिन्दगी दूंगा। "[1] शहरों तथा गाँवों में गिरजाघरों का निर्माण होने लगा। जहाँ ईसाई धर्म के अनुसार यीशु मसीह की इबादत की जाती और लगे हाथों धर्म-परिवर्त्तन करने वाले नये समुदाय का मेल-जोल भी ईसाई समाज से होने लगा।

ईसाई धर्म के समानता के भाव से आकर्षित होने वाले इन नये अनुयायियों में एक दिलचस्प बात देखने को मिलती है कि शादी-ब्याह के वक्त ये लोग इस नये समुदाय में भी अपनी पिछली-पुरानी जाति के लोगों को ही ढूंढते हैं। उदाहरण के तौर पर " ब्राह्मण क्रिश्चियन" ब्राह्मण ईसाई में तथा" वैश्य क्रिश्चियन " वैश्य ईसाई, में ही रिश्ता करना पसन्द करते है। " मेरी, तेरी उसकी बात " में मिस्टर पंत तथा मिसेज पंत अपने लड़के की शादी की बात चलाते हुए कहते हैं - " लड़की क्रिश्चियन होनी ही चाहिये, विशेषकर ब्राह्मण क्रिश्चियन। "[2] पंजाब में ईसाई धर्म भी अपना स्थान बनाने लगा, यह तथ्य है किन्तु यह कतिपय शहरों तथा कस्बों के कुछ हिस्सों तक ही सीमित रहा। कहा जा सकता है कि अगर अंग्रेजों को हिन्दुस्तान की सत्ता नहीं मिली होती तो ईसाई धर्म का यह छुटपुट प्रसार भी पंजाब में देखने को नहीं मिलता। पंजाब में हिन्दू, सिक्ख तथा मुस्लिम सम्प्रदायों के बाद ही ईसाई सम्प्रदाय का स्थान आता है। इसलिए भी यह धर्म अपने सीमित संख्या वाले मतावलम्बियों के कारण पंजाब के जीवन और समाज में निर्णयात्मक भूमिका निभाने में सफल रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

---

1. मय्यादास की माड़ी - पृ. 182.
2. मेरी तेरी उसकी बात - पृ. 173.

धारणाएँ और अंधविश्वास :

विश्व के किसी भी समाज और समुदाय की भांति पंजाबी समाज और जीवन में भी धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों का अपना ही स्थान है । धार्मिक आस्था के साथ-साथ अनेक प्रकार के अन्धविश्वास भी प्रकारान्तर से जड़ जमाने लगते हैं । कोई भी समाज अन्धविश्वासों से रहित नहीं होता । धार्मिक आस्था कब और कैसे अन्धविश्वास में बदल जाती है यह विश्लेषित कर पाना कठिन है । धार्मिक आस्था व्यक्ति और समाज के उन्नयन के लिये कार्यरत रहती है, जबकि अन्धविश्वासों से व्यक्ति और समाज की पतनशीलता जाहिर होती है । धर्म का सम्बन्ध जहाँ आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास से है, वहीं लोभ, भय आदि के कारण, तर्क-बुद्धि का साथ छोड़ कर बहुधा लोग अपने धार्मिक विश्वासों को अन्धविश्वासों में बदल कर उन्हें आँखें मूंदकर मानने लगते हैं । अतः अंधविश्वासों के उत्स, कुल मिलाकर, सामाजिक होते हैं । विभिन्न समुदायों में तरह-तरह के अन्धविश्वास मिलते हैं जो वहाँ के जीवन जीने के ढंग से सम्बन्धित होते हैं । अन्धविश्वास प्राकृतिक घटनाओं, सामाजिक वर्जनाओं, जीवन काल तथा मरणोत्तर भूत-प्रेत आदि सभी से सम्बन्धित मिलते हैं। आलोच्य उपन्यासों में पंजाब के जीवन और समाज के चित्रण की प्रक्रिया में तरह-तरह के अन्धविश्वास उभर कर आये हैं । इनके द्वारा हमें वहां के जीवन की निकट गहरी और वास्तविक पहचान होती है । यहां के सामान्य निम्न तथा मध्य वर्गीय लोग जादू-टोने, मंत्र-तंत्र तथा मौलवियों और पीर-फकीरों में बहुत विश्वास करते हैं। " तमस " में एक घर के सामने कोई औरत टोना कर जाती है, जिसका " उद्देश्य " " अपने " घर तथा बच्चों के दुर्भाग्य तथा मुसीबतों को " उस " घर के प्राणियों पर डाल देना था । - " एक घर के सामने कोई औरत टोना कर गई थी कुछ ठिकरियों में लिपटे कंकड़ और गुंधे आटे का पुतला और उसमें खोंसी हुई लकड़ी की खपचियाँ थीं।"[1] टोने पर अनजाने में पांव पड़ने से नत्थू धर्रा जाता है, जबकि यह टोना उसके घर के

1· तमस - पृ· 26·

आगे नहीं किया गया था । तब भी टोने का भय उसकी रग-रग में समा जाता है । " कभी ना छोड़े खेत " में जसवन्तकौर के बच्चा होने के समय बचिंतसिंह दाई को गाँव के बाहर से चला कर लाता है, क्योंकि उसे डर है कि कोई दुश्मन जादू-टोना ना कर दे । [1]

" झूठा-सच " में सोमराज के द्वारा अपने रिश्ते की भाभी को घर में रख लेने और सब-कुछ उसके हाथ में सौंप देने पर उसकी बहन सोचती है - " डायन ने राजे { सोमराज } को जरूर कुछ खिला दिया है या वशीकरण जानती है । " [2] इस स्थिति को बदलने के लिये वह पंडित बुलाकर उससे पूजा करवाती है । "बहन" उस रखैल के सिर के टूटे बालों पर भी टोना करवाना चाहती है किन्तु इस सन्दर्भ में उसका विश्वास पंडितों से ज्यादा मुस्लिम फ़कीरों पर है - " यह हुनर तो मुसलमान फ़कीरों को था । झट कील देते थे । " [3] इस प्रकार वह पूजा या तंत्र-मंत्र से अपने भाई पर तथा उसके माध्यम से पैतृक घर पर अपना अधिकार सुरक्षित करना चाहती है।

समाज में इस प्रकार की भी धारणा है कि " पंडितों के चेहरे को ध्यान से नहीं देखना चाहिये क्योंकि उनके चेहरों पर घूमने वाले शगुन-अपशगुन के साये अहित कर सकते हैं । [4] किसी परिवार में किसी की अकाल-मृत्यु होने पर उसके पीछे भी लोग जादू टोने या मंत्र-तंत्र का हाथ देखने लगते हैं जो अज्ञान, अशिक्षा आदि का परिणाम होता है ।

आम तौर पर भूत-प्रेत के नाम से ही दुनिया भर के लोग भय खाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के अशिक्षित व्यक्तियों में तो यह भय खास तौर पर गहरा समाया रहता है । अचेतन मन में छाया यह भय कभी-कभी विकराल प्रत्यक्ष रूप भी धारण कर लेता

---

1. कभी ना छोड़े खेत - पृ. 210.
2. झूठा-सच - 2, पृ. 352.
3. - वही -
4. मय्यादास की माड़ी - पृ. 12.

है । लोग बीमारियों और भौतिक मुसीबतों का कारण रहस्यमय शक्तियों का प्रकोप मान कर झाड़-फूंक करवाने में समय और पैसा फूंकते रहते हैं । " धरती धन न अपना " के काली की चाची जब चक्कर खा कर बेहोश हो जाती है तब वह इसे चुड़ैल का प्रकोप मानता है तथा उसे भगाने के लिये ओझा से झाड़-फूंक करवाता है । परिणाम यह होता है कि चाची की हालत बिगड़ती जाती है तथा अन्त में उसकी मृत्यु ही हो जाती है ।[1] " जिन्दगीनामा " में शाहनी को अपनी सौत यानी शाह की मृत पत्नी सशरीर दिखाई देती है ।[2] गांव वाले यह भी विश्वास करते हैं कि बचपन में धोखे से मार दिये जाने वाले लड़के की रूह हर साल निश्चित समय में कुएं से निकल कर अस्थियों पर गायब हो जाती है ।[3] इस दौरान होने वाली हर अप्रिय घटना का जिम्मेवार उसे ही ठहराया जाता है । " झूठा-सच " में जब बुरी परिस्थितियों की सतायी तारा अपना सिर पटक-पटक कर मर जाने की चेष्टा करती है तो इस दृश्य को देख कर एक अनपढ़ और अन्धविश्वासी युवती समझती है कि तारा पर जिन्न सवार हो गया है - " हाय, उस पर तो जिन्न आ गया है, लोगों । खेल कर जिन्न को बुला रही है । "[4]

समाज में मनुष्यों के द्वारा पशु-पक्षियों और उनके विभिन्न क्रिया-कलापों को भी शगुन-अपशगुन से जोड़ लिया जाता है । मसलन शाम के वक्त अगर कुत्ता रोता है तो माना जाता है कि कोई मुसीबत आने वाली है ।[5] घर की छत पर बैठे कौवे का बोलना शगुन माना जाता है क्योंकि लोग समझते हैं कि यह किसी मेहमान या प्रिय व्यक्ति के आने का संकेत है ।[6] उल्लू का दिखाई देना तो बहुत बड़ा अपशगुन

---

1. धरती धन न अपना - पृ. 175 - 180
2. जिंदगीनामा - पृ. 38.
3. - वही - पृ. 196.
4. झूठा सच - 1, पृ. 351.
5. कभी न छोड़े खेत - पृ. 26.
6. रात, चोर और चांद - पृ. 37.

माना जाता है और अगर यह किसी मकान पर बैठा दिख जाए तो माना जाता है कि उस घर की बदरबादी निश्चित है ।[1]

शुभ कार्य शुरु करते वक्त या फिर यात्रा के लिये निकलते समय अच्छा मुहूरत देखा जाता है और रास्ते में मिलने वाली वस्तुओं और घटनाओं के शगुन-अपशगुन पर भी विचार किया जाता है । रास्ते में भरी गागर के साथ किसी स्त्री का मिलना अच्छा शगुन माना जाता है, लेकिन गागर यदि खाली हो तो यह अपशगुन है । शादी-ब्याह में लड़के तथा लड़की की पंडित द्वारा जन्म-पत्री का मिलान करना आवश्यक समझा जाता है । पत्री नहीं मिलने पर या फिर लड़के या लड़की के मंगली होने पर परिवार के टूटने तथा विवाह के असफल होने की आशंका लोगों के मन में बनी रहती है । "मय्यादास की माड़ी" में भीष्म साहनी बताते हैं कि लोग मौसी भागसुद्धी के पति की असमय मृत्यु का कारण भागसुद्धी का मंगली होना मानते हैं ।[2] इसी उपन्यास में दीवान धनपत के लड़के तथा मलिक मंसाराम की लड़की की शादी पक्की होने पर लोग पुरोहित से पूछते हैं कि - "पतरी तो तूने ही मिलायी होगी"[3] यहां के लोग बुरी नज़र, बद्दुआ, श्राप आदि से भी भय खाते हैं और विश्वास करते हैं कि इनसे अहित होता है । "धरती धन न अपना" में नई ब्याही लड़की का सामान चोरी चला जाता है । इस चोरी का कारण कालो की चाची के अनुसार प्रीतो की बुरी नज़र है - "प्रीतो ने नज़र लगा दी तो रात में ही उसका सारा सामान चोरी हो गया ।"[4] "मय्यादास की माड़ी" में बताया गया है कि लोग निरीह समझे जाने वाले पुरोहित से भी इसलिए भय खाते हैं कि "क्या मालूम

1· मय्यादास की माड़ी - पृ· 13·
2· - वही - पृ· 226 - 227·
3· - वही - पृ· 18·
4· धरती धन न अपना - पृ· 14·

मुआ ब्राह्मण " सराप " ही दे डाले । "[1] इस प्रकार का अन्धविश्वास जब लोक-मानस में गहरे पैठ जाता है तो सम्बन्धित व्यक्ति का हर क्रिया-कलाप संदिग्ध प्रतीत होने लगता है और लोग इस प्रकार से सोचने लगते है - " पुरोहित की नज़र बुरी है । या तो यह कोई मंत्र फूंकता है, या इसकी नज़र में ही कुछ है कि खड़े घर भुर-भुराकर गिर जाते हैं । "[2]

अंधविश्वास मूल रूप से व्यक्ति तथा सामूहिक मन के वहम होते हैं । सामान्यत: इन्हें समाज के पिछड़ेपन तथा वहां के निवासियों के अशिक्षित होने की निशानी समझा जाता है, लेकिन यह संपूर्णत: सत्य नहीं है । आधुनिक, विकसित तथा शिक्षित समाजों में भी अंधविश्वास पाये जाते हैं । हाँ, इतना तो मानना ही होगा कि अधिकांशत: अंधविश्वासों का सम्बन्ध जहालत और पिछड़पने से होता है ।

पर्व - त्योहार :-

महत्त्वपूर्ण सामाजिक - आर्थिक घटनाओं की स्मृति लोगों के दिलों की खुशी और समाज को बहुविध समृद्धि की अभिव्यक्ति पर्व त्योहारों में होती है । समाज आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से जितना ही समृद्ध और खुशहाल होगा उतने ही वहां पर्व-त्योहार मनाये जायेंगे । पंजाब की खुशहाली वहां मनाये जाने वाले अनेक त्योहारों और मेलों-ठेलों से भी आंकी जा सकती है । यहां के लोग जितना कठिन परिश्रम करते हैं उतनी ही मौज मस्ती भी करते हैं । उनके मनोरंजन और आनन्द में ये त्योहार सहायक होते हैं । पर्व-त्योहारों के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक कई कारण होते हैं । पंजाब में अनेक पर्व-त्योहार सिक्ख गुरुओं के जन्म-

---

1. मय्यादास की माड़ी - पृ. 14.
2. - वही - पृ. 13.

मरण से सम्बन्धित होते हैं । देवी-देवताओं और पीर मुल्लाओं से जुड़े त्योहार और मेले भी होते हैं । इनमें सभी धर्मों के लोग शरीक होते हैं । "दो अकालगढ़ " में बलवन्तसिंह बताते हैं - " गुरू नानक देव और आखिरी गुरू श्री गोविन्द सिंह के जन्मदिन तो मनाए ही जाते थे, लेकिन इनके अलावा गुरू अर्जुन देव तथा गुरू तेग बहादुर के बलिदान दिवस भी बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते थे ।[1] दुर्गा पूजा का एक रूप यहां देवी के नौरात्रे में मिलता है। जिसमें नौ दिन-रात देवी की पूजा की जाती है । नौरात्रों के पहले दिन ही प्रत्येक घर में जौ और कनक की "खेती" बोयी जाती है । घर की मालकिनें नहा-धो कर छोटे-बड़े आलों में मिट्टी बिछा कर बीज बो देती हैं ।[2] देवी के नौ दिन पूरे होने पर दसवें दिन विजया दशमी का त्योहार आता है । यह दिन श्री रामचन्द्र की रावण पर (अच्छाई की बुराई पर) विजय के रूप में मनाया जाता है । लोग नये कपड़े पहनते हैं । शाम को मैदान में रावण का पुतला जलाया जाता है ।

विजय-दशमी के तुरंत बाद दिवाली के रूप में खुशियों भरा एक और त्यौहार आता है । पारंपरिक रूप से यह त्योहार वनवास के बाद श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या लौटने से सम्बन्धित भी कहा जाता है । इस दिन नये कपड़ों और मिठाइयों के साथ शाम को लक्ष्मी पूजा की जाती है और दीपों की पंक्तियां सजायी जाती हैं । " जिन्दगीनामा " में गांव के शाह के पुत्र लालीशाह की पहली दिवाली पर गांव के लोग शाह से अपनी-अपनी पसंद की मिठाई बनवाने का आग्रह करते हैं ।[3]

ईद और मुहर्रम ऐसे त्योहार हैं जिनकी तिथियां हमेशा अलग-अलग महीनों में निकलती हैं, क्योंकि चांद के घटने-बढ़ने से साल में 13 दिन का फर्क इन तिथियों में पड़ जाता है । इसी कारण " जिन्दगीनामा " में ईद दशहरे के

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 53.
2. जिन्दगीनामा - पृ. 63.
3. - वही - पृ. 65.

पास पड़ती बताई गई है [1] तो "शरद-ऋतु " में मुहर्रम का त्योहार दशहरे के पास । [2] इस तरह दो त्योहार अगर आगे-पीछे पड़ते हैं तो लोगों के दिल खुशी से झूम उठते हैं । ईद के दिन लोग नये कपड़े पहनते हैं और तरह तरह के पक्वानों के साथ सेवइयाँ जरूर बनाते हैं । बकरीद पर पशु की बलि दी जाती है जिसका मांस खाया जाता है । " शरद ऋतु " में उपन्यासकार ने वर्णन किया है कि महंगाई के कारण बकरों की कीमत अत्यधिक बढ़ जाने के कारण गाँव वाले आपस में पैसा इकट्ठा करके एक बेकार सा भैंसा सस्ते में खरीद कर बलि दे देते हैं और इस तरह बकरीद मनाते हैं । [3] मुहर्रम के त्योहार पर ताजियों का जुलूस निकलता है, जिसका निर्माण कार्य कई दिन पहले बड़े जोर-शोर से शुरू हो जाता है । "शरद - ऋतु " में ताजिया बनने और उसके निकलने का किंचित विस्तार से वर्णन मिलता है - " ढोल-नगाड़ों की आवाजें निकट पहुंच रही थीं ।" या अली " या हुसैन " का मीठा शोर भी कानों पर दस्तक देने लगा था । जुलूस पीर साहब की अगवानी में बढ़ता आ रहा था । जब चौक पर पहुँचा तो पीर-साहब ने सीटी बजाकर रुकने का संकेत किया जिसका अर्थ था कि नोहा खीवानी { रोना-धोना } का कार्यक्रम शुरू होगा । केवल पायजामा पहने नंगे-शरीर कई युवक खंजरियां लिये घेरे में कूद पड़े थे । " [4]

वैसे ईद खुशियों का और मुहर्रम गमी का त्योहार माना जाता है पर दोनों ही बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं । धार्मिक रूप से इस्लाम से सम्बन्धित होने के बावजूद दूसरे धर्मों के लोग भी जुलूस में बढ़-चढ़ कर भाग लेते दिखायी देते हैं । वस्तुत: दिलों की खुशियों से धार्मिकता की संकरी दीवारें खुद-ब-खुद खत्म हो जाया करती हैं।

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 84.
2. शरद ऋतु - पृ. 90.
3. - वही - पृ. 68/69
4. - वही - पृ. 86- 87.

मानव-जीवन के परिवर्तनों से जुड़े अनेकों अनुष्ठान जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत विवाह आदि अवसरों पर किये जाते हैं । इसी तरह ऋतु चक्र में परिवर्तन से जुड़े भी पर्व-त्योहार होते हैं । पहले अनुष्ठानों में व्यक्ति और परिवार की मंगल कामना कार्य-रत रहती है तो दूसरे में पूरे समाज की मंगल कामना । पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों में मनाये जाने वाले पर्व-त्योहरों की संख्या और इनके रूपों की निश्चित गणना बताना कठिन है ।

एक जमाने में पंजाब के घरों में सूत कातने का चलन होने के कारण चरखे से सम्बन्धित त्योहार " त्रिंजन " मनाया जाता था । "जिन्दगीनामा " में शाहनी अपने घर लौहड़ी के त्योहार से पहले " त्रिंजन "बैठाती है, जिसमें गाँव की लड़कियाँ और युवतियाँ अपने अपने चरखों पर सारा दिन हँसते-गाते सूत कातती हैं । ऐसे में सूत कातने की होड़ सी लग जाती है ।[1] इस त्योहार के पीछे आर्थिक आधार भी कार्य करता है क्योंकि काता गया सूत आमदनी का जरिया बनता है ।

" लोहड़ी " का त्योहार मौसम बदलने की खुशी तथा खड़ी फसल की खुशहाली में मनाया जाता है । किसी बच्चे के जन्म के बाद या किसी लड़के की शादी के बाद पड़ने वाली " पहली लौहड़ी " विशेष धूम-धाम से मनायी जाती है । इस त्योहार के दिन बच्चे गले में झोलियाँ डाले आते हैं । उन घरों से जहाँ उस साल लड़के का जन्म हुआ हो, खास तौर पर बोलियाँ सुनाते हुए उपले मांगते हैं ।[2] " जिन्दगीनामा " में सारा गाँव सम्मिलित रूप से यह त्योहार मनाता है - " पान्दे जी ने कच्ची लस्सीवाली गड़वी को मौली बाँधी । थाली में फूल-खील रखे । मूली ! तिल ! गुड़ । और गहर गम्भीर स्वर में कहा - " माँओ बहनों । लोढ़ी का भागों भरा त्योहार सदा-सदा । "[3] पंजाब का सबसे महत्त्वपूर्ण और जाना-पहचाना

1· जिन्दगीनामा - पृ· 42·

2· दो अकालगढ़ - पृ· 240·

3· जिन्दगीनामा - पृ· 51 - 54·

बैसाखी का त्योहार नयी फसल आने की खुशी में मनाया जाता है । इस दिन लोग खुशी से गाते-नाचते हैं । " दिलों में जीने की रीझें -- जगा बैसाखी के ढोल ऐसे गूंजने लगे ज्यों हाथ-पैरों में ताजे खून लहराने लगे हों । "[1] फसल घर आने की खुशी और जोश लोगों के चेहरों की चमक बढ़ा देता है । इस अवसर पर मेले भी लगते हैं, जहाँ अनाज के साथ-साथ मवेशियों की भी खरीद-फरोख्त होती है ।[2] संक्रान्त के पहले ही कुम्हार घरों में जा जा कर घड़े, मटकियां आदि पहुँचा आते हैं । इन नयी मटकियों पर स्त्रियाँ मोलियां बांधती हैं । इन पर गुड़, आटा और वंवड़ियाँ रखती हैं । एक हाथ से डुलाने वाले पंखे के साथ वे ब्राह्मणों के घर जा कर उन्हें दान कर आती हैं ।"[3] करवा-चौथ के दिन स्त्रियाँ अपने पति की मंगल-कामना हेतु व्रत रखती हैं और उपवास करती हैं । वे अगले जन्म में भी इसी पति की कामना से पूजा करती हैं । इस दिन चाँद को देख कर, उसकी पूजा-अर्चना करने के बाद ही उपवास समाप्त किया जाता है । " झूठा-सच " में जयदेव पुरी की मंगल-कामना हेतु कनक यह अनुष्ठान करती है -"कनक पटरे पर खड़ी हो गयी । हीरां के हाथ से दीया और चलनी ले लिये । दिये की चलनी की कोर में रखा और छलनी उठा कर चाँद को देखा । हीरां करवा के व्रत का सूत्र पढ़ने लगी-सिर घड़ो, पैर कढ़ो अर्धा देवां चौबारे खड़ी ... । "[4] संकट चौथ के व्रत में तिल और गुड़ के गणेश बना कर उनकी पूजा की जाती है ।[5]

इन प्रांतीय त्योहारों के अतिरिक्त भी क्षेत्रीय रूप से लड़ी, बाबा सोढ़ल, होला-मुहल्ला तथा गुग्गे नवमी[6] जैसे अनेकों त्योहार पंजाब में मनाये जाते हैं ।

1· जिन्दगीनामा - पृ· 98·

2· चक्पीरां का जस्सा - पृ· 183·

3· जिंदगीनामा - पृ· 323·

4· झूठा-सच - 2 - पृ· 375·

5· शहर में घूमता आईना - पृ· 114·

6· - वही - पृ· 98·

त्योहारों के साथ-साथ पंजाब में लगने वाले मेले-ठेलों का अपना ही महत्व है । ये मेले किसी साधू-संत या पीर-फ़कीर की याद में तथा देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिये लगते हैं । " शहर में घूमता आईना " में शीतला माता के मेले का जिक्र इस प्रकार मिलता है - " शीतला माता के इस मन्दिर पर यों तो प्रति मंगल मेला लगता है पर वर्ष में दो मंगलवार ऐसे भी आते हैं जब माता के गुण गाते, मन्नतें मानते और मनाते सारे जिले के श्रद्धालु वहाँ इकट्ठे होते हैं । " [1] " दो अकालगढ़ " में बाबा मीतसिंह के मेले तथा जोड़ मेले का रोचक [2] प्रस्तुतीकरण किया गया है । - " जोड़ मेले की तैयारियाँ काफी दिन पहले से शुरू हो जाती हैं और दूर-दूर तक इस मेले की धूम मची थी । इस मेले के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक तीनों पहलू थे । भजन कीर्तन की मण्डलियों के साथ-साथ वीर-रस की कथाएँ गाने वाले ढाढी भी आते थे । पंजाब में मशहूर प्रेम-कथाएँ गाने वाले भी अपना रंग जमाते थे । पंजाब का मशहूर नाच भांगड़ा नाचा जाता था । कई खेल कबड्डी, दौड़ें, लम्बी छलांग, सौंची, के साथ-साथ मुगदर भी हिलाए जाते । बैलगाड़ियों और घोड़ों की दौड़ें भी होती थीं । कुश्तियाँ भी होती थीं । " [3] "रात, चोर और चाँद " में डिंगा गाँव का जिक्र है जहाँ टुंडे पीर की कब्र पर हर वर्ष एक दो दिन मेला लगता है । [4] " चक्पीरां का जस्सा " और " रावी-पार " में बैसाखी के मेले का वर्णन है । इन मेलों में जहाँ लोग मौज-मस्ती तथा खरीद-फरोख्त करते हैं वहीं खानदानी दुश्मनी तथा चुनौतियाँ भी भुगताई जाती हैं । ये लड़ाइयाँ अक्सर मेले के अंतिम दिन इसलिए लड़ी जाती हैं ताकि मेले की रौनक और व्यापर को इनसे किसी तरह का नुकसान नहीं हो । [5] इस प्रकार ये मेले रोजमर्रा की उबाऊ जिन्दगी

1· शहर में घूमता आईना - पृ· 91·

2· दो अकालगढ़ - पृ· 30 - 31·

3· - वही - पृ· 352 - 448·

4· रात, चोर और चाँद - पृ· 6

5· चक्पीरां का जस्सा - पृ· 183·

तथा दिलों की भड़ांस सभी से निजात दिलाते थे। कभी-कभार पुलिस के पहुँचते-पहुँचते एक दो कत्ल हो कर लड़ाई समाप्त भी हो जाती थी। प्रीत-प्यार की पींगें भी इन मेलों में परवान चढ़तीं। इस प्रकार ये मेले पंजाब के सांस्कृतिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हैं।

2. सामाजिक रीति-रिवाज :

प्रत्येक समाज के अपने रीति-रिवाज होते हैं और ये जन्म से ले कर मृत्यु तक मानव के सामाजिक व्यवहारों में दिखायी पड़ते हैं। विभिन्न जाति और धर्म के लोगों का निवास होने के कारण पंजाब में अनेक प्रकार के रीति-रिवाज प्रचलित हैं। आर्यसमाज में बच्चे के जन्म के समय उसकी जीभ पर शहद से " ओम " लिखने का रिवाज है।[1] खुशी के अवसरों पर गुड़-बताशे बाँटे जाते हैं और नौकरों को ईनाम दिया जाता है। बच्चे के जन्म से चालीस दिन बाद बच्चे की माँ पाँव तले हल रख कर स्नान करती है। नहा धो कर नये कपड़े पहनती है, फिर बच्चे तथा स्वयं की नज़र उतरवा कर कमरे से बाहर आ चौके चढ़ती है। इस अवसर पर पूजा, हवन आदि किया जाता है और जो बच्चे के नज़दीकी रिश्तेदार होते हैं वे पण्डित को शगुन के कपड़े और पैसे देते हैं।[2]

सिक्ख पन्थ में बच्चे का नामकरण गुरु ग्रन्थ साहब में देखकर किया जाता है। इस अवसर पर लोग गुरुग्रन्थ साहब का अखण्ड पाठ रखवा कर संगत को कड़ाह प्रसाद बांटते हैं। " झूठा-सच " में एकजगह बच्चे के नामकरण का प्रसंग इस प्रकार आता है - " ग्रन्थ साहब का पाठ पूर्ण कर ग्रन्थी जी ने घोषणा की - " भुजंगी (बालक) के नाम का पहला अक्षर जानने के लिये श्री गुरुग्रन्थ साहब से अरदास की

---

1. झरोखे - पृ. 99.
2. जिन्दगीनामा - पृ. 154 - 157.

जाए ।" " ग्रन्थी जी ने ग्रन्थ साहब को पुन: खोला । खुले पृष्ठ पर पहला अक्षर देख कर कहा - " श्री गुरुग्रन्थ साहब की आज्ञा है, भुजंगी के नाम का पहला अक्षर तत्ता (त) हो । आप लोग तत्ता से नाम सोच लें " [1] बच्चे का नाम तारा - सिंह रखा जाता है । पंजाब के लोगों के प्राय: मिलते-जुलते नामों के पीछे संभवत: नामकरण संस्कार के ढंग का भी महत्वपूर्ण हाथ रहता है । हिन्दू परिवारों में पंडित पत्रा देख कर ग्रहों की स्थिति का अध्ययन करके बच्चे की राशि निश्चित करते हैं और राशि के अनुसार नाम रखा जाता है ।

जन्म के बाद मुंडन संस्कार होता है जिसमें बच्चे के जन्म के बाल पहली बार उतार कर भगवान को समर्पित किये जाते हैं । इस अवसर पर बच्चे को नानी के घर का कपड़ा पहनाने का रिवाज है । [2] रिश्तेदार और पड़ोसी आ कर बच्चे का सिरवारना कर उसे शगुन के रूप में कुछ न कुछ अवश्य देते हैं । इनमें कपड़े-पैसे के साथ-साथ गरी छुहारे जरूर होते हैं । - " शाहनी ने बच्चे के सिर पर हाथ फेरा और मूठ में सगुण का टका धर दिया । ... सिरवारना कर जातक का, पनघड़ बाबो को पकड़ा दिया । " [3]

व्यक्ति के जीवन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार विवाह का होता है । इस अवसर पर भी अनेक रीति रिवाजों का पालन किया जाता है । पंजाब में भी, देश के दूसरे भागों की तरह, विवाह की, परम्परा से चली आ रही, कई किस्में मिल जाएँगी । " गंधर्व विवाह " से ले कर " राक्षसी विवाह " तक के परिवर्तित, संशोधित वैवाहिक प्रकार या रूप " आधुनिक " संदर्भों के साथ मिल सकते हैं । पंजाब में पहले औरतों की संख्या पुरुषों की बनिस्बत कम थी अत: विवाह के

---

1. झूठा सच - 1, पृ. 54.
2. - वही - पृ. 494.
3. जिन्दगीनामा - पृ. 168.

अवसर पर लड़की के घर वालों को शुल्क मिलता था । इसे ही आम बोल चाल में " बेटी बेचना " कहा गया । इस प्रथा को अच्छी निगाह से कहीं नहीं देखा जाता । विवाह का एक और तरीका " वट्टे-सट्टे " कहलाता है अर्थात जिस घर में बेटी ब्याही जाती है उसी घर की बेटी को अपने घर में बहू बनाकर भी लाते हैं । मध्यकाल में कन्या को जबरदस्ती भगा ले जाकर उससे विवाह करने की घटनाएं सामन्ती अवशेष वाले अथवा पिछड़े इलाकों में दिखाई दे सकती हैं । भगाकर शादी करने में कभी-कभी लड़की की रजामन्दी भी हो सकती है । प्रेम-विवाहों में भी देखा जाता है कि अक्सर घर वाले नहीं मानते और लड़के-लड़की को घर से भागकर मन्दिर या गुरुद्वारे या कोर्ट में विवाह करना पड़ता है । विवाह का सबसे अच्छा रूप जो अब भी समाज को मान्य है वह है सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं के अनुसार होने वाला कन्या दान । पंजाबी जीवन से सम्बन्धित अनेक हिन्दी उपन्यासों में वहां होने वाले विवाह के लगभग सभी रूपों का थोड़ा बहुत वर्णन मिलता ही है, हां, उनकी स्थितियां और संदर्भ अवश्य ही भिन्न-भिन्न होंगे । " मनुष्य के रूप " में विवाह के कई प्रकारों का जिक्र है । पहाड़ी लड़की सोमा ट्रक ड्राइवर धनराज को अपनी ससुराल वालों के अत्याचार बताते हुए कहती है - " यह लोग समझते हैं कि इन्होंने चार सौ रुपये में पशु खरीदा है । ... मां-बाप भी किस जोर पर कुछ कह सकते हैं । उन्होंने गठरी बांध कर टके नहीं लिये । मेरा बाप पहले तो कहता था कि बड़ी बेटी को लड़के के लिये बहू से बट्टे (बदले) में दूंगा और छोटी को कन्यादान के पुण्य में ।"[1]

आलोच्य उपन्यासों में विवाह के समय अपनाये और निभाये जाने वाले तौर-तरीकों और रीति-रिवाजों का भी कहीं-कहीं, किंचित विस्तार से भी, चित्रण किया गया है । पंजाब में लड़की को सगुन के दिन एकपीढ़ी पर बैठा कर

---

1. मनुष्य के रूप - पृ. 18.

ससुराल से आया हुआ (शगुन का) कपड़ा ओढ़ा दिया जाता है और उसकी गोद में नारियल, किशमिश, छुहारे, बादाम तथा खीलें आदि डाल दी जाती हैं जिन्हें वह बाद में अपनी सहेलियों में बांट देती है ।[1] विवाह से कुछ दिन पहले दुल्हन को " मायाँ " बैठाया जाता है जिसके अन्तर्गत हाथी दाँत का लाल चूड़ा दूध की लस्सी में धो कर लड़की का मामा उसे पहनाता है ।[2] कहीं-कहीं इस अवसर पर लड़की को हल्दी भी चढ़ाई जाती है ।[3] विवाह से कुछ दिन पहले से अनेक विधियाँ पूरी की जाती हैं । इस दौरान विशेष अवसरों पर गीत गाने के लिये गली-मुहल्ले की स्त्रियों को निमंत्रित किया जाता है । गीतों के क्रम में सबसे पहले सोहाग के सात गीत गाये जाते हैं और फिर लड़कियों द्वारा अंचल में प्रचलित लोकगीत और आपसी छेड़ छाड़ से भरे गीत गाये जाते हैं । प्रथा के अनुसार लड़की गानेवालियों में नहीं बैठ सकती ।[4] बारात के खाने के समय दुल्हन के खाने की थाली दूल्हे के पास भेज दी जाती है, जिस पर वह रुपये रख कर वापस कर देता है ।[5] बारात आने पर लड़की के घर से स्त्रियां लड़के के रिश्तेदारों पर गीतों के माध्यम से व्यंग्य करती हैं । ये व्यंग्य कभी-कभी ठेठ गालियों का रूप भी धारण कर लेते हैं । " जिन्दगीनामा " में फ़तेह के निकाह पर बेबे करमों ने सीठनी उठा ली -

> " चाचा न पढ़ेया तेरा दादा न पढ़ेया
> पुत्तर हराम का मसीतो न चढ़ेया
> यह बात बनती नहीं । "[6]

---

1. रात, चोर और चाँद - पृ. 356.
2. - वही - पृ. 358.
3. झूठा-सच - पृ. 292.
4. - वही - पृ. 292.
5. रात, चोर और चाँद - पृ. 361.
6. जिन्दगीनामा - पृ. 227.

इन गालियों का बुरा नहीं माना जाता बल्कि इनका आनन्द उठाया जाता है ।

हिन्दुओं में विवाह के समय दूल्हा-दुल्हन को अग्नि के चारों ओर घुमा कर, भाँवरे लगवा कर, वैवाहिक संस्कार-विधि पूरी की जाती है । " झूठा-सच " में तारा का विवाह इसी तरह होता है जहाँ " एक पंडित जी वर-वधू को आसनों पर एक साथ बैठा कर संस्कार विधि से वेदमंत्र पढ़कर हवन करवा रहे थे ।"[1] सिक्ख पंथ के अनुसार विवाह की रस्म गुरु ग्रन्थ साहब के सामने शब्द कीर्तन के बीच पूरी की जाती है । " रात, चोर और चाँद " में सरनों का विवाह इसी प्रकार हुआ - " एक बार पुनः शब्द कीर्तन शुरू हुआ । दुल्हन का दामन दूल्हे के दामन में बाँध दिया गया और लड़की के रिश्तेदार ग्रन्थ साहब के गिर्द घेरा (बना) कर खड़े हो गये । आगे-आगे दूल्हा और पीछे-पीछे दूल्हन गुरु-ग्रन्थ साहब के चक्कर लगाने लगे ।"[2]

विवाह के पश्चात दूल्हा-दुल्हन का परस्पर परिचय करवाने और उनके संकोच दूर करवाने के उद्देश्य से कुछ रोचक रीतियां निबाही जाती हैं, जैसे मुंदरी खिलाना ।[3] पानी में अंगूठी गिरा कर वर-वधू दोनों को खोजने के लिये कहा जाता है । जिसे अंगूठी मिल जाये वह जीता समझा जाता है । विवाह के बाद जब वधू ससुराल पहुँचती है तो वहाँ भी कुछ रस्मों को पूरा किया जाता है । " झूठा-सच " में तारा के ससुराल पहुँचने पर सोमराज की माँ इन शगुनों और रिवाजों को पूरा करती है - " माँ ने अपनी चाँद की बहू के स्वागत के लिये, उसके गृह-प्रवेश के अवसर पर सब शगुन पूरे किये । बेटी की लड़की को पानी भरा गड़वा (लोटा) हथेली पर लिये द्वार पर खड़ा कर दिया था । माँ ने बहू के देहली लांघते समय कटोरी भर तेल द्वार के दोनों ओर बहा दिया ।"[4] तत्पश्चात् मुँह दिखाई की

---

1. झूठा - सच - 1, पृ. 306.
2. रात, चोर और चाँद, पृ. 362.
3. झूठा - सच - पृ. 307.
4. - वही - पृ. 340.

रस्म में सास, ससुर और घर के सदस्य तथा रिश्तेदार भी वधू का मुँह देखकर आशीर्वाद-स्वरूप जेवर या रुपये उसकी गोद में डालते हैं । [1]

विवाह के बाद दो-तीन दिन में ही लड़की के घर से भाई या कोई अन्य सम्बन्धी जा कर लड़की को मायके ले आता है, जिसे फेरा डालना कहते हैं । अन्यथा ससुराल में समझा जाता है कि मायके में लड़की की चिंता करने वाला कोई नहीं । इसी बात का ख्याल कर " झूठा-सच " की पूर्णदेई अपनी बेटी सीता की ससुराल जाती है । [2] क्योंकि अब वही परिवार की अकेली सदस्य है ।

विवाह के अवसर पर दहेज देने का रिवाज (जिसने एक सामाजिक बुराई का भयंकर रूप धारण कर लिया है) पंजाब में भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है । जब विवाह कन्या दान करके किया जाता है तो कन्या के साथ-साथ नकदी तथा सामान के रूप में दहेज भी दिया जाता है । कई उपन्यासों में दिखाया गया है कि किस प्रकार यह कुप्रथा लड़कियों के विवाह में बाधक होती है और साथ ही विवाह-बन्धन के टूटने, वधू पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाने तथा अयोग्य लड़के को भी सब तरह से योग्य लड़की दिलवाने में सहायता करती है । " दो अकालगढ़ " में नत्थासिंह अपने बड़े लड़के गज्जनसिंह की बचपन में हुई शादी को इस लिये तोड़ने के लिये तैयार हो जाता है क्योंकि उसे लगता है कि उस शादी में दहेज कम मिला था तथा अब लड़के की कहीं और शादी कर देने पर उसे अधिक दहेज मिल सकता है । किन्तु उसके इस मन्सूबे में गाँव वाले उसका साथ नहीं देते । [3] " झूठा-सच " में हर तरह से योग्य लड़की तारा की शादी उसके सर्वथा अयोग्य दुहेजू तथा बिगड़े हुए व्यक्ति सोमनाथ से दहेज प्रथा के कारण ही कर दी जाती है ।

---

1. झूठा - सच - 1 - पृ. 340.
2. झूठा - सच - 2 - पृ. 413.
3. दो अकालगढ़ - पृ. 152.

विवाह की प्रथा कोमल-मधुर, कामनाओं, अभिलाषाओं, उमंग, उल्लास और मस्ती से जुड़ी हुई है । हर तरह से इस अवसर पर खुशियाँ मनायी जाती हैं।पंजाब के समाज में तो इन भावनाओं का कुछ विशेष ही रंग देखने को मिलता है । विवाह के अवसर पर दूल्हा-दुल्हन तो मानो राजा-रानी की भूमिका में होते हैं । युवा वर्ग को इस अवसर पर बुजुर्गों की ओर से अनुशासन में कुछ ढील और छूट मिल जाती है । शराब के दौर तथा फिजूलखर्चों के अनेकों तरीके विवाह के अवसर पर अमूमन देखे जाते हैं । विवाहोपरान्त गिरस्ती की गाड़ी खींचने में पति-पत्नी अपने-अपने समाज और परिवार के रिवाजों के अनुसार लग जाते हैं।

समाज के ये रीति-रिवाज मृत्युपरांत भी मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते । मरने के बाद भी मृतक के घर के लोग परंपरागत रूप से चली आ रही क्रिया कर्म एवं श्राद्ध कर्म की रस्मों को पूरा करते हैं । सामाजिक रस्मों को अक्सर सामाजिक दबाव से और दिखावे की चाह में, कई बार कर्जा ले कर, और अपनी हैसियत से बढ़-चढ़ कर, शानो-शौकत के साथ निभाया जाता है । अगर किसी उम्रदार बुजुर्ग की मृत्यु हुई हो तो फिर तो ये रिवाज एक उत्सव का सा रूप धारण कर लेते हैं। भले ही हृदय में शोक या दु:ख की भावना नहीं हो, फिर भी केवल लोक-दिखावे के लिये झूठा रोना-पीटना और शोक व्यक्त करना सामाजिक रूप से जरूरी प्रतीत होता है । " झूठा-सच " में मास्टर रामज्वाया और उसके भाई बाबू रामलुभाया (क्रमश: गरीब और अमीर दो भाइयों) की मां की मृत्यु के समय का दृश्य कुछ इस प्रकार चित्रित किया गया है - " बड़ी बहू ने सास की मृत्यु की घोषणा करने के लिये, दारूण दु:ख के समय की रीति का ध्यान कर देवरानी को असह्य पीड़ा के ऊँचे स्वर में चीत्कार करने के लिये कहा । "[1] " रीति के अनुसार स्यापे की संगत ऊपर की मंजिल पर नहीं बैठ सकती थी । बाबू रामज्वाया और मास्टर जी की ससुरालों से और गांव से सम्बन्धियों का आना भी आवश्यक था । "[2] बड़े भाई

---

1. झूठा - सच - 1 - पृ. 3.
2. - वही - पृ. 10.

को पत्नी इन रस्मों को छोड़ सीधा-सादा भजन आदि गाने का आयोजन करने के लिये इसलिए तैयार नहीं हुई कि " लोग नाम धरेंगे कि खर्चे से डर गये । "[1]

यह भी रिवाज-सा हो चला है कि दु:ख व्यक्त करने आए पास-पड़ोस के लोग मृतक के गुणों के बारे में बातें करते हैं और बीच-बीच में महिलायें विलाप भी करती हैं । किन्तु आश्चर्यजनक ढंग से इन अवसरों पर शादी-ब्याह की बातें भी पक्की हो जाती हैं । तारा की दादी के स्यापे के अवसर पर ही तारा की सोमनाथ के साथ शादी की बात पक्की होती है ।[2] उपन्यासकार मानों इस भावी विवाह के शोकान्तक होने की ओर कलात्मकता से संकेत कर देता है ।

स्यापे की परंपरागत पोशाक होती है और स्यापा करने का विशिष्ट तरीका और अन्दाज भी । स्यापे की रस्म को अच्छी तरह से पूरा करने के लिये इस कला में पारंगत नाईन को बुलाया जाता है । स्यापे की पोशाक से छूट केवल कुमारी लड़कियों और नवविवाहिता युवतियों के लिये होती है । स्यापे की क्रिया ताल-मेल के साथ ऊँची आवाज में अलाहणियां बोलकर सम्पन्न की जाती हैं । बेताला स्त्रियों को स्यापे से हटा देने का पूरा-पूरा हक नाईन को होता है । " झूठा-सच " और " दो अकालगढ़ " में नाईन या मिरासिनों को बुला कर स्यापा करवाया गया है । " झूठा-सच " की कौला " स्यापा - विशारद समझी जाती थी । सब स्त्रियां स्यापे और सोग के परम्परागत पहनावे में थीं । काले लहंगे और राख घोलकर रंगी हुई मोटी मलमल की खूब बड़ी-बड़ी चादरें । नाऊन दिवंगत भागवान बुढ़िया की दोनों बहुओं के साथ बीच में बैठी । जिन स्त्रियों का जितना निकट का सम्बन्ध था वे उतनी ही निकट, एक के पश्चात एक वृत्तों में बैठ गयीं । "[3] " दो अकालगढ़ " में

---

1. झूठा - सच -1- पृ. 11.
2. - वही - पृ. 18.
3. - वही - 1 - पृ. 3 - 11.

तो नाईन ने पैसे कम मिलने पर नाराज हो कर उलाहणियों के बोलों में ही मृतक तथा उसके घरवालों के लिये एक विचित्र अपमानजनक स्थिति उत्पन्न कर दी जिससे वह प्रसंग काफी समय तक गाँव वालों की स्मृति में ताजा रहा ।[1] स्यापे के लिये नाईन या मिरासनों को बुलाने की प्रथा पंजाब में कैसे पड़ी, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है । संभवत: इसके पीछे पंजाब में निरंतर होने वाले युद्धों और लूट-मार का हाथ रहा हो । संभव है कभी कोई ऐसा आक्रमण हुआ हो जिसमें मृतकों की संख्या जीने वालों से बढ़ गई हो और कई घरों में कोई रोने वाला तक नहीं बचा हो तो बाहर के लोग इस कार्य के लिये बुलाये गये हों । बहरहाल इस विषय में सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है । किराये पर स्यापे करने वालों को बुलाने की परंपरा अब भी पंजाब में निबाही जाती है । स्त्रियों का भी अर्थी के पीछे चलकर श्मशान घाट जाने का रिवाज पंजाब में ही है । " कभी न छोड़े खेत " में करतार की अर्थी के पीछे सबसे आगे उसकी माँ जसवन्तकौर लड़खड़ाती हुई चल रही थी ।[2]

मृतक के घर की विवाहिता बहन-बेटियों को " मरना " दिया जाता है, जिसमें रुपये और कपड़े होते हैं । मृतक के घर तेरह दिन तक श्रीमद् भगवद् गीता और गरूड़ पुराण की कथा का आयोजन होता है । " मय्यादास की माड़ी " का पात्र हरनारायण अपनी बिरादरी तथा आस-पड़ोस के दुख-सुख में अवश्य शामिल होता था । " किसी के घर सोग होता तो तेरह दिन तक हर शाम वहाँ हाजरी देता, श्रीमद् भागवत अथवा गरूड़-पुराण की कथा का अमृतपान करता । "[3]

1· दो अकालगढ़ - पृ· 101 - 102·

2· कभी न छोड़े खेत - पृ· 152·

3· मय्यादास की माड़ी - पृ· 20·

पंजाब में, देहातों में " चादर डालने " का रिवाज है । इस विषय पर आधारित प्रसिद्ध पंजाबी कथाकार राजेन्द्रसिंह बेदी का उपन्यास " एक चादर मैली सी " अत्यन्त लोकप्रिय हुआ । चादर डालने का यह रिवाज विधवा विवाह का एक रूप, एक तरीका है । इसमें किसी व्यक्ति के मरने पर उसका बड़ा या छोटा भाई उसकी पत्नी पर चादर डाल कर उसे अपना लेता है । ऐसा बहुधा किसान परिवारों में होता है । " चादर डालने " की रस्म परिवार के सदस्य के अलावा बाहर का व्यक्ति भी कर सकता है किन्तु इसे बहुत अच्छा नहीं माना जाता । इस रिवाज के पीछे मुख्य कारण जमीन है क्योंकि इस प्रथा से जमीन का बंटवारा नहीं हो पाता और वह घर में ही रह जाती है । जमीन-जायदाद के चक्कर में ही पंजाब में कहीं-कहीं कई भाइयों के बीच एक पत्नी रखने का रिवाज भी है । ऐसा प्राय: ऐसे गरीब परिवारों में होता है जहां जमीन कम होती है । " कभी ना छोड़े खेत " में जगतसिंह जमीन के लालच में आकर अपने मालिक उधोसिंह की पत्नी जसवन्तकौर पर चादर डाल कर उससे करेवा करता है ।[1] बचिंतसिंह जसवन्तकौर से कहता है कि - " वह चिन्ता न करे, जिस घर में जमीन कम होती है वहां सब कुछ सांझा होता है । "[2] इसके साथ-साथ वहां बहुविवाह का चलन भी है । अमीर लोग तो शौक और दिखावे के लिये भी एक से अधिक शादियां करते हैं किन्तु बहुविवाह का मुख्य कारण सन्तान का नहीं होना है । इसके अतिरिक्त जमीन-जायदाद मिलने के लालच में भी कई लोग दूसरी शादी रचा लेते हैं । " कभी न छोड़े खेत " में मिलखासिंह गांव वालों को बताता है कि - " दरबारी ने भी दो शादियां की थीं । उसने रामपुर की रंडी (विधवा) जट्टी ब्याही थी जिसके नाम दस घुमाओं जमीन थी । "[3] बहुविवाह के कारण सौतों में झगड़ा और ईर्ष्या का होना स्वाभाविक है । दूसरी पत्नी के आने पर पहली पत्नी के लिये अपना पूर्व वाला अधिकार छिनते

---

1. कभी ना छोड़े खेत - पृ. 22.
2. - वही - पृ. 22.
3. - वही - पृ. 23.

देखना असह्य हो जाता है । "जिन्दगीनामा" में बख्शासिंह की पहली पत्नी काशीशाह के पास आ कर बिलख उठती है - "मुझे मोहरा दे दे देवरा, सौतन मुझसे नहीं देखी जाती । लाख समझाती हूँ, पर कालजे में भब्भड़ मचे रहते हैं। मेरा दोक्ख इतना ही है न कि अभागी कोख न खुली "[1] गोमां अपनी सौतन भोली की चोटी खींचकर कहती है - "हैंरी दस साल से यह मेरा मर्द । तू कल परणाई और इस पर पूरा कब्जा कर लिया । "[2]

इन रीति-रिवाजों के आइने में पंजाब की जो सूरत सामने आती है वह कुल मिला कर बड़ी जीवन्त छवि वाली है । विभिन्न रीति रिवाजों में भी पंजाबी सामाजिक जीवन का खुलापन ही अधिक झलकता है ।

आधुनिकता :-

भारत में पूँजीवाद, औद्योगीकरण तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रभावों के कारण कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा हुईं, जिनसे यहाँ की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हुए । इसे भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कहा गया । भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में - औद्योगीकरण और पूँजीवाद दोनों का बहुत महत्व रहा । ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई शोषण नीति के बावजूद भारत में रेल-मार्ग के आने से औद्योगीकरण आरम्भ हुआ । इसकी ओर संकेत करते हुए कार्ल-मार्क्स ने भारत-सम्बन्धी अपने लेखों में[3] भविष्यवाणी की थी कि भारत में रेलों का प्रसार

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 110.
2. - वही - पृ. 184.
3. "India's war of Independence" में संकलित। Karl Marx

उसके लिये आधुनिकता का अग्रदूत बनेगा, क्योंकि जिस देश में लोहा और कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है - वहाँ एक बार मशीनों का उपयोग शुरू कर देने के बाद उस के द्वारा मशीनों का स्वयम् निर्माण रोका नहीं जा सकता । किन्तु ब्रिटिश नीतियों के कारण भारत में औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी और एकांगी रही । रेल-मार्गों या समुद्री तट से जुड़े क्षेत्रों में विकास हुआ । इन क्षेत्रों में औद्योगीकरण और शहरीकरण दोनों अपेक्षाकृत स्पष्टत: लक्षित होते हैं, किन्तु जो क्षेत्र तटवर्ती प्रदेश नहीं थे या रेल मार्ग से नहीं जुड़े थे वहाँ विकास की गति क्षीण ही रही ।

पंजाब के शहरों में औद्योगीकरण, तथा आधुनिकता का प्रसार जितनी शीघ्रता से हुआ गाँवों में इसकी गति उतनी ही धीमी रही । गाँवों में इसका प्रवेश सेना, रोजगार की तलाश या फिर पढ़ाई के सिलसिले में शहर जाने वाले युवकों तथा व्यापारियों के जरिये ही हुआ । " दो अकालगढ़ " में फौज से रिटायर हुआ नत्था-सिंह गाँव में आकर रहता है और यहाँ आकर चाय का प्रयोग करता है किन्तु बाकी लोगों के घरों में चाय की पत्ती आड़े वक्त भी मुश्किल से ही निकलती है । चाय के साथ-साथ व्यापारी लोग आम, संतरे, या नींबू से बने ठंडे पेय की बोतलें भी शहरों से गाँवों में ले आये । " चकपीरां का जस्सा " में जस्सासिंह दिन में एक बार ऐसी बोतल पीने जरूर जाता है और धुन्ना के साथ उसका झगड़ा भी वहीं होता है । " मय्यादास की माड़ी " में चित्रित गाँव में रामज्वाया फेरी लगाते वक्त अपनी टोकरी में तथा बाद में स्थायी दुकान में आधुनिक से आधुनिक फैशन की विलायती चीजें रखता है जिनमें से कइयों के नाम स्वयं उसे भी मालूम नहीं होते । किन्तु सही अर्थों में वहाँ आधुनिकता लड़कियों का स्कूल खुलने के साथ आती है । हर अच्छे और नये काम की तरह इस स्कूल का भी कड़ा विरोध होता है । यह स्कूल तो धीमे-धीमे प्रगति की डगर पर चल पड़ता है मगर अन्य कई गाँवों में तो लड़कों के स्कूलों की भी हालत शोचनीय ही रहती है । अलबत्ता शहरों में बड़े-बड़े स्कूल-कॉलेज खुलते हैं । " काले-कोस " में शहर से उच्च शिक्षा प्राप्त सूरतसिंह गाँव में सामूहिक खेती, बच्चों

का स्कूल तथा अस्पताल खोलने की योजनायें ले कर आता है और शुरू में उसे भी गाँव वालों की नाराजगी और तानाकशी सहन करनी पड़ती है । उसका विरोध सबसे पहले उसके अपने घर में ही, उसके पिता से ही, शुरू होता है । उसके पिता उसकी बातों से खिन्न हो कर कहते हैं - " भला मनाओ कि मैं तुम्हारा बाप हूँ । कोई और बाप होता तो मार-मारकर तुम्हारी खाल उधेड़ देता । " [1]

शुरू-शुरू में तो बड़े शहरों में ही कपड़े के कारखाने , छापेखाने खुले किन्तु आजादी के बाद तो यहाँ काफी संख्या में कई चीजों के कारखाने खुलने लगे । " निक्का निर्माण " में निक्का करनाल में खुलने वाले जूतों के कारखाने का उद्घाटन समारोह देखने जाता है । " घास-गोदाम " में मुखिया जखीरा के दोनों ओर बन रही बड़ी-बड़ी इमारतों तथा वनस्पति और तेजाब की मिलों को देख कर हैरान रह जाता है । [2] गाँव वाले बातें करते हैं " अब जो खेती आ रही है .... ट्रैक्टर, खाद, ट्यूबवैल और नये बीज की ... । " [3] गाँवों के लोग घड़ी, मोटर साईकिल, और आधुनिक पहनावे से वाकिफ होते हैं । गाँवों में बायस्कोप की जगह थियेटर्स खुल गये जहाँ नई-नई फिल्में दिखायी जातीं । गाँवों की सीधी-सादी जिन्दगी भी आधुनिकता की लपेट में आती चली गई और गाँव अपना पृथक् अस्तित्व खोते चले गये । आधुनिक साधनों से गाँवों में जहाँ एक ओर भौतिक विकास और सुख-सुविधा का सामान आया वहीं दूसरी तरफ उनका जीवन कठिन होता चला गया । आगे बढ़ने की होड़ उनकी मस्ती, बेलौसपन और बेपरवाही भरा जीवन छीनने लगी है । इस होड़ में पड़कर यहाँ के लोग विदेशों में भी जाते हैं और यहाँ तक कि अपमान भरा जीवन जीने के लिये भी मजबूर होते हैं ।

---

1. काले - कोस - पृ. 59.
2. घासगोदाम - पृ. 90.
3. - वही - पृ. 157.

महेन्द्र भल्ला के "दूसरी तरफ" तथा "उड़ने से पेश्तर" नामक उपन्यास विदेशों में बसे ऐसे पंजाबियों की जटिल जिन्दगी की झलक पेश करते हैं। उनका नायक जीवन स्वदेश वापिस आने की चाह रखते हुए भी यहाँ जल्दी नहीं लौट पाता। उसका सारा समय वापिस आने के लिये पैसे बचाने में ही व्यतीत होता है। वह अपने प्रति विदेशियों के खराब रवैये तथा अपमान भरे जीवन से खौलता रहता है और अंत में सारे सपने त्याग कर वापस भारत लौट आता है और संतोष की सांस लेता है।

आधुनिक समय में उन्नति और विकास की दृष्टि से देखा जाय तो पंजाब आज बहुत आगे निकल चुका है। महिलायें भी इस दौड़ में बराबर भाग ले रही हैं। किन्तु यहाँ मिलने वाला भाईचारा, एक दूसरे के प्रति सद्भावनायें, मिल कर रहने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती जा रही है और यहाँ की हवा में गूंजने वाले ठहाकों और गीतों की खनक मन्द पड़ती जा रही है। पारिवारिक विघटन भी यहां तेजी से जोर पकड़ता जा रहा है। "झूठा-सच" में जयदेवपुरी के माता-पिता उसके व्यवहार से खिन्न हो कर अलग रहते हैं और "कीड़िया" में तो महेन्द्र अपनी पत्नी को तलाक दे कर तथा बच्चे को बोर्डिंग में दाखिल करवा कर पारिवारिक बन्धनों को तोड़ देता है और अकेले रहकर अपने ढंग से जिंदगी गुजारता है।

इस तरह उपन्यासों में चित्रित पंजाबी जीवन को देखने से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि बीसवीं सदी में यह परिवर्तन के तूफानी दौर से गुजर रहा है। आधुनिकता के विविध रूपों ने परम्परागत जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। ऐसे परिवर्तन देश के दूसरे हिस्सों में भी देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से पंजाब की जिंदगी में दिखाई पड़ने वाला बदलाव भी संपूर्ण भारत के आधुनिकीकरण का ही एक हिस्सा बनकर सामने आता है। इस आधुनिकीकरण में परम्परा से विच्छेद नहीं है जो खुशी की बात है। आधुनिकता के बावजूद अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पहचानने तथा उनसे जुड़ने की प्रवृत्ति भी समकालीन पंजाबी जिन्दगी का रोशन पहलू है।

चतुर्थ अध्याय

पंजाबी जीवन के सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यासों का

भाषा मूलक सांस्कृतिक

अध्ययन

साहित्यिक अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का सशक्त साधन भाषा है । साहित्यकार भाषा के माध्यम से ही अपनी अनुभूतियाँ पाठकों तक पहुँचाता है । उपन्यासकार अपनी कृति में, अपने समाज में तथा आसपास घटित होने वाली घटनाओं और परिवेश की यथार्थपूर्ण छवियाँ प्रस्तुत करता है । अपने इस प्रयास में वह भाषा को विश्वसनीय माध्यम बनाता है । इस प्रकार प्रत्यक्षत: भाषा ही पाठक और लेखक के मध्य सार्थक सेतु का कार्य करती है ।

समाज में भाषा कई प्रकार की भूमिकाएँ अदा करती है, जो सामाजिक आवश्यकताओं, परिस्थितियों तथा सामाजिक भेदों तथा स्तरों पर निर्भर करती है । समाज-भाषा वैज्ञानिक आर. फेसोल्ड का भाषा तथा उसके प्रयोग के बारे में कहना है -- " भाषा का प्रयोग कोई व्यक्ति न केवल दूसरों के साथ अपने विचार और भावनाओं को बाँटने के लिये करता है बल्कि भाषा के सूक्ष्म और कभी-कभी स्पष्ट पहलुओं का प्रयोग उन व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक सम्बन्धों को जताने के लिये भी करता है - जिनसे वह संबोधित है अथवा जिन लोगों को वह बात सुनाई पड़ सकती है, यहाँ तक कि ऐसे लोगों से भी जो वहाँ उपस्थित न हों । "[1]

---

1. R. Fasold - The Socio-linguistics of Society. P. 1

इस प्रकार व्यक्ति, भाषा और समाज, इन तीनों में गहरा सम्बन्ध है। भाषा की भूमिका ऐसे कथा-साहित्य में तो और भी महत्वपूर्ण हो उठती है जिसमें किसी समाज के जीवन की छवि को उकेरा गया हो। अपनी कृति में सामाजिक चित्रण को यथार्थ का ताना-बाना पहनाने के लिये लेखक साहित्यिक भाषा में उस समुदाय की भाषा का मिश्रण करता है। यह सायास और अनायास दोनों प्रकार से होता है। शुद्ध साहित्यिक भाषा में लेखक के कथा क्षेत्र की भाषा का रंग रहना तो लाजिमी है, किन्तु केवल सौन्दर्यवृद्धि के लिये भी कभी-कभी जानबूझकर ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। ऐसे में लेखक साहित्यिक साधुभाषा में कहीं बोली-विशेष का केवल लहजा दर्शाता है तो कहीं उस भाषा के विशेष प्रयोग द्वारा उस समाज को सजीव करता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के आलोच्य उपन्यास पंजाब की भूमि तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण वहाँ के समाज और परिवेश का यथार्थ चित्रण करते हैं। उस चित्रण में विश्वसनीयता का रंग भरने के लिये लेखकों ने खड़ी बोली हिन्दी की साहित्यिक भाषा में क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों की वक्त ज़रूरत छौंक लगायी है। साथ ही भाषा में मिलने वाले तत्वों; लोकोक्ति-मुहावरों, लोकगीतों, लोक-कथाओं, आदि का भी सटीक प्रयोग किया है। यह प्रयास पंजाब की पूर्ण जानकारी देने के साथ-साथ पाठक और वर्णित समाज के बीच तादात्म्य स्थापित करने के लिये भी आवश्यक है।

पंजाब में प्रयुक्त भाषाएँ तथा बोलियाँ :-

पंजाब अपनी ऐतिहासिक भौगोलिक और राजनैतिक विशिष्टताओं के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं और बोलियों के लिए भी ख्यात है। भौगोलिक दृष्टि से प्राचीन पंजाब बहुत विस्तृत भूखंड में फैला था { जिसमें पाकिस्तान वाले पश्चिमी पंजाब के अतिरिक्त आज के हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश भी शामिल थे }। राजनैतिक कारणों से भिन्न-भिन्न देशों, प्रदेशों और जातियों के लोग

यहाँ आकर बस गये जिनकी अपनी भाषाएँ थीं, इसीलिए पंजाब में कई भाषाओं तथा बोलियों का स्पष्ट प्रचलन मिलता था। डॉ॰ महीपसिंह अपने लेख - "हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन" में बताते हैं - "उन्नीसवीं शती तक पंजाब में भाषा-विभेद और विवाद अधिक नहीं था। इस समय तक विभिन्न संदर्भों में पंजाब में चार भाषाओं का प्रभाव था। 1· फारसी - लाहौर के मुसलमान और सिख शासकों की राजभाषा थी, साथ ही राजकाज से सम्बन्धित अभिजात वर्ग की भाषा थी। 2· पंजाबी - पंजाब के जनजीवन की भाषा थी। 3· हिन्दी (ब्रज भाषा) - पंजाब के सिख गुरुओं के प्रभाव क्षेत्र और उसके बाहर के क्षेत्र के हिन्दू-सिख कवियों ने उन्नीसवीं शती के अन्त तक अपनी काव्याभिव्यक्ति की मुख्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा को बनाए रखा। 4· उर्दू - अंग्रेजों के शासन-काल में राजकाज की स्थानीय भाषा का स्थान, फारसी के स्थान पर धीरे-धीरे उर्दू ने ले लिया। पंजाब में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर भारत-विभाजन (1947) तक शिक्षा, राजकाज और साहित्य रचना की मुख्य भाषा उर्दू रही। पाकिस्तानी पंजाब में आज भी उसका वही स्थान है।"[1]

लेकिन आधुनिक काल में पंजाब के भौगोलिक चेहरे में परिवर्तन होने तथा शासन और समय के बदलाव के साथ उर्दू-फारसी धीरे-धीरे लुप्त होती गईं और अंग्रेजी भाषा दिखाई पड़ने लगी। अंग्रेजों का शासन होने से शासकों की भाषा का थोड़ा-बहुत चलन स्वभाविक भी था जो कि अधिकांशतः शहरों में ही सीमित रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेजी कुछेक टूटे-फूटे शब्दों तक ही सीमित रही।

1· हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन (सम्पादक - डा·मलिक मोहम्मद) पृ· 218-219

हिन्दी में पंजाबी जीवन और समाज को लेकर लिखे गये उपन्यासों में विभिन्न कालखंड विवेचित हुए हैं। कुछ उपन्यास तो पंजाबी क्षेत्र की कई पीढ़ियों की दास्तान प्रस्तुत करते हैं। लम्बे समय के दरम्यान पंजाब के भूगोल, समाज और राजनीति में अनेक बदलाव आये। आज का पंजाब पुराना पंजाब नहीं रहा। इसके कई टुकड़े हो गये। इसका एक हिस्सा पाकिस्तान में चला गया और कुछ हिस्सों को हरियाणा तथा हिमाचल-प्रदेश जैसे नए भारतीय राज्यों का रूप दे दिया गया। अत: आज के पंजाब में पुराने पंजाब की सांस्कृतिक विरासत को भाषा के स्तर पर भी स्पष्टत: महसूस किया जा सकता है। उपन्यासकारों ने अविभाजित पंजाब तथा विभाजित पंजाब दोनों का भाषा में चित्रांकन प्रस्तुत किया है। स्वाभाविक रूप से साहित्यिक खड़ी बोली यहाँ आधारभाषा का काम कर रही होती है, लेकिन वास्तविकता तथा यथार्थपूर्ण अंकन के अनुग्रह से अधिकांशत: आम बोल-चाल की खड़ी बोली ही प्रयुक्त हुई है। विश्वसनीयता के तकाजे ने आम-फहम खड़ी बोली में समय, परिस्थिति, पात्र आदि के अनुरूप अन्य भाषाओं तथा उनके कई भाषिक रूपों को भी उपस्थित कर दिया है। इन उपन्यासों में पंजाबी भाषा का प्रयोग किया जाना उचित ही है। इसी तरह अंग्रेजी, डोगरी, हरियाणवी जैसी भाषाएँ भी स्वभाविक रूप से स्थान-काल-पात्र के अनुसार जब-तब दिखायी देती रहती हैं।

कथाक्षेत्र अथवा पात्रों की जन्म भूमि आदि की दृष्टि से भाषा और बोलियों का वैविध्यपूर्ण प्रयोग उपन्यास के शिल्प में एक प्रकार की सहजता भी उपस्थित कर देता है। फलस्वरूप उपन्यासों में खड़ी बोली, पंजाबी, अंग्रेजी, हरियाणवी, डोगरी के अतिरिक्त पंजाबी की अनेकानेक बोलियाँ जैसे मुलतानी, दुआबी, पहाड़ी, माझी, लुधियानी, पुआधी, राठी, मलवई, भटियानी आदि का धड़ल्ले से प्रयोग मिलता है। इन सभी भाषाओं और बोलियों का

विशुद्ध रूप से प्रयुक्त होना उपन्यास के लिए जरूरी नहीं और वैसे भी भाषाओं और बोलियों का खिचड़ी और वर्णसंकर रूप ही यथार्थ और वास्तविक जिन्दगी में मिलता है। जिस तरह से दुनिया की कोई भी जाति विशुद्ध रक्त की नहीं कही जा सकती, वैसे ही कोई भाषा या बोली भी विशुद्ध नहीं। उलटे जो भाषा या बोली जितना ही दूसरी भाषा और बोलियों से संपर्कित होगी, उसका उतना ही अधिक विकास होगा। किसी एक भाषा का प्रयोग करने वाली जाति जब दूसरी जातियों के संपर्क में आती है तो उसकी भाषा में परभाषा के तत्वों का आ जाना स्वाभाविक है और इस संपर्क से भाषा समृद्ध होती है। भाषा की समृद्धि उसके बोलने वालों की स्थिति को भी किसी न किसी प्रकार से द्योतित करती ही है। पंजाबी जीवन का चित्रण करने वाले हिन्दी उपन्यासों में ये समस्त भाषा प्रयोगगतगुण दिखायी पड़ते हैं।

अत: पंजाब के जन-जीवन को प्रस्तुत करने वाले इन उपन्यासों में कथा-क्षेत्र में प्रचलित भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया गया है।

वैसे तो हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है किन्तु पंजाब के लोग इसे अधिक मान्यता देते हैं। औपचारिक संदर्भों में हिन्दी बोलने तथा हिन्दी भाषी कहलाने में वे गर्व महसूस करते हैं। डा॰नरूला बताते हैं कि - " भारत में मध्यमश्रेणी का पंजाबी हिन्दू और पाकिस्तान में पंजाबी मुसलमान, पंजाबी भाषा और पंजाबीपन के स्वतंत्र अस्तित्व का तीव्र विरोध करता है। भारतीय पंजाब में हिन्दू समाचारपत्रों तथा मध्यमश्रेणी के हिन्दू नेताओं की प्रार्थना पर उस राज्य के हिन्दुओं ने पिछली जनगणना {1951} में अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखाई थी, उन पंजाबी हिन्दुओं ने भी जो जन - संख्या प्रगणकों के प्रश्न का उत्तर अत्यन्त साधारण हिन्दुस्तानी में भी न दे

सकते थे ।"[1] स्वाभाविक है कि पंजाब के लोग जब हिन्दी बोलते हैं तो उनकी हिन्दी पंजाबीपन लिये होती है । इसके बावजूद पंजाब के बहुत से साहित्यकार हिन्दी में लिखते रहे हैं । ऐसी स्थिति में पंजाब पर आधारित रचनाओं की मूल-भाषा हिन्दी होने पर भी उस भाषा में पंजाबी या पंजाब में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं का असर दिखाई पड़ता है ।

अब हम हिन्दी के उपन्यासों में पंजाबी जीवन को अभिव्यक्त करने वाली भाषा के कतिपय महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाले वैशिष्ट्य पर विचार करेंगे ।

पंजाबी लहजे की हिन्दी :-

पंजाब में बोली जाने वाली हिन्दी को अगर ध्यान से सुनें तो उस में पंजाबी के शब्दों के साथ-साथ पंजाबी लहजा भी साफ सुनाई पड़ता है, जो अस्वभाविक नहीं है । यह स्थिति उपन्यासों की भाषा में भी दिखाई पड़ती है । उदाहरणस्वरूप " तमस " में { एक पात्र } बख्शी जी कहते हैं - " क्यों तूने मेरा चेहरा देखना है या मेहता जी का देखना है । "[2]

यहां बख्शी जी " तुझे " के स्थान पर " तूने " का प्रयोग करते हैं जो कि स्पष्ट रूप से उनकी मातृभाषा पंजाबी का असर है । अनेक स्थानों पर वर्णन क्रम में लेखकों की भाषा भी अपनी मातृभाषा से प्रभावित होती दिखायी देती है जो वास्तव में लेखक द्वारा उपन्यास में स्वाभाविकता लाने का सराहनीय प्रयास ही है ।

---

1. शमशेरसिंह नरूला, हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० 134

2. तमस - पृ. 18.

" तमस " में ही कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता देवव्रत की माँ कहती है - " देखता नहीं "कौन सा वक्त " उमर आया है ।"[1] यहाँ " कैसा वक्त " के स्थान पर बोलचाल के अनुसार " कौन सा वक्त " का प्रयोग किया गया है ।

" मय्यादास की माड़ी " में पुरोहित शरारती लड़कों से कहता है - " मसखीरयां " करते हो । "[2] यहां " मसखरी" को पंजाबी प्रभाव से " मस - खीरयां " बना दिया गया है । इसी प्रकार भागसुद्धी पुरोहित से कहती है " पुरोहिता, पापिया, कोई बुरा काम नहीं करना, नहीं तो नरकों में जायेगा "[3] यहाँ क्रमशः " पुरोहित, पापी और नरक " को " पुरोहिता, पापिया " और " नरकों " करके उच्चारण किया गया है जो स्पष्टतः पंजाबी लहजे का असर है ।

बलवन्तसिंह के " रात, चोर और चांद " में भी ऐसे वाक्य सुनाई पड़ते हैं - " बेटा आशक ! कहो क्या हाल है । "[4] तथा " तुम बड़े कामे हो "[5] यहां " आशिक " और काम करने वाले के लिये रेखांकित शब्द इस्तेमाल किये गये हैं । इसी प्रकार " ओये शेरू लंगया "[6] मे लंगड़े के प्रति किया गया संबोधन दिलचस्प है और ठेठ पंजाबी लहजा है ।

---

1. तमस - पृ. 140.
2. मय्यादास की माड़ी - पृ. 16.
3. - वही - पृ. 14.
4. रात, चोर और चांद - पृ. 133.
5. - वही - पृ. 166.
6. - वही - पृ. 4.

बलवन्तसिंह का " चक्पीरां का जस्सा " भी इस आंचलिक प्रभाव से अछूता नहीं । जैसे - " सारी उम्र इसी रंग-ढंग से नहीं निभने की " [1]

यहाँ " निभेगी " के बजाय " निभने की " कहलवाया गया है । इसी प्रकार चाचे,[2] हरिपुरे,[3] जवानियाँ[4] आदि शब्द भी क्रमशः चाचा, हरिपुर तथा जवानी शब्दों के ही रूपांतर है । बस लहजे और उच्चारण का फर्क है । " कालेकोस " में एक दिलचस्प उदाहरण मिलता है - " माराज हमनूँ लम्बी चौड़ियाँ बाताँ दी जरूरत नहीं । हम नूँ तो इह बतादेव कि करना क्या है " [5] यह पंजाबी हिन्दी का टिपिकल रूप है ।

कई बार वाक्य में शब्दों का स्थान बदल कर भी बोला जाता है । चक्पीरां का जस्सा में गाँव की औरतें रामप्यारी से कहती हैं - " लेकिन बहन हमने कष्ट तो दिया ना आपको । " [6]

" कीड़ियाँ " में सरदार जी अपनी पत्नी सतवन्त से कहते हैं - " बहुत बोला नहीं कर सत्तो । " [7]

" तमस " में बख्शी जी कहते हैं - " मेहता जी, इसकी बात को बस सुन छोड़ा करो । " [8]

---

1. चक्पीरा का जस्सा - पृ. 32.
2. - वही - पृ. 137.
3. - वही - पृ. 141.
4. - वही - पृ. 142.
5. काले कोस - पृ. 274.
6. चक्पीरा का जस्सा - पृ. 83.
7. कीड़िया - पृ. 62.
8. तमस - पृ. 19.

उपन्यासों की भाषा में पंजाबी लहजे के साथ-साथ पंजाबी शब्दों की भी बहुतायत मिलती है, जिससे वर्णन में क्षेत्रीय रंगत आने के साथ-साथ रोचकता भी बढ़ती है। बलवन्तसिंह " रात, चोर और चांद" में लिखते हैं - " पानी ओलू में गिर कर तलमलाता, कलमलाता और झाग उड़ाता आड़ (नाली) में बह निकलता था, " [1] पालीसिंह अपनी माँ से कहता है " झाड़न रोटियों के छिक्के (टोकरी) में होना चाहिये था। " [2]

" चकपीरां का जस्सा " में बलवन्तसिंह लिखते हैं - " इस प्रकार की सभी लड़ाइयाँ मेले के अन्तिम दिन भुगताई जाती थीं। " [3] बग्गासिंह घर आए अपने भतीजे तथा उसे छोड़ने के लिये आये बूढ़े और उसके घोड़े को देख कर अपने दोस्तों से कहता है - " ओए ! ये तीन खोते कहाँ से आ गये हैं। " [4] घर का मुँहलगा पुराना नौकर रहीम भजनों से बातचीत के दौरान कहता है - " कई भुजंगी (बच्चे) सारे घर में हुड़दंग मचाते फिरेंगे। " [5]

" कीड़ियाँ " में सतवन्त अपनी सहेली प्रमिला से मजाक में कहती है - " पम्मी मुई, हमारे घर न आया कर, अगर मेरे सरदार जी बौंतर गये तो तुझे कच्चा खा जाउंगी। " [6]

---

1. रात, चोर और चांद, - पृ. 167.
2. - वही - पृ. 165.
3. चकपीरां का जस्सा - पृ. 183.
4. - वही - पृ. 25.
5. - वही - पृ. 217.
6. कीड़ियाँ - पृ. 61.

" रात, चोर और चांद " में नौजवान युवक आपस में हंसी-मजाक तथा बातचीत करते हैं - " उसे हत्थे चढ़ाना आसान नहीं, "[1] " अबे तूं तो मेरा हानी है । "

" मेरी तेरी उसकी बात " में घर की बूढ़ी नौकरानी लाड़ से कहती है " हाय धिये क्यों पढ़ती है ऐसी किताब । "[2] "एक मुंडा [लड़का] आया था । "[3]

इस तरह के हजारों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, किन्तु अनावश्यक विस्तार की आशंका से लोभ संवरण करना उचित होगा । खड़ी बोली में पंजाबियत के मेल से एक अपूर्व व्यंजनात्मक, पौरुष तथा खानगी आ जाती है, इसे इन उदाहरणों में महसूस किया जा सकता है । आंचलिकता के आन्दोलन के प्रथम दौर के लेखकों में फणीश्वरनाथ रेणु और बलवन्त सिंह खड़ी बोली हिन्दी भाषा के दो अलग ही तेवर ले कर आये थे । रेणु ने बिहार राज्य के पूर्णिया अंचल को अपनी कथा रचनाओं से साकार कर दिया तो बलवन्त सिंह ने अपने उपन्यासों की चुलबुली और जिन्दादिल भाषा के माध्यम से पंजाबी मानसिकता के रोमांस और अति साहस को जिवंतता प्रदान कर दी । बाद में कृष्णा सोबती ने " जिन्दगीनामा " की भाषा में इस आंचलिक रंगत को एक नया अदांज, नया निखार दिया और विस्तार भी । अन्य उपन्यासकारों ने भी पंजाबी लहजे और तेवर वाली खड़ी बोली का इस्तेमाल करके हिन्दी भाषा की शब्द-सम्पदा-ग्रहण करने की असीम क्षमता को मानो रेखांकित किया है । इन उपन्यासों से हिन्दी भाषा समृद्ध हुई है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

---

1. रात, चोर और चाँद, पृ. 104
2. मेरी तेरी उसकी बात - पृ. 177.
3. - वही - पृ. 165.

हिन्दी कथा साहित्य के माध्यम से हिन्दी में पंजाबी के कितने शब्द आये हैं, यह अलग से शोधपूर्ण अध्ययन का रोचक विषय हो सकता है। दूसरा कारण पंजाब के निवासियों का भारत के दूसरे राज्यों में फैल जाना भी है और इससे भी हिन्दी और पंजाबी में निकटता आई। हिन्दी भाषी क्षेत्र के लोगों का पंजाब में जाना भी एक कारण है, जिससे हिन्दी को पंजाबी भाषा के शब्द और लहजे-प्राप्त हुए।

खड़ी बोली में पंजाबी शब्दों और लहजे के द्वारा उपन्यासकारों को अपनी कथावस्तु, पात्र, परिवेश आदि का विश्वसनीय अंकन करने में अतीव सफलता मिली है। इनसे ऐसी अद्भुत बिम्बात्मकता की रोचक सृष्टि होती है कि पाठक-मन कथा- प्रवाह में मंत्र-मुग्ध हो कर बहता चला जाता है। पंजाब की जिन्दगी की सच्चाई को वह मिश्रित भाषा के माध्यम से विस्मित होता हुआ ग्रहण करता है।

ठेठ पंजाबी भाषा का प्रयोग :-

पंजाबी की जिंदगी कथ्य होने के कारण इन हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी भाषा का मिलना स्वाभाविक ही है, किन्तु हिन्दी पाठकों को दुरूहता और क्लिष्टता से बचाने के लिये अधिकतर छोटे सरल वाक्यों या वाक्यांशों के रूप में ही पंजाबी का यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों का भी जैसे एक पैटर्न है क्योंकि अक्सर ऐसे प्रयोग कहीं वाक्य के शुरू में तो कहीं मध्य और अन्त में पंजाबीपन के लिए छौंक बनाकर रखे गये हैं। पूरे-पूरे वाक्यों का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ज्यादातर खड़ी बोली में कुशलतापूर्वक पंजाबी के टुकड़े पिरोये गये हैं। " दो अकालगढ़ " में दीदार सिंह अपने बड़े भाई गज्जलसिंह से कहता है - " अब तुम छड़े-छांड नहीं हो।[1]

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 519.

अपने दोस्त नूरे की शादी का बंदोबस्त करा कर उसे बुरे काम छोड़ने को कहता है - " शादी के बाद तुम्हें बन्दे दा पुत्तर बनना पड़ेगा । " [1]

"मुट्ठी भर कांकर " में पश्चिमी पंजाब से विभाजन के समय भागकर आया सरदार अत्तरसिंह गाँव में कपड़े की फेरी लगाने के लिये जाता है तो गाँव के दुकानदार दुनीचंद के तानों के जवाब में कहता है - " लाला जी, असाँ तुमसे माँगकर नहीं खाते " [2] " घासगोदाम " में रिफ्यूजी रामदयाल गाँव के नजदीक चाय का खोखा लगाता है, अपनी तरफ़ के पंजाबी रणजीत के आने पर वह दिली खुशी जाहिर करता है - " सवेरे से ही कव्वा बनेरे पर बैठा पुकार रहा था " [3] " झूठा सच में अत्याचारियों और दंगइयों के द्वारा सताई तथा बन्दी बनाई गई स्त्रियाँ कहती हैं - " गुरु महाराज कक्ख न छड्डे इन जालिमो का " [4] " तमस " में मुस्लिम तांगेवाला दंगों के दौरान जबरदस्ती उठाकर लायी गई हिन्दू लड़की से कहता है " मिठाई ए, सूरे निये धीये, ज़हर नहीं " [5] " चक्पीरों का जस्सा " में बग्गासिंह के दोस्त उसे समझाते हैं - " तुम यमले जट बगुलाभगत हो किसे लंडे में ना फँस जाना । " [6] "रात, चोर और चाँद " में पालीसिंह के गाँव वापस आने पर उसके बचपन के दोस्तों के साथ अनजाने में झड़प होने के बाद पालीसिंह कहता है - " तुमने खुद ही पंगा लिया था " [7]

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 522
2. मुट्ठी भर कांकर - पृ. 2.
3. घासगोदाम - पृ. 161.
4. झूठा - सच - पृ. 426.
5. तमस - पृ. 246.
6. चक्पीरों का जस्सा - पृ. 100.
7. रात, चोर और चाँद - पृ. 22.

उपरोक्त उदाहरणों में, जो जहाँ-तहाँ से चुन कर प्रस्तुत किये गये हैं, पंजाबी शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग हिन्दी वाक्यो के बीच में हुआ है, इसी प्रकार हिन्दी वाक्यों के आरम्भ और अन्त में भी पंजाबी भाषा के टुकड़े का प्रयोग देखा जा सकता है। "जिन्दगी नामा" में दादी करमबीबी पड़ोस की लड़की शीरी की सुघड़ता से आकर्षित हो कर पूछती है - "कुड़े शीरीं, तेरी माँ ने अब तक तेरा ब्याह क्यों न किया।" [1] रसूली अपने पति से कहती है - "माँ-पुत्तर दोनों मिलकर कर लो बूटेमारी।" [2] रावीपार में रहट की गद्दी पर बैठा-बैठा आदमी बैलों के रुक जाने पर उन्हें हाँकते हुए कहता है - "ओय! साईं मरजे (तुम्हारा मालिक मर जाये)! चलो बढ़े चलो।" [3] अखण्ड पाठ के दौरान चँवर हिलानेवाला लड़कियों द्वारा शोर मचाने पर उन्हें डाँटता है - "कुड़ियों! यहाँ चुप करके बैठो या बाहर जाके गपोड़े मारो।" [4] बागड़सिंह अपने मालिक काबलासिंह के बारे में बूड़सिंह से कहता है - "ओय मेरा प्यो (बाप) जो बैठा है उमर।" [5] तारासिंह अपनी भैंसे चुराने वाले बागड़सिंह से कहता है - "अच्छा पुत्तर, हम भी तुझे वट्टोवट्ट (सीधे रास्ते) डाल देंगे।" [6] "दो अकालगढ़" में सरदार गुलजारासिंह अपनी पत्नी से कहते हैं - "स्पी दी बेबे! यह बड़ी खुशी की बात है कि हमें बूटासिंह जैसे आदमी का

---

1. जिंदगीनामा - पृ. 81.
2. - वही - पृ. 135.
3. रावी पार - पृ. 62.
4. - वही - पृ. 83.
5. - वही - पृ. 54.
6. - वही - पृ. 118.

रिश्ता मिल गया । "[1] फिलौरासिंह अपने बड़े भाई गुलजारासिंह से कहता है - " भाजी ! बिगड़ी बात बने या न बने । "[2] " झूठा-सच " में सुरेन्द्र तारा से प्यार से झिड़ती है - " चल भैड़ी ! बुरी लड़की ! मैं नहीं बोलूँगी तुझसे । "[3] जाहिर है कि कहीं-कहीं केवल पंजाबी के संबोधन मात्र ही खड़ी बोली का जायका बदल देते हैं ।

लेकिन कुछ प्रसंगों में पूरे-पूरे वाक्य पंजाबी के मिलते हैं कुछेक स्थानों पर पूरी बात पंजाबी भाषा में ही कही गई है । यह यथार्थ खोजी लेखक की विवशता भी है और उसकी शैल्पिक कुशलता भी । पंजाबी का रंग कहीं-कहीं इतनी जीवन्तता से सामने आता है कि कथाकार मानो चाहने लगता है कि पंजाब के जीवन से परिचित होने वाले पाठकों को पंजाबी भाषा की एकाध अच्छी झलक भी कहीं-न-कहीं मिलनी ही चाहिये । " तमस " में मुसीबत के समय अपने घर में सरदार हरनामसिंह और उसकी पत्नी को शरण देने वाली राजो उनके गहने लौटाते हुए कहती है - " ऐह तुहाडे सन्दूक विचों मिले हन । मैं कढ़ लियायी हाँ । "[4] वह उनके दु:ख में शामिल होते हुए कहती है " रब्ब घरों बेघर किसी आँ न करे । रब्ब दी मेहर होई ताँ सब ठीक हो जाएगा । "[5] नाजुक परिस्थितियों, मन:स्थितियों के अंकन के संदर्भ में उपन्यासकार का यथार्थ के लिए आग्रही मन पंजाबी भाषा की खानगी को बाधित नहीं करना चाहता, ऐसा प्रतीत होता है । दर्जी

1· दो अकालगढ़ - पृ· 523·
2· - वही - पृ· 541·
3· झूठा सच I, - पृ· 185·
4· तमस - पृ· 222·
5· - वही - पृ· 210·

करमबख्श और कपड़े सिलवाने के लिये आई स्त्री के बीच होने वाली छोटी बातचीत में ठेठ पंजाबी भाषा का रस मिलता है - " बे बख्शिया हूँ कपड़े की देवें - मरसे या फेरे ही पवांदा रहसें ? " " जद मैं कहूँदा रिहा बीबी भेजो कपड़े भेजो कपड़े, तुसाँ कुझ न कीता, सारियाँ सरदियाँ लँघा दित्तियाँ । हुण वक्त ताँ लगदे । सोलह हत्थ ताँ नहीं मेरे । " [1]

" मुट्ठी भर कांकड़ " में ग्रिम वंज लाला रामदयाल गाँव के चौधरियों से कहता है - " आओ नाँ लारी तुम्हें छोड़कर न भाग सी । इत्थाँई रुक सी । दाह-पन्द्रह मिनट ते जरूर रुक सी । ड्रैवर क्लीनर चाय-पानी पी के ही चल सी । " [2] दुकानदार अत्तरसिंह गाँव के लोगों को अपने मीठे व्यवहार से आकर्षित करते हुए कहता है - " मालिकों, कपड़ा जित्थों मन चाहे खरीदना । चाय ते पी सों । " [3] गाँव के बाहर पेड़ के नीचे बैठे सरदार अत्तरसिंह पर उसकी पत्नी नाराज होती है - " तक्को ना, तुसाँ भी ताँ कमाल करदे पये ने । भौन उप्पर बैठे सी । मकोड़ा न लड़ सी ते वेह प्यार कर सी । ... कुत्ता जमीन ते बैठ सी ता पों नाल पहलाँ जगह साफ कर सी । तुसी ताँ कुझ भी नये तकने ... पड़ोसा मार बैठ जाने ने । " [4]

" कभी न छोड़े खेत " में करतार के मरने पर उसका ताऊ बचिंतसिंघ विलाप करता है - " ओ लोको, इन्हा मिलकर मेरा मुण्डा मार दित्ता ", " ओये लोको, असीं जींदे मर गये" बस अड्डे पर फल बेचने वाले आवाजें

1· तमस - पृ· 97·
2· मुट्ठी भर कांकड़ - पृ· 180·
3· - वही - पृ· 194·
4· - वही - पृ· 40·
5. कभी न छोड़े खेत - पृ· 148

लगाते हैं -" ठण्डी ते मिट्ठियां गंडेरियां । सहारनपुरी पोने ३ गन्ने ३ की । चूसो ते कलेजा ठंडा करो । "[1]

" शहर में घूमता आईना " में बंसी शहर में मुनादी करते वक्त जोश से बोलता है - " अज्ज शाम दे साढ़े पंज बजे सिटी कांग्रेस कमेटी वल्लों इक शानदार जलसा नदीराम दे तलां उत्ते होएगा, ते ओस जलसे विच सैयद अताउल्लाह शाह बुखारी दा जोरदार लक्चर होएगा । ... की बोलदे ने मोती रोलदे ने । हसान्दे वी ने, ते रुलान्दे वी ने । लेक्चर तो पहलां कवि झुम्मन अपने नवें बैंत सुनाणगे, ते नवां रंग लाणगे ।"[2] " मण्डी सोडा वाटर फैक्टरी " के मालिक फकीरचन्द अपने नौकर से कहते हैं - " चल्ल ओए ढीक्या, दो पैसे दी बर्फ होर ले आ, ते रोज़ दिया तिन्न बोतलां खोल के एहना नूं पिला । "[3] मुहल्ले की औरतों में होने वाली लड़ाइयों या झगड़ों, खुशामद या चुगलियों में ही किसी भी भाषा या बोली का ठेठ तेवर देखने-सुनने को मिलता है । पंजाबी के ये रूप भी देखिये - " ते दे दे न अपनी धी किसे चूहड़े - चमार नूं, स्वराज जल्दी मिल जाये ..." " नीं भैणा, आदमी कर लिया ना, घर विच गन्दगी तां नेई फैलायी, देरां - जेठां नाल खेह तां नेहीं उड़ायी "[4] " नीं, खेह उड़ानी सी तां पई उडांदी मंडी विच, कोई पुच्छन जांदा सी, पर मुहल्ले विच अपने देवर दी छाती उत्ते मूंग दलना ते चंगा नेई । "[5]

---

1. कभी न छोड़े खेत - पृ. 85
2. शहर में घूमता आईना - पृ. 128.
3. - वही - पृ. 261.
4. - वही - पृ. 375.
5. - वही - पृ. 376.

" चक्पीरां का जस्सा " में जस्सासिंह से उसके चाचा बग्गासिंह के बारे में मुंहलगा बूढ़ा नौकर जागीरसिंह कहता है - " जद तो राम - प्यारी ने तेरे चाचे दी ढू उत्ते लत्तमारी है, तद तो तेरे चाचे दी मण दियां अक्खां खुल गइयां ने । "[1]

" एक नन्हीं कन्दील " में अपने परिचित का नया प्रसिद्ध नाम सुनकर एक स्त्री आश्चर्य व्यक्त करती है - " हाय हाय एह ते मोइया सोहनलाल है, एह हुण देवदर्शन हो गया है । मैं वी आक्खां केहड़ा देवदर्शन आया है । "[2] हलवाई चेतन को थोड़ा ठहरने को कहता है - " बस एहणों पहलवानां नूं बना देआं, फेर तुहानूं देन्दा हां । ... लओ बाश्शाहो, हुणे बन जान्दी ए । अन्दर आराम नाल बैठो, ऐत्थे की खड़े रओगे । .. रत्ती भर फ़िक्र न करो बाश्शाहो । तुहाडे मन मुताबिक बनेगी । "[3] स्कूल में मास्टर बच्चों को डांटता है - " भूतनी देआ पुत्तरा, जे तेरा सिर कट्ट के एस पासे रख लेया जावे ते धड़ ओस पासे, ते अच्छा लगेगा । "[4]

" बांधो न नाव इस ठांव " में मजदूर मिस्त्री चेतन की पत्नी चंदा को देखकर आवाज़ कसते हैं - " ओए गामे, कोई जवानी ए भा प्पे, समन्दर दी तुगियानी ऐ, तुगियानी । "[5] चेतन की शिकायत पर पुलिस हेड कॉन्स्टेबल एक सिपाही को बुलाकर आदेश देता है - " जा जरा ओस

---

1. चक्पीरां का जस्सा - पृ. 267.
2. एक नन्ही कंदील - पृ. 113.
3. - वही - पृ. 42.
4. - वही - पृ. 220.
5. बांधो न नाव इस ठांव (।) - पृ. 27.

मुलण्टे नूं बुला लया । साले बच्चेयां नूं ठगदे ने । आदमी-कु-आदमी वी नई वेखदे । "[1]

" काले-कोस " में बग्गू सांहसी और विरसासिंह के बीच हुई लड़ाई में मात खा कर सांहसी विरसासिंह के बारे में पूछता है - " ओय ! ओ अनदाढ़िया मुंडा कित्थे गयाए । "[2]

तनाव, जोश, द्वन्द्व, सहजता आदि मनःस्थितियों और वृत्तियों को भाषा के माध्यम से साकार करने के लिये उपन्यासकारों ने पंजाबी के पूरे वाक्यों का सहारा लिया है और चरित्र तथा परिवेश को मूर्तिमान बना देने में सफलता पायी है । मगर ऐसे स्थल अधिक नहीं है, क्योंकि ये उपन्यास हिन्दी के हैं, पंजाबी के नहीं । पूरे वाक्यों के प्रयोग से पंजाबी भाषा की सुन्दरता ही सामने नहीं आती बल्कि पंजाबी जीवन का सच्चा सौन्दर्य-भीतरी सौन्दर्य भी सामने आता है ।

हरियाणवी भाषा का प्रयोग :-

हरियाणा और पंजाब आज दो अलग राज्यों के रूप में पहचाने जाते हैं जबकि हरियाणा पहले पंजाब का ही एक हिस्सा था । अतः इन उपन्यासों में से कुछ में विशेषकर जगदीशचन्द्र के उपन्यासों में पंजाब के इस हिस्से पर अलग से भी लेखनी चलाई गई है और वहां के जीवन और भाषा के सौन्दर्य को समेट लिया गया है । " मुट्ठी भर कांकड़ " में गांव का जाना-माना बुजुर्ग ताऊ,

---

1. बांधो न नाव इस ठांव (।) - पृ. 40.
2. काले - कोस - पृ. 18.

नौजवान पहलाद के बेहोश हो जाने को उसका खिलवाड़ मानकर गाँव वालों से कहता है - " के हो गया पहलाद को ? जब देखो अँडुवा बैल की तरह आल करे है । "[1] गाँव का एक व्यक्ति, शरणार्थी अत्तरसिंह और रामदयाल को गाँव में प्रवेश करने पर टोकता है - " राना झोटा की तरह कित मुँह उठाये जा रहे हो । "[2] ताऊ गाँव के एक लड़के को तेज चलने के लिये कहता है - " ए छोरे तेरे पाँव में क्या कीड़ा पड़ रिहा से जो लंगड़ी घोड़ी की तरह चले से । "[3] जमीन एक्वायर होने की खबर सुनकर गाँव के कम्मी लोग मुखिया तथा अन्य चौधरियों के पास आते हैं - " मुखिया जी, हमने एक बात सुनी से । बस उसी बखत से हमारे चारों तरफ अँधेरा छा रिहा से । "[4] पहलाद द्वारा गाँव की जमीनों का सौदा कर आने का इल्जाम लगाने पर मुखिया गुस्से में गाँव के लोगों और सूबेदार मांडूसिंह से कहता है - " पहलाद कहे से कि मैं इनकी जमीनों का सौदा कर आया हूँ । यह बात इसकी लुगाई ने इसे बतायी सै । "[5]

" घास-गोदाम " में भी जगह जगह पर हरियाणवी शब्दों और वाक्यों का प्रयोग वहां के निवासियों की बातचीत में लक्षित होता है । मुखिया के मुँह से पुराने मकान की मरम्मत की बात सुनकर मुखियानी गुस्से से कहती है - " सिहार दूँ । के केह से ... क्या तेरी अक्कल मारी गयी से । "[6] जमाने के बदलते हुए हालातों पर चिंतित होते हुए बंसीलाल

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 1.
2. - वही - पृ. 43.
3. - वही - पृ. 3.
4. - वही - पृ. 71.
5. - वही - पृ. 113.
6. घासगोदाम - पृ. 85.

चौधरी से कहता है - "चौधरी नू कहूं, अगर जमाने की यही हाल रही तो एक दिन आदमी आदमी को काटेगा ।"[1] बंसीलाल की धीमी चाल पर कटाक्ष करते हुए मुखिया कहता है - "बंसी, क्यों ग्याभण भैस की तरह कदम उठाये है । अंडुआ बैल की भाँति छलांग मारता चल ।"[2] ऐसे पात्रों को अन्य उपन्यासों में भी अपनी भाषा का इस्तेमाल करते हुए देखा जा सकता है ।

"झूठा-सच" में दिल्ली के एक शरणार्थी कैम्प में हरियाणा के एक चपरासी के माध्यम से यशपाल ने हरियाणवी भाषा का प्रयोग किया है । वह तारा को डांटते हुए कहता है - "बुलावे हैं तो जावेगी कैसे नहीं । ये तो ऐसे बोल्ले, जैसे बेगम होये । उठ्ठ । इठे तेरे बाप का घर है क्या ?"[3] बाद में डा॰ श्यामा और कैम्प के अधिकारियों द्वारा तारा के लिये कपड़े भेजने पर वही तारा से कहता है - "डाक्टर मेम साबने थारे खातर कपड़े भेजे हैं । अग्गे बढ़ के लेल्लो ।"[4] कैम्प की अन्य औरतों द्वारा बण्डल के प्रति जिज्ञासा प्रकट करने पर वह अपनी सफाई देते हुए कहता है - "मैं क्या जाणूं सूं इसमें क्या है, क्या नहीं है । मैंने खोल कर देक्खा भी हो तो गंगा जी की कसम । हाँ, तुम खोल कर देखलो अपणे हत्थां ते ।"[5]

1· घासगोदाम - पृ॰ 10·
2· - वही - पृ॰ 21·
3· झूठा-सच - पृ॰ 128·
4· - वही - पृ॰ 131·
5· - वही - वही -

" मनुष्य के रूप " में जेल का वर्णन आता है, वहाँ हरियाणा का निवासी भी बन्द है। वह दूसरे लोगों को अंग्रेजी में बात करने पर टोकता है – " ये क्या गिट्ट-पिट्ट करो हो जी। सिद्दे-सिद्दे अपणी बोली में बोल्लो, हमारी भी समझ मां आवे। अपणे भाइयां ते किस बात का पर्दा है जी। "[1] सामान्य व्यक्ति के लिये अंग्रेजी बहुत दूर की भाषा ही ठहरती है। उपन्यास जनजीवन का निकटता से वर्णन करता है। अतः जिन्दगी की, रोजमर्रे की भाषा की लसक और लचक का सौन्दर्य वहाँ प्रस्तुत किया गया है। इसके माध्यम से जहाँ जीवन की समस्याओं का साक्षात्कार होता है वहीं विभिन्न पात्रों की मानसिकता और उनके चरित्र का उद्घाटन भी संभव होता है।

उर्दू :-

अंग्रेजों के शासन काल में उन्नीसवीं शताब्दी से देश-विभाजन तक मुख्य रूप से उर्दू पंजाब की राज काज की भाषा रही है। इसके साथ-साथ यह भाषा पढ़े-लिखे लोगों की नफ़ासत और तहजीब का द्योतक भी समझी जाती थी। पंजाब के अधिकतर शायर इसी ज़बान में शायरी करते थे। अतः कचहरी - कानून की भाषा के साथ - साथ शायरी और शिक्षित तबके के बोलचाल पर भी इस भाषा का काफ़ी प्रभाव था। यह असर इन उपन्यासों में भी आना लाज़मी था। " बाँधो न नाव इस ठाँव " में समान बेचनेवाला जिस भाषा में नीलामी की घोषणा करता है वह उर्दू ही है – " बेशकीमत पत्थरों का निहायत ख़ूबसूरत हार .... माशूका को दीजिये तो आप पर सौ जान से निछावर हो जाय। "[2] चेतन और कविराज रामदास की एक बातचीत इस प्रकार है -- " अब यह लम्बा किस्सा है। आपके मरीज़ बैठे हैं। मेरी ही ज़्यादती समझ लीजिये। "

---

1. मनुष्य के रूप – पृ. 136.
2. बांधो न नाव इस ठाँव – I – पृ. 34.

" हां तुम बहुत हस्सास हो, लेकिन मेरे अजीज, जूदीहसी से काम नहीं चलता ... " कोई काम मेरे लायक हो तो देखियेगा । मैं ऐसे में आऊँगा, जब आपको थोड़ी फुर्सत हो । " " मैं नौजवानों के लिये एक माहनामा फ़िक्री-अमल निकालने की सोच रहा हूँ । "[1] एक और स्थल पर पंडित रतन चेतन से कहते हैं - " अख़बार-नवीसी तुम करना नहीं चाहते, कोई ऐसा काम क्यों नहीं करते, जिसमें कुछ मुस्तिक़ल गुजारे की सबील हो जाय ? "[2] शायर अख्तर से चेतन कहता है - " अख्तर साहब, गुस्ताखी माफ़ हो तो एक बात पूछूँ । ... आपने इतनी नज्में सलमा को ले कर लिखी हैं, क्या सचमुच सलमा नाम की कोई हसीना है, या यह सब आपके तसव्वुर का कमाल है ।[3]

" मुट्ठी भर कांकर " में पटवारी तहरीरी हुक्मनामा लोगों को सुनाता है - " सरकार ने मौज़ा बसई दारापुर में गैर-काश्त जमीन को ऐक्वायर करने का फ़ैसला किया है । ... ऐक्वायर की जाने वाली जमीन का ब्यौरा जिला कचहरी या तहसील या पटवारी मौजा से लिया जा सकता है । "[4]

" एक नन्हीं किन्दील " में मुंशी गिरिजाशंकर चेतन को मिर्जा नईम बेग चगताई का परिचय इन शब्दों में देते हैं - " मिर्जा हिन्दुस्तान के मशहूर अदीब तथा यू॰पी॰ के प्रसिद्ध अदबनवाज़ खानदान के जगमगाते

---

1. बांधो न नाँव इस ठाँव - 1, - पृ॰ 47॰
2. - वही - पृ॰ 94॰
3. - वही - पृ॰ 307
4. मुट्ठी भर कांकर - पृ॰ 102॰

स्वम है और उन्हें नज़्म और नस्त्र पर यकसाँ दस्तरस हासिल है । "[1] मिर्जा की योग्यता देखकर चेतन उनसे कहता है - " मिर्जा आप इस नाक - द्रशनास अंग्रेजी जमाने में पैदा हुए, वरना अगर आप उस जमाने में होते तो यकीनन " जुरंत " और " इन्शा " से ज्यादा कद्रो-मंजिलात पाते । "[2] पण्डित रत्न चेतन से उसकी उर्दू के गलत उच्चारण की ओर इशारा करते हुए कहते हैं - " साहब, जब तक आप उर्दू का बाकायदा मुतालआ नहीं करते, यह मसला आपके लिए लायबखूल ही रहेगा । "[3] यहाँ ध्यातव्य है कि उपन्यासकार अश्क उर्दू अदब से हिन्दी कथाक्षेत्र में तशरीफ लाने वाले अफ्साना निगार रहे हैं । पंजाबी लेखकों के लिए उर्दू में लिखना सहज रहा है । अविभाजित पंजाब में उर्दू भाषियों की जनसंख्या काफी थी । उर्दू का उपयोग उपन्यासों के लिए वाजिब ही कहा जायेगा क्योंकि उर्दू शिक्षितों के बीच प्रचलित भाषा थी ।

" झूठा-सच " में पंडित गिरधारीलाल जयदेव पुरी को समझाते हुए कहते हैं - " बरखुरदार, मुझे अजहद अफसोस है कि तुमने मुझे गलत समझा । मैं तहेदिल से तुम्हारी इज्जत करता हूँ । मैं तुम्हें अपना अजीज और दोस्त ख्याल करके तुमसे बात कर रहा हूँ । मैं तुम्हारा एहसान कबूल कर रहा हूँ और तुमसे मदद की दरखास्त कर रहा हूँ । "[4] " झूठा - सच " का एक पात्र मसऊद है जो गौसमुहम्मद के कत्ल के बारे में पुरी को बताते हुए अफ्सोस जाहिर करता है - " भाई, गौस बहुत नेक आदमी

1· एक नन्हीं कन्दील - पृ· 68·
2· - वही - पृ· 74·
3· - वही - पृ· 141·
4· झूठा - सच - पृ· 184·

था .... तास्सुब उसे छू नहीं गया था । बेचारा अपनी शरई दाढ़ी की वजह से ही शहीद हो गया । यह फिसाद जाने क्या करेंगे ।"[1] इसी तरह दिल्ली में मौलाना हैं जो पंडित गिरधारीलाल से कहते हैं - "भाईजान, यह फिरकावाराना इश्तआल ﴾ साम्प्रदायिक-उत्तेजना ﴿ मुल्क और क़ौम को तबाह किये दे रहा है । इस दरिन्दगी ﴾ पाशविकता ﴿ को रोकना हम-आप सब नेशनलिस्टों का फ़र्ज है । बापू ने तो अपनी जिन्दगी ही इसी के लिये कुरबान कर दी है ।"[2] पंजाब, दिल्ली, लखनऊ आदि के शिक्षित मध्यवर्ग के बीच एक समय उर्दू आपसी बातचीत की माध्यम भाषा थी । मुसलमानों की तो आमतौर से यह मादरी ज़ुबान ही रही है ।

"दो अकालगढ़" में साँची के खेल के दौरान आरिफ़ और शफ़ी सरदार गुलजारासिंह से उत्साह में भर कर कहते हैं - "मुबारक हो सरदार साहब । बिस्मिल्लाह तो अच्छी हुई इस खेल की ।"[3]

"काले - कोस" में गाँव में शाम को होने वाली बैठकबाज़ी में खेमचन्द्र, शायर इकबाल की शायरी पर टिप्पणी करते हैं - "पहले उनमें वतन ﴾ स्वदेश ﴿ की मुहब्बत थी । वह आदमी आदमी की बराबरी के कायल थे, हिन्दु - मुस्लिम एके के रसिया । लेकिन बाद में असल लाईन से हट गये ।"[4]

1· झूठा सच - पृ· 286·
2· - वही - पृ· 53·
3· दो अकालगढ़ - पृ· 481·
4· काले - कोस - पृ· 207·

" शहर में घूमता आईना " में रिपोर्ट लिखाने गये लोगों से हवलदार कहता है - " तो इस वारदात का कौन-कौन गवाह है ? मामला कचहरी जायगा तो गवाही तो कोई देगा । अगर फरीके मुखालिफ ने कहा कि अदालत में झूठ-मूठ उनका नाम लिख दिया गया है, मुसम्मात ने सिर ज़मीन पर दे मारा है तो ?"[1]

उपन्यास की भाषा पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार किस प्रकार अपना रूप बदलती चलती है, यह देखना बड़ा ही रोचक है । रोजमर्रे की जिन्दगी में हम इसी तरह भाषा के विभिन्न रूप-रंगों के रू-ब-रू होते रहते हैं । खड़ी बोली में उर्दू और पंजाबी का आनुपातिक मिश्रण करके उपन्यासकारों ने पंजाबी जीवन और समाज के सच्चे चित्र खींचे हैं । थाना, बाजार, कचहरी, स्टेशन, दफ्तर, शिक्षा संस्थान आदि विभिन्न स्थानों पर भाषा के विविध स्तरों पर होने वाले व्यवहारों केजीवन की ही भाँति इन उपन्यासों में भी उपस्थित किया गया है । हाँ, यह अवश्य है कि विशाल हिन्दी भाषी पाठक समुदाय के लिए कुछ शब्द-विशेष कठिन प्रतीत हों पर प्रसंग के आधार पर उनके आशय को समझ लेना शायद असंभव नहीं होगा ।

अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग :-

दो-सौ साल के लम्बे अंग्रेजी शासन के अंतर्गत शासकों की भाषा होने के कारण अंग्रेज़ी पूरे देश में किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व जताती हुई फैलती गई है । पंजाब भी इस लहर से अछूता नहीं रह सका । अंग्रेज़ी

---

1. शहर में घूमता आईना - पृ. 388.

यहाँ भी अपने सही या विकृत रूप में थोड़ा-बहुत प्रवेश कर गई । भारत के दूसरे हिस्सों की भाँति ही पंजाब के लोग भी गाहे-बगाहे अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग करने में गर्व महसूस करने लगे । शिक्षित मध्यवर्ग की बातचीत के दौरान वाक्यों में एक आध अंग्रेज़ी का शब्द तो स्वाभाविक रूप से ही आने लगा । आरंभ में ऐसा शहरों में ही होता था, पर धीरे-धीरे अंग्रेज़ी शिक्षा और अंग्रेजियत के रौब में कस्बे और गाँव भी आने लग गये ।

" बाँधो न नाव इस ठाँव " में चेतन से अपनी लड़की को ट्यूशन पढ़ाने के सिलसिले में लाला हाकिमचंद कहते हैं - " लेकिन वह थोड़ी डल्ल है । ... आप गारण्टी देते हैं ।"[1] " पिछले साल जो ट्यूटर रखा था ... उसने बड़े-बड़े वायदे किये थे, लेकिन लड़की तीन सब्जेक्ट्स में फेल हो गयी ।"[2]

" झूठा-सच " में उर्दू पत्र " पैरोकार " के सम्पादक कर्मचन्द कौशिश कनक से कहते हैं - " मैं तुम्हें एक गुर बताऊँ । आई हेव एन आइडिया .. तुम कैम्पों में जाकर रिफ्यूजी स्त्रियों से मिलो । उनकी आपबीती सुनो और फिर विद ए लिटल इमैजिनेशन (कल्पना का पुट देकर) उन्हें लिख डालो । मैं खुद उन्हें जरा इम्प्रूव (सुधार) कर दूँगा । यह है असली काम टैलेंट (प्रतिभा) का । पेपर के स्टाफ का काम क्या है, इट इज़ आल रूटीन वर्क । "[3]

---

1. बाँधो न नाव इस ठाँव - पृ. 17.
2. - वही -
3. झूठा-सच -2, पृ. 72.

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त जिस नये मध्य तथा निम्न मध्यवर्ग का उदय आरंभ में सीमित और औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के साथ-साथ हुआ उसने अंग्रेजियत को " आधुनिकता " के रूप में ग्रहण किया । अंग्रेजी ढंग के लिबास, रहन-सहन और बोलचाल की नकल की जाने लगी । जो अंग्रेज़ी बोल सकते थे, उनको अंग्रेजी में बात करने की ऐसी आदत पड़ गयी कि मातृभाषा में बातें करना उन्हें कठिन जान पड़ने लगा । जिन्हें अच्छी अंग्रेजी नहीं आती थी, उन्होंने गलत-सलत अंग्रेजी बोलकर अपने को तमाम गैर-अंग्रेजीदाँ लोगों से अलग और सुपर सिद्ध करने का प्रयत्न किया । अर्ध शिक्षित तथा अल्प शिक्षित लोगों ने कभी-कभार अंग्रेजी के एकाध वाक्य या दोचार शब्द अपनी बातचीत में घुसेड़ कर अपने तथाकथित अंग्रेजी ज्ञान का परिचय देना चाहा । फल स्वरूप आपसी वार्तालापों में एक अंग्रेज़ी की पैबन्द लगी देश भाषा का व्यवहार खुलकर होने लगा । उपन्यासों में इस तरह की भाषा का इस्तेमाल हमारे वास्तिवक भाषा-व्यवहारों पर अच्छी-खासी टिप्पणी की तरह भी है । अंग्रेज़ी बोलना उच्च सामाजिक स्तर का द्योतक होने लगा है । अंग्रेजी, शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में, एक प्रकार की आक्रामकता से लैस होने लगी । प्रशासन से जुड़े अधिकारी वर्ग औपचारिक बातचीत में पूरे - पूरे वाक्य अंग्रेजी भाषा के प्रयोग करते हैं ।

" एक नन्हीं कन्दील " में कॉलेज का प्रिंसिपल खौफ और आतंक से भरी अंग्रेज़ी में चेतन को डांटता है - " इज दिस योर स्वराज्य ? यू केन नॉट ईवन स्टैण्ड, व्हेन योर प्रिंसिपल कम्ज़ टू ।" चेतन भी इसका जवाब अंग्रेजी में ही देता है - " सर ! इट इज़ नॉट योर जॉब टू डिस्ट्रब्यूट द आंसर - बुक्स । इट्स ए प्यून्स जॉब । बट इफ़ यू हैव टेकेन इट, यू शुड्ण्ट एक्सपेक्ट येर स्टूडेण्ट्स टू गेट अप व्हेन दे आर एब्जॉर्ब्ड इन डूइंग देअर पेपर्स । " ।

---

1. एक नन्हीं कन्दील - पृ. 82.

" बांधो न नाव इस ठाँव " में नीलामी लगाकर सस्ती या बेकार चीजें महंगी बेचने वालों के द्वारा ठगे जाने पर चेतन नीलामीवालों को डराने के लिये अपने दोस्त से कहता है - " डोण्ट टेक द टाइमपीस/लेट अस गो टु द पुलिस स्टेशन, वी " ल सैट दम राइट । " [1] तेजभान जैसे लोग अंग्रेज़ी ज्ञान बघारने के लिए अंग्रेज़ी कहावत का भी प्रयोग करते हैं - " टिट फॉर टेट " [2]

अपनी लड़की के ट्यूटर चेतन पर बदनीयती का शक होने पर अंग्रेज़ी में गाली देते हैं - " यू आर ए रोग " [3] तथा कहते हैं - " वाइल टीचिंग यू स्प्रेड योर लेग्ज़, एण्ड योर फ़ीट टच्छ हर थाइज़ । " [4] संभवत: इस बात को अपनी भाषा में कहना ज्यादा तौहीन की बात होती । ऐसे अवसरों पर अंग्रेजी शर्मिंदगी से बचने या अनपेक्षित क्रोध दिखाने में अच्छी तरह काम आती है ।

" झूठा-सच्चा " में जयदेव पुरी असद और तारा को एक साथ देख कर तारा से कहता है - " यू वाण्ट फ्लर्टेशन, नाट मैरेज । " [5] पंडित जी अपने वकील जंवाई नैयर को शाबाशी देते हुए कहते हैं - " फाइन ! यू आर ए फाइन बॉय । " [6] इन अवसरों पर अंग्रेज़ी प्रयोक्ता को उनके विशिष्ट वर्ग का बोध कराती है ।

---

1. बांधो न नाव इस ठाँव - पृ. 39.
2. - वही - पृ. 170.
3. - वही - पृ. 490.
4. - वही - पृ. 494.
5. झूठा सच - पृ. 215.
6. - वही - पृ. 271.

" मय्यादास की माड़ी " में दीवान धनपत का इंग्लैंड पलट सबसे छोटा बेटा हकूमतराय डिप्टी कमिश्नर हेनरी से अंग्रेजी में बात करता है -

"Seen a bit of the Indian mob, haven't you? They have no guts, I tell you. You had only to wield your baton and they are running for their lives..."[1]

" Anything for the Empire Henry! We both worship at the same altar"[2]

" घास गोदाम " में कम्पनी की रिसेप्शनिस्ट गाँव से आये मुखिया और बंसीलाल से पूछती है - " आपको डिपाजिट कराना है या ..... विदड्राअल लेनी है ।"[3] अंग्रेजी के खास-खास शब्द कुछ खास क्षेत्रों में बिल्कुल स्वभाविक रूप से रच-बस गये हैं । विकास के नये क्षेत्रों में, नयी धारणाओं से सम्बन्धित अंग्रेजी के शब्दों के लिए देश भाषा में पर्याय बाद में निर्मित और विकसित हुए जबकि अंग्रेजी के शब्दों को प्रचलित होने का ज्यादा अवसर मिलता गया ।

शहरी और शिक्षित वर्ग ही नहीं बल्कि ग्रामीण और अशिक्षित वर्ग भी अपनी सीमित क्षमता और ज्ञान के मुताबिक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता है, चाहे अशुद्ध और विकृत रूप में ही क्यों न करना पड़े ।

" दो अकालगढ़ " में पिल्लौरासिंह अपने बड़े भाई सरदार गुल - जारासिंह से कहता है - " हमारे पास इतना टैम नहीं है । "[4]

1· मय्यादास की माड़ी - पृ· 259·

2· - वही - पृ· 260

3· घास - गोदाम - पृ· 94·

4· दो अकालगढ़ - पृ· 605·

" रात, चोर और चाँद " में सिंदा अपने बेटे पालीसिंह के बारे में गाँव वालों को बताती है – " कालेकुत्ते में डरेवर (ड्राईवर) हैं ... मोटर चलाता है ।"[1] गाँव का बुजुर्ग हरप्रसाद अपने समवयस्क कर्मदीन पर झल्लाता है – " लुचकर पिलाए जा रहा है ।"[2] कलकत्ते में कई वर्ष बिता कर आया पालीसिंह गाँव के लोगों में अपनी शहरी जानकारी की डींगे हांकता है – " मरीकी सिपाही बहुत तगड़े होते हैं ... मरीकी मरीका के रहने वाले होते हैं । ग्रेज सिपाहियों को टामी कहते हैं ।"[3]

" चक्पीरां का जस्सा " में घर का नौकर रहीम अपने मालिक बग्गासिंह से पूछता है – " तो टेशन (स्टेशन) तक रेड़ी ले जाऊँ । "[4]

" गिरती दीवारें " में चेतन के पिताजी उसके भाई रामानन्द को अंग्रेजी के कुछ शब्दों के गलत उच्चारण पर थप्पड़ लगाते हैं – " साले, यह पंजाबी भाषा का नहीं अंग्रेजी का शब्द है । ... गंवारों की तरह " सिंगल – सिंगल " बके जा रहा है, "[5] आठवीं में पढ़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द " डिपो " है " डिपोट " नहीं । "[6]

---

1. रात, चोर और चाँद – पृ॰ 35॰
2. – वही – पृ॰ 92॰
3. – वही – पृ॰ 95॰
4. चक्पीरां का जस्सा – पृ॰ 135॰
5. गिरती दीवारें – पृ॰ 56॰
6. – वही – पृ॰ 57॰

" कभी न छोड़े खेत " में सिपाही सूरतसिंह द्वारा शराब मंगाने पर सिपाही तरसेमसिंह कहता है - " अद्दा नहीं ... पौआ काफी रहेगा । तुझे डीटी [ड्यूटी] भी बजानी है, "[1] दलीपसिंह का परिचय देते हुए जैलदार दसोंधासिंह बचिंतसिंह को बताता है - " हाँ, यह यहाँ कम्पोडर [कम्पाउण्डर] है । "[2]

शासकों की भाषा शिक्षितों तक तो अधिक नहीं बदलती, पर जन-सामान्य तक पहुँचकर उसका स्वरूप बहुत कुछ बदल जाता है । अंग्रेज़ी के सैकड़ो शब्द अपने विकृत रूप के बावजूद जनसामान्य के शब्द कोष की सम्पत्ति बन गये हैं और उनका गाहे-ब-गाहे उपयोग होता ही रहता है । ट्रेन, इंजन, ट्रेक्टर, मोटर, रिक्शा, सिनेमा, लारी जैसी वैज्ञानिक नव-अविष्कार की वस्तुओं के अंग्रेज़ी नाम का प्रचलन स्वाभाविक ही है । इसी तरह पुलिस, हॉस्पिटल, डॉक्टर, स्कूल, मास्टर, हेडमास्टर, इन्स्पेक्टर जैसे शब्द भी मूल या विकृत रूपों में प्रचलित होते रहते हैं । अंग्रेज़ी के ऐसे ढेर-सारे शब्द भारत की किसी भी भाषा में घुल-मिल कर प्रयुक्त होते हुए देखे जा सकते हैं ।

पंजाबी बोलियों का प्रयोग :-

पंजाब के जनजीवन की अपनी भाषा पंजाबी रही है । भाषाविदों के अनुसार पंजाबी का उद्भव 11 वीं और 12 वीं शताब्दी के आस-पास देखा जाता है । लेकिन अमीर खुसरो द्वारा बनाई गयी तत्कालीन भाषाओं

---

1. कभी न छोड़े खेत - पृ. 136.
2. - वही - पृ. 160

की सूची में " पंजाबी " की बजाय " लाहौरी " और " मुलतानी " का जिक्र है । लाहौर बाद में मुस्लिम शासकों की राजधानी बना था । विशेषकर भौगोलिक स्थिति के कारण, लाहौर में पूर्वी और पश्चिमी पंजाब की बोलियों के मेल से एक प्रामाणिक भाषा बन सकी । मुगल काल में लाहौर ने प्रमुख औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध पाई । व्यापारिक जरूरतों के कारण विभिन्न पंजाबी बोलियों से हटकर पंजाबी का एक टकसाली रूप उभर कर आया । पंजाब के मशहूर कवियों और शायरों ने इसी टकसाली पंजाबी में अपनी रचनाएँ कीं । [1]

पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब के आधार पर पंजाबी के दो रूप पूर्वी और पश्चिमी माने गये । पूर्वी पंजाब में बोली जाने वाली भाषा पंजाबी कहलाती है और पश्चिमी पंजाब में मिलने वाली भाषा को लहँदा के नाम से जाना जाता है । डा· ग्रियर्सन के अनुसार " पंजाबी " पश्चिमी हिन्दी का रूप है, जिस पर लहँदा का प्रर्याप्त प्रभाव है । उनके मतानुसार सुदूर पूर्वी पंजाब की भाषा पश्चिमी हिन्दी, पश्चिमी पंजाब की लहँदा तथा केन्द्रीय मध्य-पूर्व पंजाब की भाषा पंजाबी है । [2] डा· ग्रियर्सन बताते हैं कि " पंजाबी के पश्चिम में लहँदा अथवा पश्चिमी पंजाबी भाषा है जिसे हम जच (जेहलम और चनाब के बीच के) दोआब में दृढ़ रूप से स्थापित पाते हैं । शुद्धतम प्रकार की पंजाबी (ब्यास और रावी के बीच के) बारी दोआब के ऊपरी भाग में बोली जाती है ··· पूर्व में अधिकाधिक पंजाबी, पश्चिम में अधिकाधिक लहँदा"[3]। लहँदा का

1· हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास, शमशेर सिंह नरूला, पृ· 135

2· भारत का भाषा सर्वेक्षण(IX)- डा· ग्रियर्सन - पृ· 311·

3· - वही - - पृ· 2·

अधिकांश क्षेत्र अब पाकिस्तान में है । पंजाबी के बारे में डा· कैलाशचन्द्र भाटिया बताते हैं कि " पंजाब के अतिरिक्त राजस्थान के बीकानेर (पुरानी रियासत) के उत्तरी कोने तथा जम्मू के दक्षिणी भाग में भी यह बोली जाती है । लाहौर और स्यालकोट के जिलों को छोड़ शेष पश्चिमी पंजाब में जो पंजाबी बोली जाती है, उसे लहँदे दी बोली (सूर्यास्त दिशा की भाषा) कहते हैं । .... वास्तव में यह पंजाबी ही की उपभाषा है । मुलतानी, डेरावाली, पोठोहारी, अवाणकारी आदि इसकी कई बोलियाँ हैं । जिनमें मुलतानी का साहित्य 14 वीं शताब्दी से मिलने लगता है । फ़रीद, नानक, वारिस - शाह, अहमदयार, कादर यार आदि अनेक कवि हुए हैं । महाराणा रणजीत सिंह के बाद लाहौर और अमृतसर का प्रभाव उतना बढ़ा कि पश्चिमी पंजाबी की परंपरा धीरे-धीरे क्षीण हो गई । लहँदो के चारों ओर पश्तो, सिंधी, राजस्थानी, पूर्वी पंजाबी और कश्मीरी भाषाएँ बोली जाती हैं ।"[1] पंजाबी का क्षेत्र अम्बाला से लेकर लाहौर तक तथा जम्मू, चम्बा, शिमला से लेकर भटिंडा तक फैला हुआ है ।

पंजाब के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में पंजाबी भाषा के विभिन्न रूपों अथवा बोलियों को भाषाविदों के द्वारा वर्गीकृत किया गया है ।

केन्द्रीय बोलियों के संबंध में हरिचंद पाराशर [2] का कथन है -- " हमें बोलियों के तीन ऐसे क्षेत्र मिलते हैं, जिनमें पारस्परिक समानता बहुत हद तक आ चुकी हैं । ये हैं - मालवा, जालंधर, दोआबा,

---

1· हरदेव बाहरी, हिन्दी उद्भव विकास और रूप, पृ· 49

2· हरिचंद पाराशर - पंजाब की भाषाएँ और उपभाषाएं, सप्तसिन्धु मई - 1962·

अमृतसर माझा । सतलुजवर्ती मैदानी इलाके को मालवा कहते हैं । इसकी बोली मलवई है । मलवई बोली का सही रूप जिला फिरोजपुर की तहसील मोगा से सूचित किया जा सकता है । भटिंडा जिले के दक्षिण-पश्चिमी भाग की बोली आदर्श मलवई से कुछ भिन्न है । वहाँ हरियाणवी और बागड़ी के लुप्त प्रभाव और राठी मुसलमानों की वर्गगत विशेषताओं ने उसे एक विशिष्ट रूप प्रदान किया है । भटियानी और मलवई में चाहे विशेष अन्तर प्रकट न हो परन्तु इतना स्पष्ट है कि इनमें टकसाली पंजाबी की अपेक्षा काफी फ़र्क है ।

पुआधी बोली यमुनावर्ती उस प्रदेश में बोली जाती है जिसे हिन्दी और पंजाबी के क्षेत्रों को अलगाने वाला क्षेत्र माना जाता है । (इस बोली पर डा॰बलबीरसिंह सिंधु द्वारा लिखी गई "ए डेस्क्रिप्टिव ग्रामर आव पुआधी" नामक पुस्तक छप चुकी है ।)

प्रो॰के॰सी॰ बहल पंजाबी के इन उपरूपों तथा बोलियों को इस प्रकार बतलाते हैं --

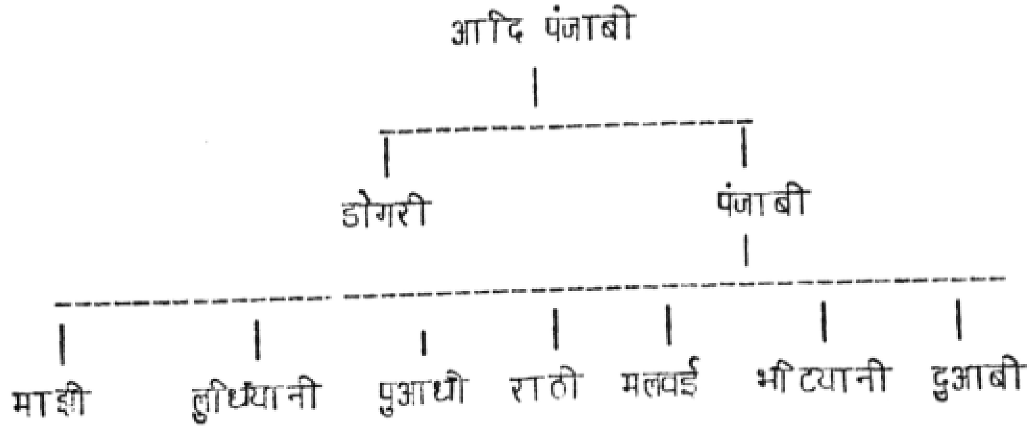

इन बोलियों के भौगोलिक क्षेत्रों के बारे में जानकारी देते हुए प्रो॰बहल बताते हैं कि अमृतसर अर्थात मध्यवर्ती क्षेत्र में आधुनिक मानक पंजाबी बोली जाती है । जिसे माझी कहा जाता है । इसके अतिरिक्त यह तहसील पठानकोट के मैदानी इलाके तथा ज़िला गुरदासपुर में बोली जाती है । यह व्यास और रावी के बीच का क्षेत्र है । सतलुज और व्यास नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र दुआबी का गढ़ है जिसमें जालंधर और होशियारपुर का कुछ क्षेत्र आता है ।

पहाड़ी बोलियाँ अपना अलग अस्तित्व बनाए हुए हैं । आलोच्य उपन्यासों के पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों और भागों से सम्बन्धित होने के कारण वे इन बोलियों और उपरूपों में से अधिकांश को समेटे हुए हैं । तमस में खानपुर, ढोक-मुरीदपुर तथा आस-पास के गाँवों में बोली जाने वाली पंजाबी बातचीत का यत्र-तत्र संवादों के रूप में इस्तेमाल किया गया है । हरनाम सिंह दंगों से भयभीत अपनी पत्नी को इन शब्दों में दिलासा देता है - "सुण भागे भारिये, असाँ कदे किसे दा बुरा नहीं चेतिया, बुरा नहीं कीता । इत्थो दे लोको बी साडे नाल भरावाँ वाँग रहे हन । तेरियाँ अखाँ साहमणे करीम खान दस वारा कह गिया है, चुपचाप बैठे रहवो, तुहाडे वल कोई अँख चुक के वी नहीं वेखणगा । करीम खान तो बड़ा मोतबर इत्थे कौण है ? इक्को इक इत्थे सिख धर है ? के गिराँवालियाँ नू साडे ते हत्थ चुकींदयाँ गैरत नहीं आयेगी ?"[1] इसी बोली में करीमखान भी हरनाम सिंह को सावधान करता है - "गाँव - वाले तो तेरे वल अक्ख वी नहीं चुक्कणगे पर बाहरों लोकाँ दे आण दा

1· तमस - पृ॰ 164·

डर है । उन्हाँ नूँ रोकणा साडे बस दा नहीं ।"[1] राजो द्वारा हरनाम सिंह को पनाह देने पर अकराँ कहती है - " काफराँ की पनाह देने ओ । बहु माड़ा करने ओ । मड़द तुदाँ पुघसन । "[2] सास डांटती हैं - " तूँ चुप कर । बदनसीब कोई आये ते मैं धक्का दे के बाहर कढ देवाँ ? "[3] बन्तो से राजो कहती है - " मैं के जाणा भैण, अपणा - अपणा नसीबा । चहवाँ पासे अग लगी है । "[4]

" मुट्ठी भर काँकर " में मुल्तान के तौंसा तहसील शहर डेरा गाज़ी खाँ के निवासी रामदयाल से उस क्षेत्र की मुलतानी बोली बुलवाई गई है - " गरीब खाना डेरा गाजी खाँ विच हाई । तुसीं तौंसा दा नाम जरूर सुनया हेसी, तहसील है ।"[5]

" साई, असीं चार हमज़ुल्फ़ ! सॉढू ! हाँ । दू सिख ते दू मोने हिन मेढ्रा साँरा मोना ते साला सिख हैं । "[6]

मुट्टी भर कांकड़ की अगली कड़ी - " घास-गोदाम " में उसी पात्र के द्वारा मुलतानी फिर सुनने को मिलती है - " डेरा गाजी खान में उनकी बजाजी की दू दुकाने थिन ... इत्थां कबाडिये का धंधा करैंदे ने ... मोटा काम हिन ।"[7]

1· तमस - पृ· 165·
2· - वही - पृ· 195·
3· - वही - पृ· 195·
4· - वही - पृ· 203·
5· मुट्टी भर काँकर - पृ· 36·
6· - वही - पृ· 38·
7· घास गोदाम - पृ· 116·

" मुट्ठी भर काँकर " में सरदार अत्तरसिंह जो खास पिण्डी का निवासी रहा है पुठोहारी का प्रयोग करता है - " हुन ताँ दसनयाँ शर्म पयी औंदी सै ... पिण्डी छौनी, सदर बजार विच कपड़े दी वड्डी दुकान सी ... चाय पये फौज दे अफसर .. करनैल ते जरनैल .... चाये पये गोरे सी या देसी ते वेंह सिविल दे अफसर .. सब कपड़ा लैण वास्ते साडी दुकान ते आने सन । "[1] बोली के ऐसे लम्बे कथनों में उद्धरण के द्वारा उपन्यासकार सामाजिकता और व्यक्ति मनो - विज्ञान दोनों की एक साथ सफलता पूर्वक उपस्थित करता है । लम्बे कथन वाला एक ऐसा ही और स्थल देखिए - " अपने वतन विच भी मकौड़े-सी । कट सी ताँ मिट्ठी जेही पीड़ हो सी । लेकिन एथे दे मकोड़े भी वसनी काँ (यहाँ के बाशिन्दों) दी तरह खौरे ने । लड़ने ने ते डाढी पीड़ कर सी । ..." " ठीक आखं सो शाह जियो अपने वतन विच साँ ते सरकारी अहलकार भी असाँ दी गल नूँ हलफी व्यान तो पक्का समझने साँ । एथे दो-दो आने दे आदमी नू दसना पैंदा ने कि असाँ कौन ने, कित्थों आये नें । गल सुन असाँनूँ इंज तकने ने जिदें असाँ कुफ्र तोल रहे ने । "[2]

" कभी न छोड़े खेत " में जिस वंधाले नामक गाँव का चित्रण है वहाँ बोली जाने वाली पंजाबी का स्वरूप थोड़ा भिन्न है । गाँव के लोगों की आपसी बात चीत - " बोल बुलारा (तनातनी) तो जागीर - दारों और माधे के टब्बरों (कुटुम्बों) में हो रहा था ।"[3] इस उपन्यास

---

1. मुट्टी भर काँकर - पृ. 37.
2. - वही - पृ. 40.
3. कभी न छोड़े खेत - पृ. 19.

में जसवन्तकौर बेटे करतार के मरने पर विलाप करती है :- " हाय वे पुत्तरा - तूने अकाल घालणा कर लिया ... नी, क्यों हट जाऊं ? ... वे पुत्तरा, मैंने तुम्हें सौ सधरों { आकांक्षाओं } से पाला था । "[1] उपन्यास का एक पात्र मेलासिंह बचिंत सिंह से अफसोस करता है .... " भल्लया लोका । जूल्म-सा जूल्म हुआ है । जवान पुत्तर मर जाये और वह भी सवा लाख । "[2]

लाहौर की माझी बोली या मान पंजाबी का स्वरूप भी कई उपन्यासों में दिखायी पड़ता है । " झूठा-सच " के पहले भाग में लाहौर का चित्रण होने से वहाँ अक्सर माझी बोली सुनने को मिलती है । बड़ी बूढ़ी औरतें लड़कियों को डांटते हुए कहती हैं - " कुड़िये तेरी मत्त मारी गई है । "[3] तारा को शादी नज़दीक आने पर पास-पड़ोस की उसकी सहेली उसकी माँ से कहती है -- " कुड़ी को कल से माइयाँ पैणा होगा । "[4] पापड़ बड़ियाँ बेचने वाला सरदार सुमन्त सिंह गाता है[5] --

" खेडन दे दिन चार नी माये । खेड खिडन्दड़ी नू शामा जे पइयाँ, विस्सर गया घर-बार नी माये ।" दंगाइयों के अत्याचारों को देख सुनकर स्त्रियाँ क्रोध में कहती हैं --- " गुरु महाराज कक्ख न छड्डे इन जालिमों का ।[6] आस - पास के गाँव से आई

---

1. कभी न छोड़े खेत - पृ. 151.
2. - वही - पृ. 182.
3. झूठा सच - I - पृ. 186.
4. - वही - पृ. 306.
5. - वही - पृ. 48.
6 - वही - पृ. 64.

हुई घी बेचने वाली आवाज़ लगाती है । "घ्यो ले लो, घर दी मझदा असली घ्यौ । "[1] फल बेचने वाला आवाज लगाता है - "माइयों, बिबियों, भैणो, धियों फलांवाला आ गया जे । "[2]

'गिरती दीवारें' में उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क ने अमृतसर के एक कवि की कुछ पंक्तियाँ दी हैं --

" हत्थ विच लैके केसरील बाजा
आखे घी, "साईं गाउंदी चज्जदा नहीं,
मैं ते पयी गंधर्वां न्नूं मात कर दी
गांवा कोल वांगों तुम्बा वजदा नहीं ।"[3]

अश्क जी के उपन्यासों में कथावस्तु मुख्यत: जालन्धर और लाहौर में घूमती हैं, अत: जहाँ जालन्धर का चित्रण हुआ है वहाँ स्वत: दोआबी की झलक मिलती है । नौजवान और मस्त तबियत जगना साथियों के उकसाने पर तथा खेल-खेल में राह चलते किसी युवक को एक धौल जमा कर कहता है - "ओए सोहने हरामजादे ! किन्नियां वाजां तेनूं दित्तियां नें, ऐं, कुत्ता होया टुरना ऐं ? "[4] मुहल्ले की स्त्रियाँ अमीरचन्द द्वारा मुहल्ले की स्त्री पर हाथ उठाने पर कहती हैं - "जी तोमी दा की मारना, जिवें धरती कुट्ट लेई, ऐवें जनानी नूं कुट्ट लेया । मर्द सी

---

1. झूठा - सच - 1 - पृ. 23.
2. - वही - पृ. 60.
3. गिरती दीवारें - पृ. 435.
4. शहर में घूमता आईना - पृ. 215.

ताँ तेनू नाल दो - दो हत्थ कर दा ।" "ओ माईया होर कुछ नहीं, भरा दे कलक्टर होण दा हंकार है । "[1]

"गिरती दीवारें" में चेतन की छोटी साली नीला कहती है - "आप तो बड़े बीबे हैं जीजा जी, पर त्रिलोक बड़ा गोला है ।"[2]

"एक नन्हीं किन्दील" में मास्टर मानीटर से पूछता है - "दस्स ताँ बदा लाहदी घण्टी ऐ ? "[3] छात्र को डांटते हुए उसकी भाषा का तेवर देखिए - "भूतनी देया पुत्तरा, जे तेरा सिर ऐट्ड़ा वड्डा होंदे ते जिस्म ऐन्ना कु जेहा ते चंगा दिस्सेगा ।"[4] अयोग्य छात्रों पर मास्टर का व्यंग्य - "हो जाण ताँ ज़रा बेंचाँ ते खड़े भारत दे सितारे । "[5] के रूप में प्रस्तुत होता है ।

"गिरती दीवारें" में चेतन की शादी के अवसर पर उसकी पत्नी की सहेली केसरी चेतन से कहती है --

"जीजा जी, तुसी ताँ तिन्नाँ लोकाँ तो न्यारे ओ ।"[6]

---

1. शहर में घूमता आईना - पृ. 377.
2. गिरती छदीवारें - पृ. 591.
3. एक नन्हीं किन्दील - पृ. 219.
4. - वही - पृ. 220.
5. - वही - पृ. 227.
6. गिरती दीवारें - पृ. 196.

" जिन्दगीनामा " में जिला गुजरात के गांव डेरा जट्ट का चित्रण हुआ है जिससे वहाँ बोली जाने वाली पंजाबी का अलग स्वरूप भी उभर कर आया है। लाहौर से गांव वापस आने वाला नाई राजा रमजान गांव की बैठक में कहता है - " लाहोरिये कंजर देखते ही पूछते हैं -- क्योंजी जिला शाहपुर गुजरात कि जेहलम ! किस पिण्ड के रहनेवाले हो । " ... " कोई पूछे हमारे मुँह-मात्थे ऐसी क्या बनोत बनी है कि दूर से अपने पिण्ड का नाम प्रकट हो जाये । "[1] चाची महरी शाहनी से कहती है -- " चंगा दिहाड़ा देख फुल्कारियां शुरू करती हूँ । मेरे हाथों तोड़ चढ़ गयी तो लाडलों की वरी में ढोहना ना भूलना । "[2] शाहनी के लड़का होने के अवसर पर बाबो मिरासन कहती है - " अरी शाहनियों - खत्रानियों, हर स्याले एक पुत्र जन्म डाला करो । रब्ब किये फिर ढेरों कप्पड़ और सेरों सोना । आख्यान करते हैं न, हिन्दू शाह ने हिन्दुआनी क्या ब्याही, घर में हथनी बाँध ली । सगुण - कुड़माई से लेकर पुत्र-पोत्रों तक गहना गट्टा और कप्पड़ । "[3]

पंजाब के मैदानी क्षेत्र और पहाड़ी क्षेत्र की भाषाओं में अन्तर मिलता है । यहाँ की पहाड़ी बोलियों ने अपना स्वरूप अलग बनाये रखा । मैदानी बोलियों से ये नहीं मिलतीं । " मनुष्य के रूप " और " झूठा-सच-1 " में ये पहाड़ी बोलियाँ देखने को मिलती हैं । " मनुष्य के रूप " में लारी का क्लीनर बर्मू अपनी मस्ती में एक पहाड़ी झिंझोटी

---

1. जिन्दगी नामा - पृ. 160.
2. - वही - पृ. 170.
3. - वही - पृ. 187.

गाता है - " दिलां दियां कुण्डयां खुलाई के बो, प्रीतां पियां रोतां भुलाई के बो, दित्ता बिछोड़ा बंदिया जो । "[1] नौकर धन्नू की मालकिन उससे बात करते वक्त कहती है - " बरा मरजाणा, खसमखाणा, कैसी लाड़ी (बहू) लायेगा ? लाड़ी से क्या करेगा ? "[2] गांव का साह मन्नू सोमा के ससुर से कहता है - " देखो न बड्यांणी भाभी मियां की बातें । "[3] सास कहती है - " उसके समरेटों के दो-दो हो चुके । "[4]

झूठा-सच में पहाड़ी लोग नाचते गाते हैं -

" चिलमा की पीच
दुई डाई बीच । "[5]

" बेरू पाको बारो मास
काफल पाको चेता, मेरी छैला । "[6]

" एक रात का नरक " में पहाड़ी कुली चेतन के कहने पर गाता है -

" तेरे दरदे वे मोहना
तेरे दरदे
बोल, गाला मेरा कट्टया
पैहिये करदे । "[7]

---

1. मनुष्य के रूप - पृ. 11.
2. - वही - पृ. 27.
3. - वही - पृ. 41.
4. - वही - पृ. 42.
5. झूठा-सच -1 - पृ. 403.
6. - वही - पृ. 412.
7. एक रात का नरक - पृ. 22.

मेले में चेतन के कहने पर बरीड़यां पैसे ले कर गीत सुनाती हैं--

" डूंगी डूंगी बासी
मेरे दिल दी दिवासी
उच्चा उच्चा बंगला पा वादे बल्या
अलबेलया वो । "[1]

इस प्रकार हम पंजाबी जीवन से सम्बन्धित हिन्दी उपन्यासों में खड़ी बोली, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी तथा उसकी बोलियों के विविध रंग देखते हैं और इन रंगों के माध्यम से पंजाबी जीवन की सही छवियों का साक्षात्कार करते हैं । इन उपन्यासकारों ने भाषा को सामर्थ्यवान बनाने वाले अनेक तत्वों का उपयोग किया है । यह भाषा मुहावरों, कहावतों, लोक कथाओं और लोक गीतों से भी भरपूर समृद्ध है । एक प्रकार से यह स्वयं पंजाबी जीवन की बहुपक्षीय अनुभव-सम्पदा की ओर भी संकेत करती है । क्योंकि भाषा जीवन की ऊष्मा से रहित होकर टिक नहीं पाती, अतः उपन्यासों की वैविध्यपूर्ण भाषा की गुणवत्ता पर निगाह डाल लेना यहां असमीचीन नहीं होगा ।

लोकोक्ति मुहावरे :-

मुहावरे, लोकोक्तियां या कहावतें भाषा की मूल्यवान निधि हैं, जिनके द्वारा भाषा में एक ओर सौन्दर्य की वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर अभिव्यक्ति की क्षमता का अतीत विस्तार होता है । लोकोक्तियों तथा

---

1. एक रात का नरक- पृ· 75

मुहावरों का उद्गम जन-मानस से ही होता है । लोकोक्ति का शब्दार्थ है लोगों के द्वारा कही गई सूत्रात्मक उक्तियाँ । लोगों द्वारा कही गई सभी बातें लोकोक्तियाँ नहीं बन जातीं ।" जन-जन में प्रचलित वही उक्तियाँ लोकोक्तियाँ कहलाती हैं, जिनमें जीवन की कोई न कोई सत्यानुभूति गुम्फित रहती है । इन उक्तियों के पीछे कोई सत्य घटना अथवा व्यक्ति-विशेष का सत्यानुभव छिपा रहता है । "[1]

इस प्रकार लोकोक्तियों का सीधा संबंध मानव-समाज से जुड़ता है । इनके विषय भी समाज-सापेक्ष होते हैं । कुछ लोकोक्तियाँ अपने समाज या क्षेत्र विशेष की भाषा में ही प्रचलित होती हैं । किन्तु कुछ लोको-क्तियाँ-मुहावरे इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हो जाते हैं कि वे कई क्षेत्रों या भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में मिल जाते हैं । लोकोक्तियों तथा मुहावरों के इन रूपों के प्रयोग से क्षेत्र विशेष से संबंधित साहित्य में समाज विशेष को वहाँ की भाषा के माध्यम से मुखरित किया जाता है ।

हमारे अध्ययन क्रम में आने वाले हिन्दी उपन्यासों में भी पंजाब की भूमि को यथार्थ रूप में पहचानने के लिए उक्त समाज में प्रचलित लोको-क्तियों तथा मुहावरों का सुन्दर-सटीक प्रयोग किया गया है । नमूने के तौर पर कुछ लोकोक्तियों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है - " ओह हिक मार सी ते ढू ढै सी । "[2]

1· वर्गीकृत हिन्दी कोश, डॉ· शोभा राम शर्मा, पृ· 8

2· " मुट्ठी भर कांकर " पृ· 175·

इस कहावत के द्वारा गाँव वाले मुल्तान से आनेवाले रामदयाल की चतुराई, चालाकी, मक्कारी और चापलूसी भरे व्यवहार पर कटाक्ष करते हैं। लुट-पिट कर आया हुआ रामदयाल गाँववालों को अपने चापलूसी भरे व्यवहार से उल्लू बना कर थोड़े ही समय में समृद्ध बन जाता है। यह कहावत उस पर सटीक बैठती है। हिन्दी में भी इससे मिलती जुलती कहावत है - एक तीर से दो शिकार।

"पैसा पीर पतंदर साडा, असाँ पैसे दे बंदे।"[1]

इस कहावत से पैसे को भगवान मानना और पैसे की गुलामी करने का भाव प्रकट होता है। रामदयाल बड़ी बेशर्मी से इस कहावत का प्रयोग करता है जो उसकी स्वार्थपूर्ण मानसिकता को प्रकट करती है क्योंकि सब-कुछ छोड़कर खाली हाथ आने पर साम-दाम-दण्ड-भेद चारों तरीकों से वह पैसा इक्कट्ठा करना ही अपना ध्येय समझता है। हर चीज को वह पैसों के तराजू में ही तौलता है। उसका दीन-ईमान ईश्वर सब कुछ पैसा ही हो जाता है।

"तेरा काम सिरे चढ़े से तो समझी हिजड़ों के लड़के पैदा हो से।"[2]

मुखिया द्वारा घर ठीक करवाने की बात सुनकर इस कहावत के माध्यम से मुखियानी मुखिया पर कटाक्ष करती है। उसके अनुसार जिस प्रकार हिजड़ों के घर लड़का पैदा होना असंभव है उसी प्रकार मुखिया द्वारा सोचा गया काम पूरा होना मुश्किल है।

---

1. घास गोदाम - पृ. 115.
2. - वही - पृ. 85.

" भौला बक्श है बिगड़्यां तिगाड़ियां का "[1] पालीसिंह अपने गांव वालों को बताता है कि कलकत्ते में अंग्रेजों के द्वारा पंजाबी ट्रक ड्राइवरों को परेशान करने पर ट्रक ड्राइवरों ने बदला लेना शुरू किया। अंग्रेज सिपाहियों को वे मार कर उनके पैसे छीन लेते थे। फलस्वरूप अंग्रेज सिपाहियों ने उन्हें परेशान करना छोड़ दिया। इस बात से खुश होकर गांव के बुजुर्ग इस कहावत का प्रयोग करते हैं कि बिगड़े हुए लोगों का एक आम इलाज डंडा है।

" बहू कम्म करन नूं कही, बहू सुज्ज भड़ोला जही
बहू खान नूं कही, दो सज्जरियां दो बही। "[2]

चेतन की पत्नी चन्दा के आलसी और सुस्त स्वभाव से खिन्न होकर चेतन की मां कहती है कि यह तो केवल खाना और सोना जानती है काम करना नहीं। अपनी बात को और स्पष्ट करने के लिए वह इस कहावत का प्रयोग करती है कि बहू से काम करने को कहा तो सूज कर भड़ौला हो गई। बहू को खाने को कहा तो दो बासी और दो ताजी रोटियां लेकर बैठ गई। हिन्दी में भी इससे मिलती जुलती कहावत है - " काम की ना काज की, अढ़ाई सेर अनाज की। "

" दो पइय्यां, बिस्तर गइय्यां, सदका मेरी हुई दा। "[3]

---

1. रात, चोर और चांद - पृ. 96.
2. गिरती दीवारें - पृ. 209.
3. - वही - पृ. 54.

चेतन के भाई रामानन्द पर पिता की अनगणित गालियों और मार का कोई असर नहीं होता । इस पर उसके पिता कहते हैं कि मार-मार कर मेरे हाथ दुःख जाते हैं पर इसका तो वही हाल है कि दो पड़ी और भूल गई, सदके मेरी पीठ के । हिन्दी में " चिकना घड़ा " मुहावरा इसके किंचित् समरूप कहा जा सकता है ।

" माँ पेठ दिया गालाँ, दुद्द-घेउ दियाँ नालाँ । " [1]

माता-पिता की गालियाँ और मार तो बच्चों के लिये दूध और घी की घूँटों के समान फायदे मंद हैं । चेतन अपने क्रूर पिता की मार-पीट को याद कर सोचता है कि उसके पिता इस कहावत को सर्वथा सत्य मान कर इसका पालन करते थे । इसीलिये वे अपने बेटों से सदा गाली गलौज और मार पीट करते थे ।

" छड़े उठाई पूँछड़ी गया सौदाई हो " [2]

यह कहावत अविवाहितों अथवा पत्नी-विहीनों के बारे में कही जाती है । यहाँ चेतन की माँ अपनी बड़ी बहू को डेढ़ साल बाद मायके से ले आने के लिये कहती है और अपने बड़े बेटे रामानन्द के अकेले पन और उसकी भावानाओं का ख्याल कर इस कहावत को दोहराती है ।

---

1. गिरती दीवारें - पृ. 85.
2. एक नन्ही किन्दील - पृ. 320.

" अपनी ओड़ निभाइए ओहदी ओह जाने " [1]

टी॰बी॰ की मरीज अपनी भाभी की बदमिज़ाजी, कड़वी बातें और शंकालु स्वभाव से मर्माहत अपनी पत्नी चन्दा को चेतन इस कहावत के द्वारा दिलासा देता है कि हमें अपना कर्त्तव्य करना चाहिए, दूसरे के कर्त्तव्य की चिन्ता हम क्यों करें ।

" पीर जिन्हाँ दे टप्पने, चेले जान छड़प्प " [2]

चेतन की पहली पुस्तक छपने पर जीवनलाल कपूर, पण्डित रतन और चेतन दोनों को एक साथ लपेटते हुए व्यंग्य करता है कि जिनके उस्ताद कूदने वाले होते हैं, उनके चेलों को छलांग लगाने में दिक्कत नहीं होती । पलक झपकते ही वे छलांग लगा देते हैं।

" दिल वट्ट ज़माना कट्ट, भले दिन आवणगे " [3]

दिल कड़ा कर मुसीबत के दिन काट लो, अच्छे दिन भी आयेंगे । हिम्मत देने वाली आशाभरी कहावत से चेतन की माँ तंगी के दिनों में अपने बच्चों को हिम्मत बंधाती और बहलाती थी ।

" बाह्मन दा बाह्मन बैरी, कुत्ते दा कुत्ता बैरी । " [4]

1· एक नन्ही किन्दील - पृ· 403·

2· - वही - पृ· 460·

3· - वही - पृ· 605·

4· शहर में घूमता आईना - पृ· 48·

दुहाजू रामदित्ते की बड़ी मुश्किल से पक्की हुई शादी की बात पण्डित गुरदासराम ने तुड़वा दी और झूठी बीमारी की खबर उड़ाई जिससे फिर उसकी शादी वहीं नहीं हो सकी । उसके इस कुकृत्य पर चेतन की माँ खिन्न हो इस कहावत का प्रयोग करती है कि जिस प्रकार कुत्तों में आपस में बैर होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण भी एक-दूसरे को पलते-फूलते नहीं देख सकते ।

" माड़े जट्ट कटोरा लब्भा, पानी पी-पी आफरिया " [1]

गरीब जाट कटोरा मिलने पर इतना प्रसन्न हुआ कि बिना प्यास के भी बार-बार पानी पी कर अफारे से मर गया । यह कहावत विधुर रामदित्ते पर बिलकुल पूरी उतरती है । जो कई सालों की प्रतीक्षा और कोशिशों के बाद अन्त में विधवा आश्रम से तीन सौ रुपये में बीवी खरीद कर लाता है और थोड़े ही दिनों में बीमार पड़ जाता है तो लोग कहते हैं कि शायद बहुत दिन का भूखा रामदित्ता कुछ ज्यादा ही " खा " गया है ।

" इक संुड्ढ दी गड्ढी लब्भी एस बांदर, हट्टपा बैठा इह पंसारियाँ दी " 2

1· शहर में घूमता आईना - पृ· 53·

2· - वही - पृ· 296·

कम लियाकत या योग्यता के बावजूद बढ़ चढ़ कर झूठी शान दिखाने वालों पर लोग इस कहावत का प्रयोग करते हैं कि इस बंदर को एक अदरक या सौंठ की गांठ मिल गई तो पंसारी की पूरी दुकान ही लगा बैठा। बहुरूपिया जालन्धरमल, जो अब योगी बनकर तत्वज्ञान का ढोंग कर रहा है, के बारे में चेतन इस कहावत का प्रयोग करता है और बहुरूपिये का मजाक उड़ाता है।

" ख खेह उड़ावे फेर वी ख खट्ट के लियावे "[1]

इस कहावत में खत्रियों की जातिगत विशेषता उजागर होती है कि खत्री चाहे कितना ही क्यों ना गँवा दे या खाक छाने परन्तु फिर भी कमा कर ही लाएगा। यह कहावत चेतन अपनी गली के निपट मूर्ख और बेवकूफ लड़के लालू के संबंध में सोचता है जो अब अच्छी खासी दुकान चला रहा है और इस दुकान का मालिक भी है।

" चोर उचक्का चौधरी, गुण्डी रण परधान "[2]

समाज में फैली अव्यवस्था तथा नौकरशाही और अफसर शाही में ऊपर से नीचे तक फैले भ्रष्टाचार को लक्ष्य कर यह कहावत कही गई है कि जब चोर, उचक्के, गुण्डे और बदमाश चौधरी और प्रधान के पद पर हों तो ऐसा ही होता है यहाँ वर्तमान समय की बुरी हालत पर आक्रोश व्यक्त किया गया है।

---

1. शहर में घूमता आईना - पृ. 321.
2. - वही - पृ. 332.

इसी तरह जगदीशचन्द्र के उपन्यास " मुट्टी भर कांकर " में भी इसका प्रयोग गांव में फैलती अव्यवस्था को लक्ष्यकर किया गया है ।

" मुंशी सबक न देसी --- घर ते आन दे सी " [1]

मुंशी अथवा मास्टर पाठ चाहे न पढ़ाए पर अपने घर में तो आने देगा । यह कहावत रामदयाल गांव के चौधरियों से मिलने के बाबत अपने साथी से कहता है क्योंकि उसे डर है कि गांव के चौधरी लोग उससे ठीक से बात नहीं करेंगे और दुकान बनाने की अनुमति तो बिलकुल ही नहीं देंगे ।

" सद्दो न बुलायी, मैं लाड़े दी ताई " [2]

बिना पूछे परामर्श देना या बीच में बढ़-बढ़ कर बोलने वाले पर यह कहावत कही जाती है । गांव में दो पार्टीयों के बीच लड़ाई हो जाने पर मिलखासिंह उस लड़ाई की तह में छुपे कारण और पुरानी कहानी गांव वालों को बता रहा था । दिलदार सिंह जब बीच-बीच में उसे टोकता है, तो मुंशी उसे डांटते हुए इस कहावत का प्रयोग करता है कि ना कोई पूछ रहा है ना उसकी बात को सुन रहा है तब भी यूं ही अपना महत्व बताने को बीच-बीच में बोले जा रहा है ।

" पूत डरावे मरनों, रण्डी (विधवा) खसम करनों " [3]

1· मुट्टी भर कांकर - पृ· 41·

2· कभी न छोड़े खेत - पृ· 21·

3· - वही - पृ· 29·

डरा-धमका कर अपनी बात मनवाने पर यह कहावत कही जाती है कि बेटा मरने की धमकी देकर और विधवा औरत दूसरा खसम करने की धमकी देकर अपनी बात मनवा लेते हैं। गांव में हाकिमसिंह का लड़का पढ़ाई छोड़ने की धमकी देकर अपने पिता से मोटर साइकल खरीदने की जिद करता है। इसी घटना को लेकर गांव की औरतें इस कहावत का प्रयोग करती हैं।

" मुल्ला, मियां मशालची तीनों एक समान, लोकां नूं दस्सण
चाणना आप हनां जाण। " [1]

दूसरों को उपदेश देने मगर स्वयम ही उसका पालन नहीं करने पर यह कहावत कही जाती है कि मुल्ला, मियाँ और मशालची तीनों एक समान हैं, जो दूसरों को तो रास्ता दिखाते फिरते हैं किन्तु अपने-आप भटके हुए हैं। यहाँ कांग्रेस का एक कार्यकर्ता, पार्टी अध्यक्ष बख्शी जी के लिए इस कहावत का प्रयोग करता है क्योंकि उन्होंने सबको प्रभात-फेरी के लिए सुबह 4 बजे का समय दिया था और खुद देर से पहुँचे थे।

" लल्लू करे क्वील्लयां रब्ब सिद्दियां पावे " [2]

भाग्य सीधा हो तो लल्लू की गलतियों को भी भगवान ठीक कर देता है। शिमला में सी.पी. के मेले में एक गलती के परिणामस्वरूप भोगे गये नारकीय दंड को याद कर चेतन कहता है कि उस घटना ने उसे

---

1. तमस - पृ. 16.
2. एक रात का नरक - पृ. 81.

भाग्यवादी बना दिया । क्योंकि भाग्य सीधा होने पर भयंकर भूल होने पर भी परिणाम गंभीर नहीं होता इसके विपरीत भाग्य उल्टा होने पर छोटी सी गलती भी गले का फंदा बन जाती है ।

"गधी मरै कुम्हार की, धोब्बण सती हो । "।

दूसरों के कामो में या परेशानी में व्यर्थ टांग अड़ाना । गाँव की जमीन सरकार द्वारा ऐक्वायर करने और बची खुची जमीन गाँव के चौधरियों द्वारा बेचने की खबर पाकर गाँव का दुकानदार परेशान हो उठता है और लोगों को उल्टी-सीधी बातों से भड़काने की कोशिश करता है । बात खुलने पर ताऊ इस कहावत का प्रयोग करते हुए कहता है कि लोगों की जमीन बिकने से दुनिया बिना बात के परेशान हो रही है ।

मुहावरे और कहावतें तीव्रतम जीवनानुभवों को संक्षिप्त और चुस्त शब्दावली में प्रकट करते हैं, इस तरह कहावतों में किसी जाति-विशेष के वैशिष्टय की सुगन्ध (essence) बसी होती है । कहावतें मानों उस जाति के गुणों का अर्क होती हैं । पंजाब के लोगों के जीवन की लापरवाही, साहसिकता, भौतिकता पसंदगी आदि विशेषताएँ उनके द्वारा व्यवहृत कहावतों में प्रच्छन्न रूप से व्यक्त होती हैं ।

---

1. मुट्ठी भर कांकर - पृ. 149.

लोक - गीत :-

सभ्यता और संस्कृति के विकास-क्रम में गीत मानव की श्रेष्ठ उपलब्धी है । अपने मन में उमड़ने वाली कोमल अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यक्ति गीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है । इस अभिव्यक्ति में कहीं शब्द अपर्याप्त प्रतीत होते हैं तो कहीं वे लय और सुर से युक्त होकर अद्भुत समां बांध देते हैं । गीत मानव हृदय की गहराइयों से निकलते हैं । जीवन के विशेष अवसरों पर हृदय की भावनाएं गीत के रूप में सहज ही फूट पड़ती हैं । अत: लोक-मानस से निकलने वाले इन लोक-गीतों के निर्माण में कोई आभासपूर्वक प्रयत्न नहीं किया जाता क्योंकि ये तो हृदय के उद्गारों के रूप में प्रकट होते हैं । इनकी उत्पत्ति तो लोगों के सामान्य जीवन में रोजमर्रा के कार्यों के दौरान, हो जाती है । लोक-गीतों के निर्माता के रूप में सम्पूर्ण लोक-मानस को देखना चाहिये । वैसे भी इनके रचनाकार के रूप में किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं लिया जाता, न इसकी जानकारी ही हो पाती है । रचनाकार का अपने समाज से इतना अधिक तादात्म्य हो जाता है कि वह और उसकी रचना अपनी अलग-अलग पहचान नहीं रखते और समाज में ही रच-बस जाते हैं । लोक-गीत मौखिक रूप में मिलते हैं, जिससे समय के साथ-साथ इनके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है और नए लोक-गीतों का निर्माण भी होता रहता है । कभी-कभी इन लोक गीतों के निर्माण में कई व्यक्तियों का सहयोग रहता है अर्थात मिल-जुलकर कड़ी दर कड़ी जोड़ ली जाती है । अत: सामूहिक उत्पादन होने के नाते लोक-गीत पूरे समाज की धरोहर हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति अपना समझता है । सभी लोग मिल-जुल कर बड़े चाव से इन्हें गाते हैं । डा॰ सत्येन्द्र ने लोक-गीत की परिभाषा इस

प्रकार दी है - "वह गीत जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक-मानसाभास हो, लोक-गीत के अन्तर्गत आयेगा ।" [1]

प्रत्येक क्षेत्र-विशेष के लोक-गीत अपनी निजी विशेषताएँ लिए होते हैं। स्थानीय परिवेश इन गीतों में से झांकता है । वहाँ की संस्कृति की स्पष्ट छाप इन गीतों में दिखाई पड़ती है । सांस्कृतिक दृष्टि से, इस प्रकार क्षेत्र-विशेष तथा वहाँ के लोक-गीतों का योगदान अतुल्य है । अतीत में घटी बहुत सी घटनाओं की चर्चा भी उन गीतों में होती है जिससे उनका ऐतिहासिक महत्व भी सामने आता है ।

पंजाब के लोगों का बड़ा ही गौरवपूर्ण सांस्कृतिक इतिहास रहा है । यहाँ के लोगों ने जीवन में आकंठ डूबकर उसका रसपान किया है । युद्ध हो कि प्रेम, हास्य हो या करुणा, हर प्रकार की भावनाओं से गुजरकर इन्होंने जीवन को सम्पूर्णता में भोगा है और इस बात के साक्षी पंजाब के प्रचलित लोक-गीत हैं । "पंजाबी लोक-गीत पंजाबियों के जीवन की मुंह बोलती तस्वीरें हैं । इन में जन्म के समय गाये जाने वाले गीतों और बच्चों के खेलों से लेकर, मायके, ससुराल, विवाह, मुकलावे, मेल, वियोग, ऋतु, त्यौहार, मेले तथा अंत में मृत्यु के समय किये जाने वाले वैन, कीरने तथा अलाहुनियाँ तक मिलते हैं । " [2]

1· लोक साहित्य विज्ञान, डा· सत्येन्द्र, पृ· 326

2· पंजाबी लोक-गीत परंपरा, विक्रमसिंह घुमन, पृ· 12

ये गीत यहाँ के परंपरागत जीवन, साहित्य तथा इतिहास पर रोशनी डाल कर यहाँ के जीवन को प्रकाशमान करते हैं।

लोकगीत जीवन के हर मोड़, हर भाव से जुड़े हुए मिलते हैं। हमारी संवेदनाओं को छूने वाला शायद ही कोई अवसर या स्थिति हो जिससे सम्बन्धित लोक गीत नहीं मिलते हों। जीवन के हर संवेदित पल को लोकगीतों ने सहलाया है। लोकगीत में जीवन, विश्व, प्रकृति, समाज, व्यक्ति सबकी आन्तरिक सचाई उभर कर सामने आ जाती है। जीवन के विभिन्न संस्कारों से संबंधित लोकगीत सामाजिक रीति-रिवाजों तथा जीवन गति की समीक्षा भी करते प्रतीत होते हैं। अतः पंजाबी लोक गीतों के विशाल भंडार का हमारे उपन्यासकारों ने जीवन की निकटतम तस्वीर खींचने के लिए जैसा उपयोग किया है उसका थोड़ा-बहुत जायजा लेना मुनासिब होगा, सुविधा के लिए हम इनका एक ढीला-ढाला वर्गीकरण किये ले रहे हैं।

(क) धर्म सम्बन्धी गीत :-

पंजाब में हिन्दू मुस्लिम तथा सिक्ख मुख्य रूप से तीन धर्म चले आ रहे हैं। तीनों सम्प्रदायों के लोग सुख और दुःख में अपने-अपने अराध्य की गीतों के माध्यम से प्रार्थना करते हैं। कहा भी जाता है कि गीतों के माध्यम से की गई प्रार्थना में संगीत के सुर भगवान को मोह लेते हैं।

व्यक्ति दुःख और निराशा में भगवान को याद करता है। उस समय भगवान के अतिरिक्त उसे और कोई सहारा नज़र नहीं आता। ऐसे समय भक्ति भरे गीत या भजन बड़े कारगर साबित होते हैं। इन्हें

गा कर व्यक्ति अपने मन का दु:ख भी हल्का कर लेता है और भगवान की प्रार्थना भी कर लेता है । " बांधो न नाव इस ठाँव " में चेतन पहाड़ी कैद में असहाय अवस्था के दौरान अपनी माँ से सुना भजन गा उठता है --

" कौन ओ बंडावे मेरी पीर
तेरे बिना
ना पल्ले पैसा, ना साहूकारा
क्या कीरये तदवीर
तेरे बिना
कौन ओ बंडावे मेरी पीर । "[1]

" मय्यादास की माड़ी " में वानप्रस्थी भी दु:ख और निराशा में परमात्मा की महिमा गाता है --

" औरवी वाट पहाड़ दी
किवे चढ़ सके है पिपीलका
अंधा चाहे चन्द्र लेखाँ, मशक हो गजड़ीलका
... तेरी महिमा, तू ही जाणे
होर सब वड़िआइयाँ ....
क्षुद्र जन्तु आखे सोई
मन विखे जो आइयाँ ... "[2]

---

1. बांधो न नाव इस ठाँव - पृ. 280
2. मय्यादास की माड़ी - पृ. 216.

" तमस " में हरनामसिंह दंगे के समय अपने बच्चों के बारे में सोच कर चिंता और व्याकुलता की दशा में गुरु महाराज की शरण लेता है और मन की शांत करने के लिये उनकी वाणी के शब्द गाता है --

" जिसके सिर उपरि तूं सुआमी
सो दुःख कैसा पावै । " [1]

सन्त या साधुओं द्वारा गाये गये भजनों में विरक्ति की भावना अधिक रहती है --

" ऐत्थे बैठ किसे नई रहना
भज ले नाम बन्देआ
तेरे महल ते माल ख़ज़ाना
(ओ) तेरे महल ते माल ख़ज़ाना
रिश्ता नाता संग सुहाना
(ओ) तेरे नाल नई कुछ जाना
जेहड़ा कम्म तेरे है आना
ओह है नाम बन्देआ । " [2]

रमजान शरीफ़ के महीने में सुबह-सुबह स्त्रियाँ गाती सुनायी देती हैं --

---

1. तमस - पृ. 171.
2. बांधो न इस नाव - पृ. 186.

" डाचीवालेया मोड़ मुहार वे,
" डाचीवालेया ले चल नाल वे,
" तेरी डाची दे गले विच टल्लियां
" असी फेर मनावन चल्लियां " ।[1]

गुरुद्वारे में होने वाले मेले या उत्सव के दिन लोग टोलियों में इकट्ठे हो भक्ति रस में डूब कर " शब्द " गाते हुए आते हैं --

" ओए भुल्या मना ।
तूं राम क्यों न जपे "[2]

सबद पाठ का पंजाबी धार्मिक जीवन में अपना ही महत्व है । गुरुद्वारे में केवल सिक्ख लोग ही नहीं जाते, गैर सिक्ख भी वहाँ जाकर मत्था टेकते और सबद-कीर्तन में भाग लेते हैं । वे मनौतियां वगैरह भी रखते हैं । ग्रन्थ साहिब के पवित्र वचनों को लोग अक्सर गाते रहते हैं । इसी तरह हिन्दु देवी-देवताओं के गीत भी वहाँ प्रचलित हैं ।

धार्मिक विश्वास और भक्ति के साथ-साथ धर्म भीरु समाज, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, मंत्र-तंत्र-जादू-टोना तथा भूत-पिशाच के अस्तित्व में विश्वास किया जाता है । बलाओं को दूर करने के प्रयत्न में भी गीत ही सहायक होते हैं । हाँ, इनके बोल जरूर उट-पटांग होते हैं ।

---

1. झूठा - सच - पृ. 348.
2. दो अकालगढ़ - पृ. 445.

" काली घरी, चार घरी
काट-काट देही को खाये
पानी बहाये समुद्र का भूत
चुड़ैल भस्म हो जाये
काली घरी चार घरी काट काट ..
" लाल घोड़ा
लाल जोड़ा
लाल कलगी
लाल निशान " ।

सामाजिक जड़ता के प्रतीक अंधविश्वास सभी समाजों में कमोबेश पाये जाते हैं और इनका चित्रण भी उपन्यासों में सजीवपूर्ण हुआ है ।

सूफियों-सन्तों द्वारा रचे गये गीत पंजाब में बेहद लोकप्रिय हैं। बुल्लेशाह, वारिसशाह, मोतीराम आदि कवियों द्वारा रचे गये सूफियाना गीत यहाँ के जनमानस में रच-बस गये हैं । " जिन्दगीनामा " में राबियां बुल्लेशाह की काफी गाती है --

" मैं सूरज अगन जलाऊंगी
मैं प्यारा यार मनाऊंगी
सात समन्दर दिल के अन्दर
मैं दिल से लहर उठाऊंगी
मैं प्यारा यार मनाऊंगी । " 2

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 197.
2. - वही - पृ. 131.

डोडा, कोकला गंगोईशाह की काफी गाते हैं --

" मेरा पेशवा अल्लाह बक्श पेशवा
महबूबे - खुदा मामून अल्लाह बक्श पेशवा
मेरे साहिबे-औलिया अल्लाह बक्श पेशवा
मेरे पेशवा . . . . " 1

राबियां शाह-मदार की काफी शाहनी के अनुरोध पर सुनाती है --

" जिन्दा शाह मदार
अल्लाह री मदार
नीले घोड़ेवाला
सब्ज दुशालेवाला
बाँक्या फौजांवाला
किस औन्दा देख्या
नीले घोड़ेवाला " 2

शाहनी बाबा फ़रीद की वाणी बड़ी श्रद्धा और भक्ति से गाती है --

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 216.
2. - वही - पृ. 217.

" पहिले पहिरे फुल्लड़ा
फुल भी पछा राति
जो जागन्हि लौहन से
साँई कन्नो दात ।
दाती साहिब सीन्दया
किये चले तसु नालि
इक जागदे न लहन्हि
इकन्हा सुत्तियाँ दे उठाल । "[1]

(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत :-

पंजाब के लोग यूँ तो पूरे साल ही मस्ती में झूमते गाते हैं । दुःख या सुख की कोई भी स्थिति इनके होठों से बहते लोक-गीतों के झरने को सुखा नहीं पाती, किन्तु सावन और चैत-वसाख की ऋतुएँ तो यहां के लोगों को हर्षोल्लास से भर देती हैं और ये झूम कर नाच-गा उठते हैं। यहाँ के सूफी सन्तों द्वारा रचे गये बारहमासा तथा अन्य ऋतु गीत अत्यधिक लोकप्रिय हैं ।

" जिन्दगीनामा " में पंजाब के प्रसिद्ध सूफी कवि बुल्लेशाह के बारह - मासे का उल्लेख किया गया है, जिसमें सभी ऋतुओं का मोहक वर्णन किया गया है --

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 55.

" फागुन फूले खेत ज्यों बन तन फूल श्रृंगार
होर डाली फुल्ल पत्तियाँ गल फूलन के हार
होरी खेलन सँइयाँ फागुन मेरे नैन
झलारी वग्गन
आँखाँ औंदियाँ दिन तग्गन सीने वान
प्रेम के लग्गन
चैत चमन में कोयलिया नित कूक
करे पुकार
मैं सुन-सुन झुर-झुर मर रहो
कब आवे घर यार । " [1]

बुल्लेशाह ने बारहमासों का चित्रण कर प्रत्येक मास में भले ही परमात्मा से विरह की बात कही हो, लेकिन सूफी कवियों के इस " रहस्यवाद " को पंजाब के प्रेम जीवन में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । गाँव की लड़की राबियाँ सावन की महिमा अपने गीत द्वारा व्यक्त करती है --

" सावन माह सुहावना जो धरती बूँद पई
अनहद बरसे मेघला जो मन की तृप्त गई
मल्हारां सोहन सारे सावन, दूतो दूत लगे उठ जावन
नी घर खेलन कुड़ियाँ गावन, मैं घर रंग रंगीले आवन । "[2]

1· जिन्दगीनामा - पृ· 89·
2· - वही - पृ· 132·

सावन का महीना प्यासी धरती पर जब जल बरसा चारों ओर हरियाली भर देता है तब पंजाब जैसे कृषि-प्रधान क्षेत्र में तो यह महीना और भी खुशियाँ लाता है और यहाँ के लोग झूम कर वर्षा मंगल गा उठते हैं। लेकिन लोकगीतों का सामाजिक संदर्भ हमेशा प्रेम तक ही सीमित नहीं रहता, वह विस्तृत भी होता है। कौड़ा मिरासी चैत महीने के बहाने सरकार पर व्यंग्य करता है --

" चढ़ गया चैत पड़ी पुकार
यारों बड़ी बहुत सरकार
धमके काबुल और कन्धार
डेरे लग गये अटकीं पार
आखिर मरना
फिर क्यों डरना। "[1]

धन-धान्य से समृद्ध पंजाब की धरती की लड़कियाँ बादलों से अपने मायके और ससुराल दोनों जगह बरसने की प्रार्थना करती हैं --

" बरसीं ताँ बरसी मीहां मेरे बाबल दे देस,
होर वी बरसी सौहरे क्यारिएँ।
बरसिया ताँ बरसिया बीबी तेरे बाबल दे देस
होर वी बरसिया बीबी सौहरे क्यारियां। "[2]

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 105.
2. धरती गाती है - पृ. 21.

पंजाब के प्रसिद्ध कवि मोतीराम बारह महीनों के हवाले से लोगों को इस मिथ्या संसार और लोभ लालच से दूर रहने को कहते हैं तथा मृत्यु को शाश्वत सच बताते हैं । पंजाब में अक्सर इसे गाया जाता है । " झरोखे " में बुखार से तपते बेचैन बालक को शान्ति प्रदान करने के ख्याल से उसकी माता उसे इस बारहमासा के कुछ छन्द गा कर सुनाती है --

" चेतर चित विच समझ पियारे
दुनिया झूठा भाणा ई
जिन्हां नाल तुध लायी दोस्ती
उन्हांवी चला जाणा ई ।
इस माया दा माण न कीरए
माया काग बन्हेरे दा
पल विच आवे, छिन विच जावे
सैर करे चौफेरे दा ... ।
मोतीराम कहे समझ पियारे
अन्तकाल जम घेरेगा । " [1]

बारहमासा की विषयवस्तु समाज की बहुविध समस्याओं से जुड़ती हुई जीवन के बहुवर्णी रूपों को गीतों में ढालती है ।

---

1. झरोखे - पृ. 90

§ ग § संस्कार गीत :-

सांस्कारिक अनुष्ठानों की शुरुआत मनुष्य के जन्म के साथ ही हो जाती है, जिनका क्रम मृत्युपर्यन्त (और मृत्यूपरान्त भी) चलता रहता है । पूजा-पाठ के साथ-साथ गाये जाने वाले गीतों के द्वारा मानो इन संस्कारों को गीतात्मकता भी प्रदान की जाती है । पंजाबी लोकगीत भी बच्चे के जन्म के साथ ही शुरू हो जाते हैं । सर्वथा नयी दुनिया में बच्चे का स्वागत लोक गीतों की मीठी स्वर-लहरी से किया जाता है । ये गीत बच्चे के लिये लोरी भी बन जाते हैं । इन गीतों में बच्चे का सम्बन्ध उसके हर एक रिश्तेदार के साथ बताया जाता है तथा कोमल - प्रेमिल भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है । " जिन्दगी नामा " में शाहनी के घर पुत्र जन्म के समय मिरासी, नाईन और गाँव के अन्य लोग तरह-तरह से शगुन के गीत गाते हैं --

" नवाब धियान की बेल
बीबी धियान की बेल
जातकड़े की चाची सौ-सौ सगुण मनाये
जातक की फूफियां सो-सौ बरस जिये । " 1

औरतें जच्चा गाती हैं ---

" नौरंग चूड़ेवालियाँ
मेरी जच्चा रानियाँ
सूहे जोड़े पहन सुहागाँ

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 154.

मोतियाँ माँग सजावनी
बैठ अँगना गोद भरावनी
मेरे लाल जियो
लख साल जियो । " [1]

बच्चों के जन्म के बाद उनके खेलों में भी गीतों की अपनी भूमिका है । " जिन्दगीनामा " में बच्चे खेनू खेलते हुए गाते हैं --

" आल थाल
पहला थाल
माँ मेरी के
लम्बे बाल
कूएँ हेठ पानी
माँ मेरी रानी
काढ़ेगी कसीदड़ा
दूध पाय मधानी । " [2]

बच्चों के संसार में भोजन खिलाने, हिंडोला झुलाने, तरह-तरह के खेल खिलाने, नये पाँवों से धरती पर चलाने, सुलाने आदि सैकड़ों अवसर होते हैं जिनको लेकर लोकगीत रचे जाते रहे हैं । बच्चे के अन्नप्राशन, नये दाँत निकलने, बुरी नजरों से बचाने आदि को लेकर भी लोकगीत बने हैं । इन गीतों में वात्सल्य भाव तो टपकता ही रहता है पर

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 157.
2. - वही - पृ. 29.

साथ ही इनमें बहुत सी रोजमर्रा की वस्तुओं, स्थितियों, पात्रों और घटनाओं का भावपूर्ण वर्णन भी होता है । इस तरह लोकगीत सामाजिक परिवेश-सहित जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं । बच्चे के विद्यारंभ, मुंडन, उपनयन आदि संस्कारों के गीत अब उतनी मुखरता से सुनायी नहीं देते और इन्हें औद्योगीकरण, शहरीकरण, औपचारिकता तथा आधुनिक प्रतियोगितापूर्ण जीवन की आपा-धापी ने दबा दिया महसूस होता है, फिर भी इनकी गूँजे मन्द स्वर में ही सही, पंजाबी जीवन में सुनायी अब भी देती रहती हैं ।

संस्कार सम्बन्धी लोकगीतों में वैवाहिक उल्लास की अभिव्यक्ति का अपना ही अंदाज होता है । लड़के की शादी के समय बहनें शगुन के लिये " घोड़ी " बड़े चाव से गाती हैं --

" मेरे वीर दा सेहरा आया
कोई माली गूंथ ले आया
उत्ते छत्र नबी का सोहवे
सालयात याह अली । " 1

लड़की की शादी के समय शगुन के लिए " सोहाग " के गीत गाए जाते हैं, लेकिन " गिरती दीवारें " में नीला के अनमेल विवाह के समय गाया गया निम्नलिखित गीत चेतन की मानसिक पीड़ा को और बढ़ा देता है क्योंकि उसकी साली नीला का पति अधेड़, दुहाजू और कुरूप है । परन्तु आमतौर पर ये गीत शादी के समय उल्लास का समां बाँध देते हैं --

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 47.

" चन्दन दे ओहले ओहले क्यों खड़ी, नी बेटी !
चन्दन दे ओहले
मैं ते खड़ी आँ बाबल जी दे कोल, बाबल वर लोड़िए नी बेटी !
केहो जेहा वर लोड़िए ?
बाबल, ज्यों तारिया विचो चन्न, चन्ना विच्चो कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए । " [1]

बड़ी-बूढ़ी औरतें " रात, चोर और चाँद " में सरनो की शादी के समय " सोहाग " का एक और गीत गाती हैं --

" हे मेरे बाबला मेरा काज रचा
धरमो राज्य वे मेरा काज रचा । " [2]

" जिंदगीनामा " में फतेह की बारात आने पर औरतें उसके स्वागत में गालियाँ गाती हैं --

" तेरी फूफो का है घर
रे विशंक वेहड़े वड़
तुझे किसी का नहीं डर
आ ढुक रे । " [3]

1· गिरती दीवारें - पृ· 582·
2· रात, चोर और चाँद - पृ· 353·
3· जिन्दगीनामा - पृ· 227·

बेबे करमो सिठनी देते हुए गाती है --

" चाचा न पढ़ेया तेरा दादा न पढ़ेया
पुत्तर हराम का मसीती न चढ़ेया
यह बात बनती नहीं । " 1

गाली-गलौज, छेड़-छाड़ और हंसी-मजाक विवाह के अवसर पर सामाजिक नैतिकता में जकड़े मन को कुछ समय के लिए उन्मुक्त बना देते हैं और गीतों के स्वच्छन्द भाव हवा में हलके होकर उड़ने लगते हैं। रोमांस की मिठास नमकीन स्वाद से भरे लोकगीत सारे वातावरण को उमंग से भर देते हैं । विवाह के साथ ही बेटी की विदाई का समय भी आता है । पिया के घर जाने की हार्दिक गुदगुदी के भीतर बाबुल की गलियाँ छूटने की एक टीस भी कसकती रहती है। शादी के बाद विदाई के समय गाये जाने वाले लोकगीत सुनने वालों की आँखों में आँसू ला देते हैं । इन गीतों का करूण स्वर हृदय को भेद देता है । इस अवसर पर बेटी को अपने चिर-परिचित बचपन के माहौल से अलग अनजानी दुनिया में जाने की बात से घबराहट होती है । " गिरती दीवारें " में नीला की विदाई पर गाया गया ऐसा ही गीत सबको रूला देता है --

" साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना ।
साडी लम्बी उडारी वे
खबरे किस देस जाना । " 2

1· जिन्दगीनामा - पृ· 227·

2· गिरती दीवारें - पृ· 588·

इस गीत में जहाँ दूर पराये देश जाने का अंदेशा व्यक्त किया गया है तो और एक गीत में दुल्हन अपने पिता से अनुरोध करती है कि मेरा गुड़ियों से खेलने का चाव अभी पूरा नहीं हुआ अत: मुझे घर तथा अपने देश से दूर नहीं भेजो --

" आले ते जाले बाबल गुड्डियां,
मेरा नहीं खेड्डन ते चाह होये ।
मां रोंदी दी अंगिया भिज्ज गई,
प्यू रोये दरया बहे
मेरा वीर रोये, सारा जग होये ।
मेरी भाभियाँ मन चाह होये । "[1]

इस गीत में वहीं बाल-विवाह की परम्परा को याद दिलाने वाली मानसिकता की हल्की छाया भी प्रच्छन्न दिखाई दे जाती है ।

विवाह के पश्चात गृहस्थ को एक नयी जिन्दगी शुरू होती है और जीवन का नया क्रम भी उपस्थित होता है । लोकगीतों में घर-बार की दिनचर्या के भी बड़े रोचक, मोहक और हृदयस्पर्शी चित्र प्राप्त होते हैं । गृहस्थी के विभिन्न कामों से जुड़े हुए लोकगीत गाये जाते हैं। दही बिलोने, चक्की पीसने, व्रत, पूजा, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित सैकड़ों लोकगीत अकेले अथवा सामूहिक रूप से गाए जाकर जीवन की नीरसता को दूर कर उसे हँसी-खुशी से भर देते हैं । पंजाबी के अनेक लोकगीत लोकनृत्य से जुड़कर अपनी सरसता और भी बढ़ा देते हैं ।

---

1. झूठा-सच - 1 - पृ. 307.

सांसारिक जीवन के विविध प्रसंगों को स्थापित करने में लोकगीतों का कोई सानी नहीं है । गृहस्थ औरतों के जीवन की एकरसता (मोनो - टोनी) को, लोकगीतों की कड़ियाँ, भंग करके उसमें नयी आशा, आकांक्षा, उमंग और स्फूर्ति भरती रहती हैं । औरतें अक्सर काम-धन्धों में लगी हुई गीतों की पंक्तियाँ गुनगुनाती हैं । अनेक विशेष अवसरों पर मुहल्ले की स्त्रियाँ आपस में मिल-बैठती हैं और तब गाने-बजाने, नाचने का रात-रात भर दौर चलता रहता है ।

(घ) भाव गीत :-

मानव हृदय में कई प्रकार के भाव उमड़ते रहते हैं जिन को अक्सर लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है । हृदय में प्रेम का उद्रेक हो या फिर विरह की अग्नि भड़क रही हो, खुशी और गम के आवेग में भी लोकमन बरबस गा उठता है । विरह और मिलन के विभिन्न पहलुओं का पंजाब के लोकगीतों में भरपूर वर्णन हुआ है । इसका कारण पंजाब के सामाजिक इतिहास में भी छिपा है । पंजाब में हमेशा युद्ध के बादल छाए रहे हैं और यहाँ के युद्धप्रिय, रोमांच पसन्द युवक अपनी नवविवाहिता पत्नियों या प्रेमिकाओं को छोड़कर गाँव-घर से अलग या जंग के मैदान में जाते रहे हैं । शान्ति के दिनों में भी व्यापार तथा काम के सिलसिले में यहाँ के लोगों को घर से बाहर रहना पड़ा है । इस कारण यहाँ के जीवन में विरह और मिलन की धूप-छांव बनी ही रहती है । अतः लोक-गीतों में इन स्थितियों का आना स्वाभाविक है ।

" जिंदगीनामा " में बिबो इश्क या प्यार के सम्बन्ध में खुदा को भी शामिल करते हुए गाती है --

" अव्वल हमल खुदा दा बिरद कीजे
इश्क कीता सु जग दा मूल मियाँ
पहला आप ही रब्ब ने इश्क कीता
ते माशूक है नबी रसूल मियाँ
इश्क पीर फ़कीर दा मरतबा ए
मरद इश्क दा भला सजूल मियाँ
इश्क वास्ते रब्ब हबीब उत्ते
कीता आप फुरकान नजूल मियाँ । " [1]

प्यार और इश्क के घर पंजाब में वारिसशाह की " हीर " गाँव के नौजवानों की जबान पर बनी रहती है और मस्ती भरे आलम में वे गा उठते हैं --

" इक मिट्ठड़ी जोड़ी इश्क दी
चनाँ दे कण्डे खेल गयी
एक डाडी बाजी इश्क दी ।
लोको मुड़-मुड़ देन मुबारकाँ
अरे सदके ऐस चनाब के
जित्थे हीर ने प्रीताँ लाइयाँ । " [2]

---

1. जिंदगीनामा - पृ. 47.
2. - वही - पृ. 190.

" काले-कोस " में " हीर " के उस हिस्से का वर्णन मिलता है, जहाँ रांझा चुपके-चुपके हीर से मिलने जाता है । हीर इस बात को अपनी सखियों से छिपाने का प्रयत्न करती है --

" हीर आखदी रायबाँ सीरपाँ नूं, अड़ियो वैर पैथ्यो किस
वास्ते नी ।
छेड़ो न गोली खसम पिट्टड़ी नूं, मैथे मिलना रब दे वास्ते नी ।
प्रेहां दा मैनूं असर होया, रंग जर्द होया इस वास्ते नी ।
छायाँ छुब गइयाँ गल्हाँ मेरियाँ ते, दाग पै गाया चप रास्ते तैनी ।
कट्टे जांदे नूं भजके मिली साँ मैं, तीनया टिटीलयाँ चोली दिया
पास तेनी ।
स्नी अथरूं डुलियाँ मुखड़े ते, खुल गये तोलड़े पास्ते नी । "[1]

प्रेमी अपनी प्रेमिका की प्रशंसा गीतों के माध्यम से करता है और ऐसे गीत पंजाब की फिजा में गूंजते रहते हैं --

" दन्द मोतियाँ दे दाणे
दन्द मोतियाँ दे दाणे
हस्सेंगी ते डुल पैणगे ।
तेरे दन्द गुलूबन्द नी हे जमालो । "[2]

इन गीतों में उपमाएँ अधिकतर लोक-जीवन में प्रतिदिन काम आने वाली या आस-पास की चीजों से ही दी जाती हैं --

---

1. काले-कोस - पृ. 40.
2. मय्यादास की माड़ी - पृ. 244.

" रन्न नहा के छप्पड़ विचों निकली
सुलफे दी लाट वरगी ...।[1]

यहाँ तालाब में से नहा कर निकलती हुई युवती की उपमा सुलफे की चिलम से निकलने वाली लौ से की गई है। कितनी अनूठी और मौलिक उपमा है। युवती की देह का रंग, आभा और नशीली सुन्दरता एक दम आंखों के सामने आ जाती है।

प्यार में ऐसी बातें जो सीधे-सीधे नहीं कही जा सकती गीतों के माध्यम से बेलाग भाव से व्यक्त कर दी जाती हैं ---

" क्यों चुप-छुप बेहन्दे हो
अक्खियाँ तो की छिपना, जद दिल विच रेहंदे हो।"[2]

" कन्नी काँटे पाये होये ने।
साडे नालो बटन चंगे, जेड़े सी ने नाल लाये होये ने। "[3]

लोक-गीतों का एक अच्छा-खासा हिस्सा प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति-पत्नी की आपसी छेड़-छाड़ और मान-मनोबल से भरा हुआ मिलता है। पति अपनी रूठी हुई पत्नी को मनाते हुए कहता है --

---

1. काले-कोस - पृ. 71.
2. झूठा-सच - 2 पृ. 107.
3. - वही - पृ. 305.

" बुन्दे लियादियांगा नीं
बुन्दे लियादियांगा नी
नीं अड़िये ना कर ऐड़ा गुमान
नीं सड़िये ना कर ऐड़ा गुमान
तेरे कन्नी पा दियांगा नीं
असाँ ना लैणे वे
असां ना लेणे ते
वें अड़िया ना कर ऐड़ा गुमान
वे सड़िया ना कर ऐड़ा गुमान । " 1

इश्क-मुहब्बत के वातावरण में छेड़-छाड़ और सन्देह की गुंजायश भी बना ही रहती है । यह छेड़-छाड़ गीतों के माध्यम से हो तो इसका और ही रोमांच होता है --

" आनी जयकारे
जा नी जयकारे
भीड़ी गली विच होवे टाकरा
ओए - - - - - -
भाइयाँ तेरयाँ नू खबर जो हो जाऊ
आ जान डांगां फड़के ....
नी फेर तूं
फेर तूं रोवेंगी लड़ साफे दा फड़के । " 2

---

1. शहर में घूमता आईना - पृ. 421-422
2. राते चोर और चाँद - पृ. 133.

इस गीत में प्यार भरी छेड़-छाड़ के साथ लड़की के भाइयों को पता लगने पर आने वाले खतरे की भी धमकी है । इन प्रेमपूर्ण किस्सों का परिणाम कभी-कभार खून-खराबा तक होता है और यह भी पंजाब का अपना ही एक रंग है । प्रसिद्ध कवि-कथाकार देवेन्द्र सत्यार्थी ने तो अपने जीवन का अच्छा-खासा वक्त लोकगीतों को इकट्ठा करने में बिताया है । ये गीत हर तरह के हैं पर प्यार के गीत कुछ ज्यादा ही प्यारे होते हैं । लेकिन जिन्दगी हमेशा एक समान नहीं रहती, प्यार और मिलन के साथ विछोह के दु:ख भी लगे रहते हैं । विरह में तड़प कर युवतियाँ गा उठती हैं --

" दीवा बले सारी रात, मेरिया जालमा
दीवा बले सारी रात
बत्तियाँ बटा रखदी, मेरया जालमा
दीवा बले सारी रात ।
आवेंगा तो पुच्छ लवांगी, मेरया जालमा
कित्थे गुजारी सारी रात । "[1]

आज भी गाँवों की सामान्य नारियों के कंठों से अक्सर पंजाब की कोई " हीर " या " सोहणी " करुण स्वर में गाती हुई मिल जाती है --

" औह गये सज्जन औह गये
लंघ गये दरिया
असाँ रज्ज गल्लां न कीतियाँ
साडे मनो न लत्थड़ा चा । "[2]

---

1. देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है, पृ. 39

2. - वही - पृ. 41.

बिछुड़ने वाले अपने घुड़सवार प्रेमी से प्रेमिका इन शब्दों में प्रार्थना और मनुहार करती है --

" नीले घोड़े वालिया
सानूँ बीजे पा ।
जित्थे आवे रातड़ी
नीले घोड़े वालिया
कड्ढ कलेजड़े ला । " [1]

बिछड़े हुए दिलों के बीच पुल बनाने वाले पत्रों की अपनी ही मिठास होती है ।अपने प्रियतम को एक प्रेमिका पत्र द्वारा संदेश भेजती है --

" चिट्ठए दर्द फिराक वालिए
नो लै जा, लै जा सन्योड़ा सोहने यार दा । " [2]

आज के दौर में गाँव जिन्दगी को आजीविका देने में अक्षम हो गये हैं । फलस्वरूप रोजी-रोटी के लिए लोगों को परदेश और शहर का रुख करना पड़ता है । प्रेमिकाओं और पत्नियों को यह बहिर्गमन पसन्द नहीं । विरह के डर से युवतियाँ गरीबी में रहने को तैयार हैं किन्तु अपने प्रेमी को शहर जाने से रोकती हैं --

---

1. देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है - पृ. 43

2. बांधो न नाव इस ठांव - भाग-1, पृ. 118.

" शिमले न जाना मंगी खाना
तू तो बेईमान बनया
ब्राह्मणा दा घोरुआ ओ । "[1]

प्रेमिका कहती है कि रोजी रोटी देने वाला तो ईश्वर है अतः तू यहीं रह, परदेश न जा --

" ना वंज ना वंज
बोबा ! ना वंज ना वंज
ढोलन यार
टिक पौ एथाई वे
ना वंज ना वंज
" रोजी ते रिज्क वे
अल्ला देंदा साईं वे
ना वंज ना वंज
अपने वतन दिया ठंडिया छाईं वे
ना वंज ना वंज । "[2]

{च} तीज त्यौहार के गीत :-

प्रत्येक क्षेत्र और अंचल के अपने तीज-त्यौहार होते हैं । पंजाब में भी " लोड़ी ", " बैसाखी " आदि उत्साह भरे त्योहार हैं । इन त्यौहारों से संबन्धित लोकगीत हमारे उपन्यासों में मिलते हैं । " लोड़ी " के अवसर पर लड़के बच्चे मिलकर गाते हैं और चन्दा उगाहते हैं -

---

1. बांधो न नाव इस ठांव - भाग-1, पृ. 238
2. काले-कोस - पृ. 214 - 215.

" आखो मुंइयों टेरनी "
टेरनी ओ टेरनी ।
मिंह वस्सियाँ ते कनकाँ जमियाँ
टेरनी ओ टेरनी
कनकाँ विच बटेर
टेरनी ओ टेरनी । " [1]

कृष्णा सोबती ने " जिन्दगी नामा " में इसका वर्णन किया है कि किस प्रकार लोग लोड़ी का त्यौहार बड़े उत्साह से मनाते हैं और बच्चे पैसे इकट्ठे करते हैं --

" भाई रे बाँके चीरेवाले
दमड़ा तो इक देता जा
माह माई दे के जा
दाड़ी फुल्ल पवा के जा "
" ... भरी मिले भई भरी मिले
लाडलों को भरी मिले । " [2]

बैसाखी पंजाब का सर्व प्रमुख त्यौहार है । बैसाखी मेले के चित्रण के बिना पंजाबी संस्कृति की झलक मानों पूरी ही नहीं होती, अत: पंजाब के संदर्भ में बैसाखी का वर्णन साहित्य, कला, संस्कृति के क्षेत्रों में बहुतायत से मिलता है । यह नव वर्ष का, नवान्न का, हर्षोल्लास का, भंगड़ा नृत्य का त्यौहार है जिसमें सारा पंजाब हँसता-गाता नजर आता है ।

---

1. काले - कोस - पृ. 240 - 241.
2. जिन्दगीनामा - पृ. 49.

{छ} **देश प्रेम के गीत** :-

पंजाब के बहादुर और दिलेर जवान देश के लिये कुर्बानी देते आए हैं । कठिन से कठिन समय को ये लोग हंसते-गाते झेल जाते हैं । यहां हर परिस्थिति के अनुसार गीत प्रचलित भी हो जाते हैं । ऐसा ही एक गीत अंग्रेजो और खालसा सेना के बीच हुई जंग के दौरान लोग गाते थे --

" सूरा सो ही
सूरा सो ही
जो लड़े दीन के हेत, सूरा सो ही"
" पुर्जा पुर्जा कट मरै
पुर्जा पुर्जा कट मरै
कब्हों न छांडे खेत, सूरा सोहो
सूरा सो ही । ... "
" गगन दमामा बाजियो
गगन दमामा बाजियो
पड़ियो निशाने घाव, सूरा सो ही
सूरा सो ही । "[1]

अंग्रेजों से देश को आजाद कराने की लहर चलने पर पंजाब के लोग गाते थे ---

1. मय्यादास की माड़ी - पृ. 76.

" जरा तो लगन आजादी दी
लग गयी जिन्हां दे मन दे विच "
" ओह मजनूं बण फिरदे ने
हर सेहरा हर बन दे विच " [1]

आजादी के लिये चलाये गये आन्दोलनों और जलूसों में लोग गांधी जी का महत्व बताते हुए गाते चलते थे --

" आप गांधी कैद हो गया
सानूं दे गया खद्दर दा बाणा। " [2]

असहयोग आन्दोलन चलने पर लोगों ने इस आन्दोलन से मेल खाता हुआ गीत बना लिया --

" खादी दा चोला गल विच पा के
ना मिलवर्तन दी तुरही बजा के
चर्खे दी धन-तोप चढ़ा के
मारो सूत दे गोले लंकाशायर नूं । " [3]

किसानों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध जनता तथा स्वयं किसान को चेताने के लिए इस तरह के लोकगीत गाए जाते हैं --

---

1. तमस - पृ. 26.
2. शहर में घूमता आईना - पृ. 115.
3. - वही - पृ. 116.

" पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा
सीने पे खावे तीर
रांझा तू देश है हीर
संभल के चल तूँ वीर । "[1]

आजादी की लड़ाई में पंजाब की क्रान्तिकारी अग्रणी भूमिका रही थी, जिसकी यादें इन गीतों में बसी हुई हैं ।

§ज§ अन्य लोक-गीत :-

ऐसे भाव जिन्हें मनुष्य खुल्लमखुल्ला नहीं दर्शा सकता, गीतों की आड़ ले कर कह लेता है । सास बहू के परम्परागत झगड़े तक लोकगीतों में उतर आये हैं । ऐसे ही एक गीत में सास का विरोध और उसकी निन्दा बहू गीत के माध्यम से करती है --

" सावियाँ पीलियाँ वंगाँ नी मेरियाँ
सावियाँ पीलियाँ वंगाँ
इह वंगाँ मेरी सासू चढ़ाइयाँ
सासू चढ़ाइयाँ
विच्च दहलीज दे भन्नाँ
नी मेरियाँ
सावियाँ पीलियाँ वंगाँ । "[2]

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 180.
2. शहर में घूमता आईना - पृ. 420.

पंजाब में मेले-उत्सवों के दिनों में मस्ती में भर कर जवान तरह-तरह की बोलियाँ गाते और भंगड़ा (पंजाब का मशहूर नृत्य) डालते हैं। ऐसी कुछ बोलियों के नमूने इस प्रकार हैं --

" वे इक पल बहि जाना
वे इक पल बहि जाना मेरे कोल " ओहो ! "
तेरे मिठड़े नी ओए " आहा " ।
तेरे मिठड़े नी लगदे बोल "[1]

ऐसे गीतों में कुछ उन्मुक्त और स्वच्छन्द आचरण के लिए भी एक प्रकार की अलिखित सामाजिक छूट मिलती है, जिससे इनमें बेबाकी दिखाई पड़ती है। जैसे --

" बारी बरसी खटन गया
ते खट के ल्यांदा गहना
नीं भर-भर वंड मुट्ठियाँ,
गोरे रंग ने सदा नहीं रहना । "[2]

पंजाब शुरू से ही कृषि-प्रधान क्षेत्र रहा है। हरित-क्रान्ति की शुरूआत भी यहीं से हुई थी। यहाँ के लोग मुख्यतः खेती-बाड़ी पर ही निर्भर रहते आये हैं। खेती अच्छी नहीं होने पर या अनाज का भाव गिर जाने पर यहाँ के लोग धरती को ही गरीब मानने लगते हैं --

---

1. दो अकालगढ़ - पृ. 466.
2. - वही - पृ. 476.

" धरती जेड़ गरीब न कोई
इन्दर के समान न दाता । "[1]

किसान अनाज के दाम बढ़ने के साथ गा उठता है --

" कनके । नी इक्क वेर फेर दस्स खाँ
महंगी बन के । "[2]

पहाड़ी किसान की गरीबी तथा उसकी बेटी की इच्छाओं और मांगों के साथ-साथ दोनों की मायूसी का भी चित्रण एक पहाड़ी लोकगीत में किया गया है --

" शिमले बाज़ार टू वी बीकोली न वढ़ी
बेटी दर्शनों मोनरे पाउँदरी घड़ी
हाय बेटी दर्शनों, पाउँदरो घड़ी
शिमले बाज़ार टू वी फेरे गये उँटो
बेटी मांगे दर्शनों राबेडरों रे बूटो
हाय बेटी दर्शनों, राबेडरो बूटो । "[3]

इन सभी लोकगीतों में सीधे सच्चे सरल भाव दिल को छूने वाली भाषा में प्रगट होते हैं । लोकगीत लोकजीवन के दर्पण होते हैं, इनमें समाज का हृदय, उसकी आशा-आकांक्षाएँ, भय, आशंका, कामना सब कुछ

1· धरती गाती है, - पृ· 130
2· - वही - पृ· 130
3· बांधो न नाव इस ठांव -1, पृ· 247·

धड़कते रहते हैं। यही कारण है कि उपन्यासों में जीवन की नजदीकी पकड़ को महसूस कराने के लिए कथाकार लोकगीतों का खुलकर उपयोग करता है। लोकगीतों में व्यक्त जीवन ही सच्चा जीवन होता है, क्योंकि यहाँ छद्म रूप चल ही नहीं सकता। जीवन की तमाम हलचलों को मथ कर लोकगीतों का माखन उपस्थित होता है, अतः यही विश्व - सनीय जीवन है। इस प्रकार लोकगीतों के प्रयोग से उपन्यासकार अपनी कृति में केवल शिल्पगत सुन्दरता ही नहीं लाता बल्कि अपने वर्णनों का सबसे विश्वसनीय साक्ष्य भी प्रस्तुत कर देता है।

लोक-कथाएँ :-

लोकगीतों की तरह सरल ग्रामीण जीवन में लोक-कथाएँ भी बसी होती हैं जिनके माध्यम से जीवन की गहरी सच्चाइयाँ अभिव्यक्ति पाती हैं। उपन्यासकारों ने लोककथाओं के सांकेतिक और प्रतीकात्मक उपयोग करके अपनी रचनाओं के शिल्प और लक्ष्य दोनों को ही चमकाया है। लोक कथाओं का ऊपरी ढाँचा भाषा की विशेषताओं की ओर तथा उनका आन्तरिक अर्थापन जीवन की चरम लौकिक वास्तविकता की ओर हमारा ध्यान खींचता है। अतः लोककथा पक्ष पर भी थोड़ा विचार कर लेना समीचीन होगा।

लोकगीतों के साथ लोक-कथाएँ भी समाज में लोगों के बीच प्रचलित होती हैं। ये कथाएँ गद्य और पद्य दोनों में मिलती हैं। इन कथाओं में मानव-जीवन की परम्पराएँ और सामाजिक अतीत की घटनाएँ सुरक्षित रहती हैं। इनसे कुछ न कुछ लोक-संस्कृति विषयक सामग्री भी प्राप्त हो

सकती है । इनमें लोक-विश्वास तथा लोक-कल्पना भी छिपी रहती है । ये विश्वास और कल्पनाएँ मानव जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से सम्बन्धित होते हैं । अतः इन कथाओं से अंचल के समग्र-जीवन को जाना जा सकता है । लोक साहित्य के एक अध्येता डा॰जगदीश प्रसाद पीयूष के अनुसार - "मानव के सुख-दु:ख, प्रीति श्रृंगार, वीर भाव और बैर इन सबने खाद बनकर लोक-कथाओं को पुष्ट किया है । रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा, उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाठ बनता और बदलता रहता है ।"[1]

लोक-गीतों की तरह लोक कहानियां भी मौखिक रूप में ही प्राप्त होती हैं । हजारों सालों से चली आ रही इन कथाओं का मुख्य स्त्रोत लोक-कंठ ही है । इसी कारण लोक-कथाओं में ऊपरी तौर पर परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु मुख्य तत्व सुरक्षित रहते हैं । यही कारण है कि इन कहानियों में वर्षों पुराना इतिहास मिथक बनकर छिपा रहता है जो इन्हें अमूल्य बनाता है ।

पंजाब में प्रचलित बहुत सी लोक-कथाएँ इश्क तथा विरह पर आधारित हैं । ये कथाएँ प्रसिद्ध कवियों और फकीरों द्वारा गीतों में पिरो देने से यहां के बच्चे-बूढ़े सब की जबान पर चढ़ गई हैं । इन प्रेम-कथाओं में से कुछ इस प्रकार हैं - हीर-रांझा, सस्सी-पुन्नू, मिरज़ा-साहिबां, रूप-बसंत, सोहनी-महीवाल, सोहना-जैनी, युसुफ-जुलेखां,

---

1. लोक साहित्य के आयाम, जगदीश प्रसाद पीयूष - पृ॰ 66

राजा-भरथरी, नल-दमयन्ती आदि । इन कथाओं में से कुछ का उल्लेखनीय वर्णन हमारे आलोच्य उपन्यासों में भी मिलता है क्योंकि इन कथाओं के बिना पंजाब के जीवन की झांकी बहुत कुछ अधूरी ही रह जाती है ।

हीर-रांझा की प्रेम-कथा जो पंजाब में सबसे अधिक लोकप्रिय है, जिन्दगीनामा, चक्मीरों का जस्सा, शहर में घूमता आईना, काले-कोस, बांधो न नाव इस ठाँव आदि में विभिन्न अंशों तथा रूपों में मिलती है । " जिन्दगीनामा " में सिकन्दर मस्ती में शिरीं को सुनाने की गरज़ से हीर के हुस्न का बखान करता है रांझे के प्रेम में तेरा हुस्न खिल उठा है, तुझे बनाव-शृंगार भी अच्छा लग रहा है तथा प्रेम में मस्त होकर तुझे रांझे के सिवा और कोई नज़र नहीं आता --

" तेरा हुस्न गुलज़ार बहार बनया
अज हार शृंगार सब भांवदा री
अज ध्यान तेरा असमान उपर
तुझे आदमी नज़र न आंवदा री । "[1]

" बांधो न नाव इस ठाँव-2 " में हीर के प्रेम में तड़प कर रांझे द्वारा कहे गये बोल उठाए गये हैं --

" इश्क तेरे ने कमलिए हीरे
जग विच मैन्नू ख्वार कीताई । "[2]

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 223.
2. बांधो न नाव इस ठाँव - 2 - पृ. 141.

" काले-कोस " में रांझे और हीर के मिलन के बाद हीर द्वारा इस बात को छिपाने की स्थिति वर्णित है।[1] तो " शहर में घूमता आईना " में हीर की विदाई और इसके वैण गाए गये हैं -

" डोली चढ़दिआं मारीआं हीर चीकां
मैनूं ले चले बाबला थे चले वे । "[2]

" चक्पीरां का जस्सा " में रांझे के वियोग में दुःखी हीर किसी भांति उसे संदेश भेजती है । यहां इस लोक-कथा का प्रयोग स्वंय उपन्यास के नायक और नायिका की दशा को साकार करने के उद्देश्य से किया गया है। हीर कहती है --

" वीर कासिदा रब दा वास्ता ई, आखीं जा रांझेटे
नूं गम मेरे
पई सहकीनयां मुख देखने नूं, आ रहे ने नेक ते दम मेरे । "[3]

" हीर-रांझे " की भांति " सोहनी महीवाल " की प्रेम-कथा का भी कई उपन्यासों में ज़िक्र आया है। महीवाल के प्रेम में दीवानी सोहनी कच्चा घड़ा ले कर ही दरिया पार करने लगती है । परिणाम - स्वरूप कच्चे घड़े के गल जाने पर दरिया में डूब जाती है । इसी घटना को लोक-कथा के रूप में गाया और सुनाया जाता है । संकेतिक रूप से

---

1. काले-कोस - पृ. 40.
2. शहर में घूमता आईना - पृ. 124 - 125.
3. चक्पीरां का जस्सा - पृ. 309.

आने वाली, प्रेम की यह अद्भुत शोकान्तिका आज की नायिकाओं के असफल प्रेम-प्रसंगों को अत्यन्त करुणा से विगलित कर देने में अब भी सक्षम है ।

प्रेम-प्रसंग में केवल सामाजिक बाधाएँ ही रुकावट नहीं पैदा करतीं, खुद प्रेमिओं की नियति भी अदृश्य रूप में सक्रिय रहती है । " जिन्दगी - नामा " में चाची महरी कहती है - " रब्ब रखवाला न हो आशिकों का तो मुहब्बतें तोड़ नहीं चढ़तीं । चनाब पार करने वाले घड़े ही गल जाते हैं । "[1] इस कथा के माध्यम से आशिकों पर रब्ब की मेहर माँगने वाली चाची महरी भी विधवा हो जाने पर प्रेमवश होकर गणपत शाह के साथ चली आई थी । अतः वह प्रेमियों की पीर पहचानती है ।

" बांधो न नाव इस ठांव " में नौजवान मस्ती में आकर सोहनी-महीवाल की लोक-कथा गाते हैं --

" डूंगो-डूंगी नदी आ, तला वे पुराना
में अनतारू, तरन न जाना
नजर न आवे कण्डा पार दा
ओ मेरेआ यारा
नजर न आवे कण्डा पार दा "
\- - - - -
" लंघ आ जा पत्तन झनाँ दा
ओ यार
आ जा पत्तन झनाँ दा

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 46.

सान्नूं आसरा तेरे नाँ दा
ओ यार
आ जा पत्तन झनाँ दा । " [1]

" चम्बीरां का जस्सा " में प्रेमिका की बेवफ़ाई के कारण टूटे हुए सरदार बग्गासिंह को एक फकीर राजा भर्तृहरि की कथा का वह हिस्सा गा कर सुनाता है जहाँ भर्तृहरि रानी पिंगला की चरित्रहीनता और बेवफ़ाई से क्षुब्ध हो कर संन्यास ले लेता है और रानी पिंगला से कहता है --

" इक अपना नाम बदनाम कीतो, दित्ती नाल मेरी लाज बोड़ चंडी
वृंदी खबर मैनू हुश्यार हैं तूं, तेरी रखदा भुल्ल न लोड़ चंडी
तेरे पिच्छे मैं अपनी उमर गाली, मेरे दिल अरमान करोड़
चंडी । " [2]

भर्तृहरि, नल-दमयन्ती, लैला-मजनूं आदि की कथाएँ केवल पंजाब में ही नहीं, देश के दूसरे भागों में भी प्रचलित हैं । किन्तु इन कथाओं पर पंजाबियत की अपनी मुहर बातों, संवादों और गीतों के अन्दाज में लग गयी है, जो काबिले गौर है । कहा जा सकता है कि सार्वजनिक - सार्वदेशिक और सार्वकालिक रूप रखने वाली ये लोक कथाएँ भी पंजाबी मानसिकता में ढलकर प्रस्तुत हुई हैं ।

---

1. बांधो न नाव इस ठाँव - 2 - पृ. 140.
2. चम्बीरां का जस्सा - पृ. 266.

लोक-कथाएँ केवल प्रेम की ही नहीं होतीं बल्कि पहुँचे हुए पीर फ़कीरों के जीवन की भी होती हैं जो समय के अन्तराल में चमत्कारिक रूप धारण कर लेती हैं और उन पीरों के अतिमानवी गुणों और अक्लमन्दी के बारे में बतलाती हैं। "तमस" में करीमख़ान यह बतलाने के लिए कि हाकिम दूरदर्शी और दूरअन्देश होता है, अपने साथियों को मूसा और खिज़्र की लोक-कथा सुनाता है कि किस तरह खिज़्र मूसा को पैगम्बर बनाता है तथा मूसा खिज़्र द्वारा किये गये कार्यों का मर्म नहीं समझने के कारण नाराज हो उठता है और समझ में आने पर शांत हो जाता है। बाद में यही मूसा बहुत बड़ा पैगम्बर बनता है। 1

"जिन्दगीनामा" में लाला वड्डा सृष्टि की शुरुआत की पौराणिक मिथकीय कथा सुनाता है कि सबसे पहला अवतार प्रजापति था जो आप ही नर था और आप ही मादा। उसके एक हिस्से से बैल पैदा हुए और दूसरे हिस्से से गऊ माता। उसके बाद रुख अर्थात वृक्ष की सृष्टि हुई। वृक्ष के बाद भूलोक, चारों दिशाएँ और आकाश का निर्माण हुआ। तत्पश्चात अदिति के दक्ष का जन्म हुआ और देवताओं की उत्पत्ति हुई। इसके बाद लालाजी देवताओं और कालों की किस्में गिनाते हैं और सूरज को धरती-आकाश में सबसे बड़ा बताते हैं। 2

इसके साथ-साथ लाला वड्डा सूरज की धी-धियानी और चन्ना मामा की कहानी भी सुनाते हैं। वे सुनाते हैं कि सूरज ने अपनी लड़की की शादी आकाश से की और साथ में सारे मण्डल में समाने वाली उजियारी

---

1. तमस - पृ. 96 - 98.
2. जिन्दगीनामा - पृ. 31 -33.

चादर के साथ गउओं के झुण्ड तथा सुनहले रथ में जुटे बारह नीले घोड़े दिये। सूरजा से अग्नकुमार का जन्म हुआ, जिससे अग्नकुमार का सम्बन्ध सूरज और समुन्द्र दोनों से जुड़ गया। इसी कारण अग्नकुमार के जन्म के साथ नदियाँ बह निकलीं। अग्न कुमार सब देवताओं का सारथी बना और अग्नि और यक्ष का पिता भी बना। अग्नि की उत्पत्ति सुनहले जल से बताते हुए लाला वड्डा कहते हैं कि इसी सुनहले जल की बूंदों से हाड़-माँस के मनुष्यों की उत्पत्ति हुई।[1]

चन्द्रमा के लिए लालाजी बताते हैं कि चन्द्रमा अकेला है और इसी से अकेले मनुष्य को अपना साथी बना लेता है। ऊपर से धरती की ओर देखकर दु:ख पाता है और अपने सारे दु:ख दर्द चुपचाप पी लेता है। इसी कारण उसका दिल शिलाखण्ड बन गया है। चाँद का जमा हुआ असीम दु:ख दर्द पिघलने पर सारी दुनिया में प्रलय हो जायेगी।[2]

"मय्यादास की माड़ी" में लेखराज के बचपन में उसकी दादी माँ गुरुओं की कुरबानी और बहादुरी की कहानियाँ सुनाया करती थी जिनका उसके जीवन पर गहरा असर पड़ा। दादी माँ द्वारा सुनाई गई कहानियों में एक कहानी माई गुजरी के पास गुरु महाराज का कटा हुआ सिर ले जाने की है। आततायियों द्वारा गुरु-महाराज का सिर और धड़ चौक में फेंक देने पर जैता तथा लखीदास जोखिम उठा कर युक्ति से गुरु महाराज का सिर और धड़ उठा लाते हैं। लखीदास ने तो

---

1. जिन्दगीनामा - पृ. 33 - 34.
2. - वही - पृ. 35.

गुरु-महाराज के शरीर का दाह-कर्म करने के लिए अपने घर को ही आग लगा दी । [1]

दादी-माँ बच्चों को पंज-पियारे चुने जाने की गाथा भी सुनाती हैं कि किस तरह गुरु गोविन्द सिंह ने एक-एक कर पाँच सिरों की माँग की तथा तलवार से खून टपकता देखकर भी अलग-अलग जिलों और जातियों के पाँच लोग बारी-बारी से अपना सिर देने को तैयार हो गये । इन पाँचों को गुरु महाराज ने अपने पाँच पियारे कहा । [2] संगत को संबोधित कर उन्होंने कहा - " ये मेरे पाँच प्यारे हैं, ये मेरे सच्चे सेवक हैं, इन्हें अपनी जान प्यारी नहीं है, यही सच्चे खालसा हैं, भगवान के सच्चे दास हैं .... । " [3] वीरता और त्याग की ये कथाएँ पंजाबी परम्परा को ऐतिहासिक झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं ।

" रात, चोर और चाँद " में गाँव के नाम डिंगा [4] की कहानी के माध्यम से वहाँ के लोगों की विद्रोही, दबंग और मस्त प्रवृत्ति के बारे में पता चलता है । गाँव के लोग बड़े गर्व से बताते हैं कि डिंगा गाँव को डिंगासिंह नामक व्यक्ति ने बसया था । उसने अंग्रेजों का राज्य मानने से इन्कार करके सिक्ख-कानून के चलन का ऐलान कर दिया तथा एक टीले पर डेरा जमा कर आने जाने वाले मुसाफिरों से कर वसूल करने लगा । अंतत: फिरंगी सरकार भी डिंगासिंह से मुकाबले में हार कर चुप बैठ गयी और उसका कार्य निर्विघ्न चलता रहा । [5]

---

1. मय्यादास की माड़ी - पृ. 91-93.
2. - वही - पृ. 93-95.
3. - वही - पृ. 96.
4. डिंगा अर्थात टेढ़ा
5. रात, चोर और चाँद - पृ. 26-27.

निष्कर्षत: हम पाते हैं कि उपन्यासकारों ने भाषा के विविध तत्वों और गुणों का उपयोग करके पंजाबी जीवन की बहुरंगी छवियाँ उकेरी हैं। शब्दों, मुहावरों, कहावतों और लोक-तत्वों में अत्यधिक व्यंजनात्मकता और अभिव्यक्ति क्षमता होती है। स्वयं जीवन में भाषा के तत्व विद्यमान होते हैं। जिन्हें कथाकार वहीं से प्राप्त करता है तथा इनके माध्यम से पुन: जीवन की सार्थक-सक्षम अभिव्यक्ति भी करता है। अत: उपन्यासों में भाषिक तत्वों का दोहरा उपयोग किया गया है, जिससे पंजाब के जीवन और समाज का सही चेहरा उजागर होता है। इन उपन्यासों में पंजाब का जीवन अपने इतिहास, परम्परा, संस्कृति के साथ-साथ कठोर वर्तमान यथार्थ के साथ उपस्थित किया गया है।

x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=

पंचम अध्याय

देश विभाजन, साम्प्रदायिकता, अलगाववाद और पंजाब

x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=x/:=

सम्प्रदाय से संबंधित होते हुए भी साम्प्रदायिकता उससे बहुत भिन्न है । कोई भी सम्प्रदाय अपने-आप में खतरनाक नहीं होता क्योंकि किसी भी धर्म के मूल में रक्त-पात, हिंसा-द्वेष के भाव नहीं पाए जाते, किन्तु स्वार्थपरक राजनीति, धन और धर्म के मेल से साम्प्रदायिकता जैसी खतरनाक भावना का जन्म होता है, जो लोगों के दिलों में आपसी फूट, द्वेष, घृणा तथा अलगाववाद को उभारती है ।

भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विशेषताओं के कारण सदियों से पंजाब में विभिन्न धर्मों, वर्णों और जातियों के लोग रहते आए हैं । किन्तु पिछले डेढ़-दो सौ वर्षों से यहाँ साम्प्रदायिकता और अलगाववादी भावनाएँ धीरे-धीरे जोर पकड़ती गई हैं जिसके परिणाम स्वरूप होने वाले दंगों के चलते पंजाब में मौत रह-रह कर अपना तांडव नृत्य कर जाती है । अर्से से पंजाब के लोग दंगों की विभीषिका में झुलस रहे हैं ।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि सदियों से एक साथ रहने वाले विभिन्न धर्मों के लोगों में साम्प्रदायिक भावनाएँ कब, कैसे और क्यों उत्पन्न हुईं। इस प्रश्न का समाधान हमें इतिहास में झांकने पर मिलता है। इतिहास गवाह है कि अंग्रेजों के शासन से पहले, शासक चाहे हिन्दू हो या मुसलमान प्रजा में कभी साम्प्रदायिक अलगाववाद ने सिर नहीं उठाया। वास्तव में उन दिनों की लड़ाइयाँ राजनैतिक और आर्थिक कारणों से होती थीं न कि धार्मिक कारणों से।

बाहर से आने वाले मुस्लिम शासक और विजेता यहाँ की भूमि में रच-बस गए। उन्होंने अपने को इस देश से अलग नहीं माना, किन्तु अंग्रेज यहाँ रह कर भी अपने देश से जुड़े रहे। भारत को उन्होंने केवल एक उपनिवेश के रूप में माना और इसका शोषण करते रहे। भीष्म साहनी ने अपने नवीनतम उपन्यास " मय्यादास की माड़ी " में अंग्रेजों की इस योजना का पर्दाफ़ाश किया है। अपने लाभ के लिये भारत में आधुनिक सुविधाएँ लाते हैं किन्तु उनपर होने वाला खर्च भारत पर कर्ज के रूप में लाद देते हैं। भारत को उन्होंने अपनी " मण्डी " के रूप में इस्तेमाल किया। "मय्यादास की माड़ी " में भारत में पूँजी लगाने वाले हिस्सेदारों की मीटिंग के माध्यम से इस पर प्रकाश डाला गया है। मंत्री महोदय हिस्सेदारों को बताते हैं - " भारत में पूँजी नहीं लगायी जा रही है। भारत को कर्ज दिया जा रहा है ... । रेलगाड़ियों के निर्माण का सारा खर्च भारत के नाम डाला जा रहा है, भारत ही मूल पूँजी भी अदा करेगा। उस पर सूद भी और एक तरह से आपका लाभांश भी। ... भारत के हित में जहाँ भी खर्च किया

जाता है, वह सारी की सारी रकम हिसाब में भारत के नाम डाली जाती है ।"[1] अंग्रेज भारत को अपना कृषिक्षेत्र बनाना चाहते थे ।

भारत में खुलने वाली मंडियों के बारे में भी मंत्री महोदय जानकारी देते हैं - " जितनी ज्यादा कपास भारत से आती है, उतनी ही बड़ी मण्डी भारत में हमारे बुने हुए कपड़ों के लिये खुल रही है । ... इसी को मण्डी खुलना कहते हैं । "[2]

उन्हें इस देश और यहां के लोगों से कोई लगाव या आत्मीयता नहीं थी । अत: भारत को कमजोर बनाकर अपने अधीन रखने के लिये उन्होंने यहां के लोगों में परस्पर द्वेष और फूट का बीज बोया । इतिहास के पन्ने पलटने पर इन साम्प्रदायिक और अलगाववादी भावनाओं का अस्तित्व सौ या डेढ़ सौ वर्षों से ज्यादा पुराना दिखाई नहीं देता । 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में जब हिन्दू मुसलमान मिलकर लड़े तो अंग्रेजों को इस बात का आभास हो गया कि अगर इस देश के निवासियों में आपसी एकता रही तो यहाँ ज्यादा दिन ब्रिटिश हुकूमत नहीं टिक सकती । अत: उन्होंने " फूट डालो और राज्य करो " की नीति अपनाई । हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग करने के लिये उन्होंने सभी प्रकार के हथकंडे अपनाए । 6 अप्रैल 1919 को रॉलेट बिल के विरोध में गांधीजी द्वारा भारत-बंद के आवहान पर हिन्दू-मुस्लिम

---

1. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी - पृ. 165

2. - वही -

जनता में जबरदस्त एकता दिखाई पड़ी थी जिससे घबराकर अंग्रेजों ने दमन-चक्र चलाया । "हिन्दू-मुस्लिम जोड़े को हथकड़ियां पहना कर घुमाया गया ताकि लोगों को पता चल जाए कि हिन्दू-मुस्लिम एकता का क्या परिणाम हो सकता है । "[1] 1924 में भारत सचिव बीकन हेड ने भारत में धर्म, सम्प्रदाय और जातीयता (Nationality) के भेदों पर ध्यान दिया और उसे इस बात की खुशी हुई कि इन आधारों पर भारतवासियों में जितना विरोध होगा उतना ही इनमें समझौता कराने वाले की भूमिका के लिये अंग्रेजों की जरूरत बनी रहेगी । 1924 के बाद देश में सम्प्रदायवाद अधिक फैला । "[2] साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण भी फूट डालने की नीति के तहत ही किया गया । ब्रिटिश हुकूमत की फूट डालने की नीति की गहराई तक पहुँचते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं - "ब्रिटिश कूटनीति यह थी कि बड़ी-बड़ी जातियों को साम्प्रदायिक आधार पर विघटित किया जाये । साम्प्रदायिक एकता दृढ़ होने पर, जातियाँ वास्तविक आत्मनिर्णय के लिये, अंग्रेजी राज से मुक्ति पाने के लिये, संघर्ष करतीं । "[3] भारत में अपना प्रभुत्व चिरस्थायी बनाने के लिये ब्रिटिश सत्ता ने हर स्तर पर भारतीयों में फूट का बीज बोया । उन्होंने साम-दाम-दण्ड-भेद हर तरह की नीति अपना कर विभिन्न वर्गों और जातियों को आपस में लड़वाकर निर्बल बनाया । "[4]

1· रामविलास शर्मा, मार्क्स, त्रोत्सकी और एशियाई समाज, पृ· 80

2· - वही - पृ· 82·

3· रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (खण्ड:एक) पृ· 433·

4· तूफान के दौर से पंजाब - पृ· 86·

अंग्रेजों की इस चाल और उससे पंजाब में होने वाले दंगों की वस्तुस्थिति को हमारे उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया है। बलवन्तसिंह ने " काले-कोस " में इन दंगों की जड़ों तक पहुंचने का प्रयास किया है। उनका एक पात्र कहता है -- " यह सब पूंजीवादी व्यवस्था का दोष है, उस अंगरेज का दोष है जो अपना फायदा हमें लड़वाने में देखता है।"[1]

एक अन्य स्थान पर पढ़ा-लिखा, समझदार और विवेकवान हिन्दू पात्र कहता है - " जो कुछ हुआ है उसमें मुस्लिम जनता का दोष नहीं है। यह सरासर अंग्रेजों की शरारत है। "[2]

भीष्म साहनी भी " तमस " में इस संबंध में रोशनी डालते हैं। उपन्यास में रावलपिंडी तथा आस-पास के गांवों में होने वाले दंगों को चित्रित किया गया है। दंगों की शुरुआत मस्जिद की सीढ़ी पर मरा हुआ सुअर मिलने से होती है। इस शरारत के मूल में अंग्रेज़ सरकार का हाथ है, इस तथ्य को समझने वाले लोग बहुत कम हैं। जो हैं उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं देता, उन्हें या तो मौत के घाट उतार दिया जाता है या फिर पागल, सनकी मान कर भगा दिया जाता है -- मस्जिद की सीढ़ियों पर सूअर मिलने पर जरनैल कहता है --

---

1. बलवन्तसिंह, काले - कोस - पृ. 264.
2. - वही - पृ. 273.

" अंग्रेज ने फेंका है "

" अंग्रेज की शरारत है मैं जानता हूँ । "[1]

परिणाम स्वरूप जरनैल को एक चौराहे पर लाठी मारकर खामोश कर दिया जाता है । गांव में मीरदाद नामक रोशनख्याल लड़का मुसलमानों को, और हरबंस सिक्खों को समझाने की कोशिश करते हैं लेकिन बदले में उनकी डाँट और गालियाँ खाते हैं - " ओ चुप ओये, अंग्रेज को किसने देखा है ? शहर में कितने ही मुसलमान हलाक हुए हैं ...... उन्हें अंग्रेजों ने मारा है ओये । मस्जिद के सामने खंजीर फेंका है, वह भी अंग्रेज फेंक गया है ओये ? "[2]

" हमारा अंग्रेज ने क्या बिगाड़ा है ओये ? हिन्दू-मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है । "[3]

हिन्दुस्तानियों की नासमझी और परस्पर अविश्वास तथा अंग्रेजों की नेपथ्य से राजनीतिक चालों की कामयाबी का एक प्रमाण एक मुस्लिम कम्यूनिस्ट साथी के पार्टी छोड़कर चले जाने पर मिलता है । समझाने पर वह कहता है - " अंग्रेज की शरारत, अंग्रेज की शरारत, इसमें अंग्रेज कहाँ से आ गया । मस्जिद के सामने सुअर फेंकते हैं, मेरी आँखों के सामने तीन गरीब मुसलमानों को मारा है, हटाओ जी, सब बकवास है । "[4]

---

1. भीष्म साहनी - तमस - पृ. 56.
2. - वही - पृ. 181.
3. - वही - पृ. 182.
4. - वही - पृ. 142.

साम्प्रदायिक द्वेष को लोगों ने भावनात्मक स्तर पर तथाकथित धर्म और ऐतिहासिक परम्परा से जोड़ लिया, जो समय और परि - स्थितियों को देखते हुए बिल्कुल गलत था । मुसलमानों और अंग्रेजों के आक्रमणों की इन दोनों परिस्थितियों में जो बुनियादी फर्क था उसे सिक्खों और मुसलमानों दोनों ने ही नज़रअंदाज कर दिया । " तमस " में यह अन्तर लेखक की एक ही पंक्ति द्वारा स्पष्ट हो जाता है - " तुर्क आये थे पर वे अपने ही पड़ोसवाले गांव से आये थे ।"[1] अब देशवासियों के दिलों में पुराना जोश और भावनाएं नहीं रह गयी थीं । उनके स्वार्थों के टुकड़े कर दिये गये और एक ही देश में रहने तथा समान जीवनधारा के होने पर भी उनके उद्देश्यों में अन्तर दिखायी देने लगा था ।

एक तरफ देश में अंग्रेजों के पिट्ठू और उनके एजेण्ट थे जो आम जनता को धर्म और जाति के आधार पर एक दूसरे के विरुद्ध भड़काते थे, लेकिन दूसरी तरफ ऐसे विवेकी तत्व भी समाज में थे जो लोगों को बताते थे कि - " अगर हिन्दू-मुसलमान मिल जाते हैं, उनमें एत्तहाद हो जाता है तो अंग्रेज की हालत कमज़ोर पड़ जाती है । अगर हम आपस में लड़ते रहते हैं तो उसकी हालत मजबूत बनी रहती है।"[2]

---

1. भीष्म सहानी - तमस - पृ. 211.
2. - वही - पृ. 181 - 182.

" तमस " का अंग्रेज कमिश्नर रिचर्ड स्वयं कहता है कि -- " अगर प्रजा आपस में लड़े तो शासक को किस बात का खतरा है ।" [1] विदेशी शासकों के प्रतिनिधि रिचर्ड का दृष्टिकोण इस देश के लोगों के प्रति परायों जैसा है । वह उन लोगों को अपने से अलग और नीचा समझता है, जिन पर वह शासन करता है - " यह मेरा देश नहीं है । ना ही ये मेरे देश के लोग हैं । " [2]

अपनत्व की इस कमी और अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये शासन करनेवाला रिचर्ड समय रहते दंगों को रोकने के लिये कोई कार्यवाही नहीं करता बल्कि 'यहां के लोगों का आपसी मामला' कहकर टाल देता है । इससे " फूटडालो और राज करो " वाली उसकी मंशा झलकती है । दंगे भड़कने पर तीन दिन तक भयंकर मार-काट और लूट मार होती है । मजे की बात यह है कि ऐसी विकट परिस्थिति और लूट-मार का वातावरण अंग्रेज सरकार द्वारा केवल एक हवाई जहाज़ उड़ाने पर ही सामान्य होने लगता है । " जिस-जिस गांव पर से हवाई जहाज़ उड़ता गया, वहीं पर ढोल बजने बंद हो गये, नारे लगाये जाने बन्द हो गये, आगजनी और लूट-पाट बन्द हो गयी । " [3] इससे साबित होता है कि अगर अंग्रेज सरकार समय पर अच्छी नीयत से सही कदम उठाती तो दंगे आसानी से रोके जा सकते थे । ये दंगे अंग्रेज सरकार के स्वास्थ्य के लिये बड़े ही अनुकूल साबित होते थे ।

---

1. भीष्म सहानी, तमस - पृ. 47.
2. - वही - पृ. 233.
3. - वही - पृ. 222.

" दंगा-रोकू " हवाई जहाज दो दिन पहले भी उड़ाया जा सकता था । पहले दंगे भड़काना, फिर सब-कुछ हो जाने पर शान्ति के प्रयत्न करना तथा लुटे-पिटे लोगों को सरकारी सहायता देकर वाह-वाही लूटना-यह थी अंग्रेजों की नीति अथवा दुर्नीति, अंग्रेज इस प्रकार एक ही तीर से कई पक्षी मार गिराते थे । अंग्रेजों की ऐसी कुटिल चालों के शिकार बार-बार बनकर भी (कुछ जागरूक लोगों को छोड़ कर) पंजाब के भोले-भाले लोग अंग्रेजों की इन चालों को समझ नहीं पाते थे । " तमस " में भीष्म सहानी बताते हैं कि लोग अंग्रेज अधिकारी के फैलाये जाल में फंस जाते हैं । " यहां तक कि सियासी हल्कों में भी डिप्टी कमिश्नर के बारे में राय बदलने लगी थी । भले ही डिप्टी कमिश्नर साम्राज्यवादी मशीन का पुर्जा हो मगर यह डिप्टी कमिश्नर महज पुर्जा नहीं है । यह बड़ी सूझ-बूझ वाला और हमदर्द आदमी है । "[1] बख्शी जी जैसे बहुत थोड़े-से लोग ही इस चाल को समझते हैं परन्तु वे भी कुछ कर न पाने की विवशता में केवल सोचते रह जाते हैं - " फिसाद करवाने वाला भी अंग्रेज, फिसाद रोकनेवाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने - वाला भी अंग्रेज .... । "[2]

अंग्रेजों की इस अमानवीय नीति पर, डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड की पत्नी लीज़ा के माध्यम से लेखक ने करारा व्यंग्य किया है । दंगे समाप्त होने पर राहत कार्य में लगा रिचर्ड जब अपने व्यस्त होने की बात करता है तो लीज़ा नशे की हालत में कहती है - " इतने गाँव तो जल गये रिचर्ड, अभी भी तुम्हें काम है ? अब तुम्हें क्या काम

1· तमस - पृ· 223·

2· वही - पृ· 228·

करना है ? "[1] कहना न होगा कि अंग्रेजों का असली " काम " दंगे की पृष्ठभूमि तैयार करना था दंगे को सुचारु रूप से चलाना था, न कि दंगों की समाप्ति अथवा राहत के लिए काम करना था ।

अंग्रेज शासकों ने अल्पसंख्या की बात उठा कर मुसलमानों और सिक्खों के मन में हिन्दुओं के प्रति संशय की भावना उत्पन्न कर दी । उन्हें असुरक्षा का भय दिखाया तथा बहु संख्यक के विरुद्ध उन्हें सुरक्षा देने का वायदा किया । अल्पसंख्यकों को अतिरिक्त सुविधाएँ और नौकरियों में आरक्षण दिये गये । अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अंग्रेजों ने भारतवासियों में अपने पिट्ठुओं को तरह-तरह के सरकारी खिताब और उपाधियाँ प्रदान की थीं । 1857 में प्राप्त विजय के पश्चात अंग्रेजों ने सिक्खों को ओहदे, खिताब, रिसाल-दारियाँ, जागीरें और मुरब्बे देकर पुरस्कृत किया । "[2] इस पक्षपात से मुसलमानों और सिक्खों को तो हिन्दुओं से अलग होने में अपना लाभ दिखाई दिया । लेकिन उपेक्षित अनुभव करनेवाले हिन्दुओं में क्षोभ उत्पन्न होने लगा । " झूठा-सच " में यशपाल ने इस स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है - " कौल ने कटुता से शिकायत की " यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री में हम लोगों के लिये नौकरियाँ कहाँ हैं ? मुसलमान और जाट को थर्ड डिवीजन में बी॰ए॰ पास करके भी नौकरी मिल सकती है । हिन्दू के लिए एम॰ए॰ फर्स्ट डिवीजन करके भी जगह नहीं है ।" "[3]

1॰ तमस - पृ॰ 232॰

2॰ तूफान के दौरे से पंजाब - पृ॰ 86॰

3॰ झूठा सच - पृ॰ 27॰

अंग्रेज बड़ी महीन चाले चल रहे थे। फलस्वरूप कांग्रेस का प्रचार हिन्दुओं की नुमाईंदगी करने वाली पार्टी के रूप में किया जाने लगा । इसी प्रकार मुस्लिम लीग मुसलमानों की पार्टी करार दी गयी और अकाली दल को सिक्खों की पार्टी के रूप में मानकर अंग्रेजों ने उसे अपना पूरा सहयोग दिया । अंग्रेजों की शह पर ही मुस्लिम लीग और उसके नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने पाकिस्तान और देश-विभाजन की बात की थी । जिन्ना की इस मांग के पीछे अंग्रेज सरकार की पूरी ताकत थी । " झूठा-सच " में पं. गिरधारीलाल कहते हैं - " पंजाब में लीग, कांग्रेस और अकाली दल के संयुक्त मंत्रिमंडल बन सकने की संभावना, जिन्ना साहब के निर्णय से समाप्त हो गयी । "[1] एक अन्य स्थान पर पंडित गिरधारीलाल लीग के पीछे छिपे अंग्रेजी हाथ को पहचानते हुए इस प्रकार अपना मत प्रकट करते हैं - " भई लीग तो एबसर्ड डिमांड करेगी ही । एटली ने उन्हें बढ़ावा दे दिया है कि जिस तजवीज में लीग शामिल नहीं होगी, उसे ब्रिटिश सरकार मंजूर नहीं करेगी । "[2]

बदले में जिन्ना ने भी अंग्रेज सरकार का दामन कस कर थामे रखना स्वीकार किया । जिन्ना ने अंग्रेजों को यह आश्वासन भी दिया था कि " पाकिस्तान साम्राज्य में रहेगा और उसका गवर्नर जनरल ब्रिटिश होगा । पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से हिन्दुस्तान के बहुत पीछे होगा, इस कारण उसके विकास के लिए ब्रिटिश उद्योग - धन्धों और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जायेगा । "[3] अंग्रेजों ने

---

1. झूठा सच - पृ. 169.
2. - वही -
3. The Transfer of Power, Vol. VI पृ. 799 से उद्धृत, रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (खण्ड 1) राजकमल प्रकाशन पृ. 429.

मुसलमानों के भीतर के सामंत वर्ग को विशेष प्रोत्साहन देने की नीति पर तेजी से अमल किया । परिणाम स्वरूप मुस्लिम नेता अंग्रेजों की ओर झुकने लगे और हिन्दुओं के विरूद्ध होते चले गये । हिन्दू - मुसलमान को एकताबद्ध करनेवाली शक्तियों को अंग्रेज सरकार बरदाश्त नहीं कर सकती थी, क्योंकि 1857 की क्रान्ति से सरकार ने यह सबक अच्छी तरह ले लिया था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता उसके अपने अस्तित्व के लिए बहुत बड़ा खतरा साबित होगी ।

मुस्लिम जाति तो खैर शुरू से अलग धर्म और विश्वास को मानने वाली जाति थी किन्तु सिक्ख सम्प्रदाय तो हिन्दू धर्म से ही उत्पन्न हुआ था पर अंग्रेजों ने इनमें भी फूट डालने और अलगाववादी भावनाएँ भरने में कोई कसर नहीं उठा रखी । अंग्रेजों ने सिक्खों को एक अलग जाति के रूप में मान्यता प्रदान की, जबकि सिक्ख सदा से हिन्दुओं का ही हिस्सा समझे जाते थे । अपने एक लेख में रामस्वरूप लिखते हैं — " आरम्भिक यूरोपियन विद्वानों के लिये सिक्ख और हिन्दू दोनों अलग नहीं थे और यह बात सिक्खों के द्वारा भी स्वीकृत थी । इन दोनों को अलग मानने का फैशन बाद में चलकर सामने आया जिससे अंग्रेजों की साम्राज्यवादी आकांक्षा पूरी होती थी । "[1] पंजाब पर अधिकार प्राप्त करते समय अंग्रेजों के लिये " सिक्खवाद " एक राजनीतिक संघ से थोड़ा ही अधिक था, जिसे विशेषकर हिन्दुओं में से ही बनाया गया था, लेकिन 1857 के बाद सिक्खवाद को नई नज़र

---

1. देखिए, इंडियन एक्सप्रेस (कोच्चि संस्करण) 6 फरवरी, 1991 में प्रकाशित रामस्वरूप का लेख - " सिक्खिज्म : सीड्स ऑफ सैल्फ - एलियेनेशन । "

से देखा जाने लगा और इसके द्वारा सिक्खों को हिन्दुओं से अलग करने के प्रयास आरम्भ हुए । पहले पहल इसे " सुधारवादी आन्दोलन ", फिर हिन्दुओं के बहुदेववाद, मूर्ति पूजा तथा जाति प्रथा के विरुद्ध " विद्रोह " के रूप में तथा अन्तत: एक भरे-पूरे ऐसे धर्म के रूप में देखा जाने लगा जो हिन्दुओं के " आक्रमण " तथा " षडयन्त्रों " के खिलाफ वीरतापूर्वक लड़ रहा था, और अपने जीवन के लिये अंग्रेजी हुकूमत के समर्थन की अपेक्षा रखता था । "[1] यहाँ तक कि अंग्रेजों ने सिक्ख धर्म को इस्लाम से भी जोड़ देने का प्रयास किया । पेशावर में बीस वर्षों तक मिशनरी के रूप में कार्य करनेवाले " दि डिक्शनरी ऑफ इस्लाम " The Dictionary of Islam (1885) के सम्पादक टॉमस पैट्रिक ह्यूज Thomas Patrick Hughes ने एक विस्तृत लेख में सिक्ख पन्थ को इस्लाम के एक सम्प्रदाय के रूप में प्रस्तुत किया । परन्तु उनकी इस मान्यता के पीछे किसी तर्क की शक्ति नहीं थी और न इसे विद्वन्मंडलों में कोई महत्व ही दिया गया । एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ॰ अर्नेस्ट ट्रम्फ Dr. Earnest Trumph (जिसे अंग्रेजों ने सिक्ख धर्म का गहराई से अध्ययन करने के लिये नियुक्त किया था) ने सिक्खों को इस्लाम से जोड़नेवाली इन व्याख्याओं को कोई महत्व नहीं दिया । उसके अनुसार " नानक आरम्भ से अन्त तक अपने विचारों में हिन्दू रहे और अगर उनका सम्बन्ध मुसलमानों से था भी-जिनमें से अनेक उनके शिष्य बन गये थे - तो इसका कारण यह था कि ये मुसलमान सूफी सिद्धान्त को मानने वाले थे ।

---

1. देखिए, इंडियन एक्सप्रेस (कोच्चि संस्करण) 6 फरवरी 1991 में प्रकाशित रामस्वरूप का लेख - " सिक्खिज्म सीइस ऑफ सेल्फ-एलियेनेशन । "

वह वास्तव में सर्वात्मवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं था जो सीधे हिन्दू स्रोतों से आया था । केवल इसका बाहरी रूप ही इस्लाम से लिया गया था । "[1] सिक्ख पंथ के इस्लाम से संबंधित होने के विचार को अंग्रेज शासकों के अतिरिक्त केवल साम्राज्यवादी मिशनरी तत्वों तथा कुछेक अकाली सिद्धान्तवादी नेताओं ने ही मान्यता दी ।

अंग्रेजों ने अल्पसंख्यकों को दिए जानेवाले अधिकार और सरकारी नौकरियों में मिलने वाला आरक्षण केवल केशधारी सिक्खों को दिया। आगे चलकर तो अलग निर्वाचन मण्डल ही स्थापित किये गये और विधान मण्डलों में सीटों का आरक्षण भी किया गया । डा॰ रामविलास शर्मा के अनुसार -- "राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट डालने के लिये मुस्लिम-लीग अंग्रेजों के हाथ में एक अस्त्र थी किन्तु वह एकमात्र अस्त्र नहीं थी । अल्पसंख्यकों के रूप में सिक्ख सम्प्रदाय भी था । अंग्रेजों ने इनमें भी सामंती आधारवाले तत्वों को बढ़ावा दिया और पंजाब जैसे महत्त्वपूर्ण प्रदेश में साम्राज्य विरोधी संग्राम को कमजोर बनाने के लिये उनका उपयोग किया । सिक्खों के साम्प्रदाय - वादी नेताओं में अंग्रेजों ने अलगाववादी भावनाएँ उभारीं, उनके द्वारा यह प्रचार किया कि अंग्रेजों के चले जाने पर भारत में सिक्खों का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा । "[2]

---

1. Ram Swaroop - Sikhism: Seeds of Self alienation, Indian Express (Kochi Edition) Feb.6, 1991.

2. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - पृ॰ 515.

अंग्रेजों द्वारा सिक्खों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश रंग लायी । सिक्खों को एक अलग धर्म और जाति के रूप में मान्यता दिये जाने के बाद खालिस्तान की मांग ने सर उठाया । इस मांग को अंग्रेजों ने ही लगभग सुझाया और हवा दी थी । वही सिक्ख नेता जो पहले पाकिस्तान बनाए जाने के विरुद्ध थे और संयुक्त भारत की मांग करते आये थे अब असंतुष्ट मुद्रा में खालिस्तान की मांग करने लगे । यह ध्यान देने की बात है कि खालिस्तान की मांग केवल पाकिस्तान बनने और देश विभाजन की सूरत में ही उठाई गई थी अन्यथा सिक्ख तब भी देश की अखण्डता में ही विश्वास रखते थे । मास्टर तारासिंह देश के बंटवारे को बहुत ही खतरनाक मानते थे । " झूठा-सच " में यशपाल इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए बताते हैं - " हिन्दू - सिक्ख और कांग्रेसी लोगों ने लीग मिनिस्ट्री और पाकिस्तान की स्थापना का विरोध करने के लिये " एण्टी पाकिस्तान लीग " की स्थापना की थी । सर्व-सम्मति से इस लीग का डिक्टेटर मास्टर तारासिंह को स्वीकार किया गया था । "[1] तथा " मास्टर तारासिंह के अधिनायकत्व में ऐण्टी-पाकिस्तान की हुंकार भी कम नहीं थी । "[2]

बंटवारे की सूरत में मास्टर तारासिंह ने सिक्खों के हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में रहने की बजाए, उनके लिए एक ऐसे स्वतंत्र राज्य की बात उठाई जो स्वेच्छा से हिन्दुस्तान या पाकिस्तान से गठबंधन कर

---

1. झूठा सच - पृ. 114.
2. - वही - पृ. 127.

सके । देश-विभाजन में पंजाब को बड़े हौलनाक अनुभवों से गुजरना पड़ा था । परिणाम-स्वरूप 1947 में आजादी मिलने और पाकिस्तान बनने के बाद सिक्खों की खालिस्तान की मांग धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगी । विशेषकर इधर के कुछ वर्षों में तो इसने भयंकर रूप धारण कर लिया है । जो हिन्दू-सिक्ख कभी एक जुट होकर आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और देश विभाजन का विरोध कर रहे थे उनमें अलगाव की खाई इन दिनों गहरी होती जा रही है । देश की एकता फिर से खतरे में पड़ गई है । इसका श्रेय स्पष्टत: ही अंग्रेजों की कुटिल चाल और कूटनीति को जाता है । " झूठा-सच " में सिक्खों द्वारा उठाई गई इस मांग का जिक्र किया गया है । - " सिक्खों के साम्प्रदायिक संगठनों की मांग बढ़ती जा रही थी । "[1] तथा " तलवार के जोर से पाकिस्तान न बनने देने की घोषणा करनेवाले मास्टर तारासिंह और अनुयायी पंजाब में खालसा राज (सिक्ख राज) बनाने की मांग उठा रहे थे । "[2]

अंग्रेज जानते थे कि मुस्लिम, हिन्दू या सिक्ख राज्य बनने से पंजाब की जातीय एकता टूटेगी । इसी प्रकार साम्प्रदायिक राज्य बनने से बंगाल की भी जातीय एकता टूटती थी । " .... वास्तव में साम्प्रदायिकता को उभारा ही इस लिए गया था कि भारत के पंजाब और बंगाल जैसे राज्यों की एकता टूट जाए और उसके साथ सारे राष्ट्र की एकता टूटे । "[3]

---

1. झूठा सच - पृ. 359.
2. - वही - पृ. 363.
3. रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (खण्ड 1) पृ. - 435.

अंग्रेजों ने अपने दीर्घ अनुभव से यही सीखा था कि "किसी राष्ट्र की मूल शक्ति वहाँ कि सांस्कृतिक चेतना और सैन्यवृत्ति ही होती है जो ऊपर से लादी गई किसी राज्यसत्ता को अवसर पाते ही उलटने में समर्थ होती है । फलत: अंग्रेजों ने एकदम नियोजित ढंग से पंजाब के पारस्परिक भ्रातृत्व, धार्मिक सद्भावना और सैन्य वृत्ति को कुचलना शुरू किया । " 1

अंग्रेज अपने मकसद में इतने सफल हुए कि उनके जाने के तकरीबन 40 साल बाद भी हिंसा, द्वेष, अलगाववाद और साम्प्रदायिकता की यह आग कम होने की बजाए बढ़ती जा रही है । अंग्रेजों द्वारा बोया गया द्वेष का बीज अब देश में विशाल विष-वृक्ष का रूप धारण कर चुका है और जगह-जगह हिन्दू-मुस्लिम और हिन्दू-सिक्खों के बीच दंगे हो रहे हैं । खालिस्तान की मांग एक बार फिर देश को विभाजन की ओर ले जा रही है और पंजाब में होने वाले दंगों और फसादों के रूप में जैसे इतिहास अपने आपको दोहरा रहा है ।

पिछले कुछ दशकों में पंजाब की शांति और स्थिरता भंग हो चुकी है । पंजाब में होने वाली इस उथल पुथल के पीछे धन, धर्म और राजनीति की जटिल भूमिका है । शासकों और स्वार्थी तत्वों ने धन की शक्ति का उपयोग हर प्रकार से किया । अल्पसंख्यकों और पिछड़ों के नाम पर शासक वर्ग ने नौकरियों में आरक्षण, छात्रवृत्तियाँ, सरकारी सुविधाओं और इनामों की व्यवस्था अपने लोगों के लिए की । देशी - विदेशी शक्तियों ने धन का लोभ दे कर असामाजिक तत्वों द्वारा साम्प्र-

---

1· तूफान के दौर से पंजाब - पृ· 60·

दायिक दंगों की शुरुआत करवाई । पैसे के जोर पर अफवाहों के बाज़ार गर्म किए गए, जिससे लोगों के दिलों में आपस में दूसरे धर्म और सम्प्रदाय वालों के प्रति संशय ने जन्म लिया । बिहार और बंगाल में हुए दंगों की अफवाहों के परिणाम स्वरूप पंजाब में दंगों ने उग्र रूप धारण कर लिया । इसके अतिरिक्त कुछ धनी-मानी लोग धर्म और समाज की रक्षा के नाम पर अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिए साम्प्रदायिक भावनाओं का प्रचार करके और असामाजिक तत्वों को पैसे तथा हथियार देकर आग में घी डालने का काम करते थे । " झूठा-सच " में लाला रामज्वाया और उनके धनी एवं प्रभावशाली मित्र ऐसे ही हैं जो हिन्दुओं की रक्षा के नाम पर बदले की भावना से परिचालित रतन, बीरसिंह, मेवासिंह आदि नवयुवकों को भड़काते हैं और हथियार वगैराह देते हैं ।[1] दंगा भड़कने पर साधन-हीन जन साधारण ही इसका शिकार बनता है, ये पैसेवाले तो सुरक्षित रहते हैं ।

साम्प्रदायिक दंगों के भड़कने और देश-विभाजन के पीछे धन की एक और भूमिका भी थी । अविभाजित पंजाब के गाँवों या शहरों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि धन-सम्पत्ति और जमीन-जायदाद के मालिक अधिकतर हिन्दू-सिक्ख ही थे । अधिकांश मुसलमान या तो गरीब किसान थे या छोटे-मोटे रोजगार करते थे । पाकिस्तान के रूप में इन्हें समृद्धि के अपने सपने साकार होते लगे । नेताओं ने धर्म के नाम पर समाज को बाँट डाला था । वे सब्ज बाग दिखाकर गरीब और मासूम लोगों को देश - विभाजन के लिए उकसा रहे थे । गरीबों की नियति अगर पाकिस्तान बनने से बदल जायेगी, वे

---

1. झूठा सच - I - पृ. 134

सुखी हो जायेंगे तो भला उन्हें पाकिस्तान बनाये जाने पर क्यों आपत्ति होती ? इस तरह लोभ, भय और धार्मिक भावनाओं को उकसा कर मुसलमानों से पाकिस्तान की मांग के लिए सहमति प्राप्त की गयी थी । इसमें वस्तुत: वैसे नेताओं और धनिकों की भलाई होती थी जो भारत से अलग होने पर राजनीति और पूंजी की भारतीय प्रतिद्वंदिता से बच सकते थे । कायदे-आजम जिन्ना और पाकिस्तान की मांग को जो समर्थन मिला उसके पीछे धन की इस भूमिका को नकारा नहीं जा सकता । आज के परिदृश्य में अलगाववाद ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है और विश्व - व्यापी हो गया है । दुनिया में अनेकों ऐसी ताकतें हैं जो दूसरे देशों में अलगाववाद को बढ़ावा देती हैं । भारत में आजादी के बाद से उठनेवाली खालिस्तान की मांग के पीछे भी आतंकवादियों को कुछेक विदेशी ताकतों से प्रोत्साहन के साथ-साथ शरणस्थल, धन, और हथियारों का सहयोग प्राप्त होना एक बहुत बड़ा कारण है । दूसरा कारण बेरोजगारी तथा धन की असमानता है । बेरोजगार युवक पैसे की चमक के आगे टिक नहीं पाते और इन ताकतों के चंगुल में फंस कर आतंकवादी बन जाते हैं ।

साम्प्रदायिक धार्मिक संगठन और दंगे :-

साम्प्रदायिक और धार्मिक आधार पर बनी राजनीतिक पार्टियाँ और संस्थाएँ अपनी स्वार्थपरकता के लिये साम्प्रदायिक द्वेष को जन्म देती हैं । हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि पार्टियों के नामों से इनकी धर्म-निर्भरता का पता चलता है । इस तरह

की राजनीतिक पार्टियाँ धर्म या सम्प्रदाय को आधार बनाकर वोट पाने के लिए लोगों में अगर मौके-बेमौके अलगाववाद की भावना भरती नजर आयें तो क्या आश्चर्य ? यहाँ तक कि धार्मिक पर्वों पर भी खुशियों और सद्भाव की जगह तनाव उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी मारकाट भी होती है । यह सब धनिकों, धार्मिकों और राजनीतिक नेताओं की मिली भगत और उनके द्वारा लोगों को भड़काने का नतीजा है । " तमस " के कथानक में शहर में उत्पन्न धार्मिक तनाव की स्थिति को व्यक्त किया गया है - " हर साल गुरपर्व के अवसर पर सिक्खों का जुलूस निकलता तो शहर में तनाव आ जाता; जामा-मस्जिद के सामने से जुलूस बाजा बजाता हुआ निकलेगा या नहीं, उस पर पथराव होगा या नहीं । मुसलमानों के ताजिये निकलते और छातियाँ पीटते,'या-हुसैन 'बोलते, पसीने से तर मुसलमानों की मण्डलियाँ निकलती तब भी शहर में तनाव आ जाता पर इसके बाद तनाव ढीला भी पड़ जाता । "[1]

अपने घृणित उद्देश्य की पूर्ति के लिए लोगों की धार्मिक भावनाएँ उभारने वाले ऐसे लोग अपने धर्म के विरुद्ध कार्य करने में भी नहीं हिचकते । वस्तुत: स्वार्थ ही उनका सबसे बड़ा कार्य होता है । " तमस " में जिला कमेटी के मेम्बर मुबारक अली ने हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़काकर अपना राजनीतीक उल्लू सीधा करना चाहा । इसके लिये उसने सुअर मरवा कर मस्जिद के सामने फिंकवाया हालांकि यह कार्य स्वयं उसके अपने धर्म के खिलाफ था ।[2]

1· " तमस " पृ· 92 - 93

2· " तमस " पृ· 99· - " मुरादअली ने सलोतरी का नाम लेकर सुअर मरवा लिया था और मस्जिद के सामने फिंकवा दिया था ।"

इसके अतिरिक्त लोकप्रिय धार्मिक नेता और धर्मोपदेशक धार्मिक सत्संगों या अन्य सभाओं में लोगों के दिलों में साम्प्रदायिकता का विष घोलते रहते थे। -- पुण्यात्माजी और वानप्रास्थी जी सतसंग की समाप्ति पर ऊँची और मर्मभेदी आवाज में ये पंक्तियाँ पढ़ते हैं--

" फैलाये घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने
नेअमत फ़लक ने छीन ली, दौलत जमीन ने। " [1]

" तमस " में भीष्म जी ने शहर की धार्मिक संस्था के जाने-माने अधिकारियों की एक अन्तरंग सभा का जिक्र किया है। इस सभा में साम्प्रदायिक दंगों का भय दिखलाकर तथा झूठी अफ़वाहों के बल पर शत्रु के विरुद्ध लड़ाई की तैयारियों की योजना आत्मरक्षा के नाम पर बनाई गई। लोगों को इस प्रकार से हिदायतें दी गयीं कि -- " सभी सदस्य अपने-अपने घर में एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छत पर से फेंके जा सकते हैं। " [2] बन्दोबस्त पक्का करने में कोई कोर-कसर नहीं रह जाये, इसके लिए " सजग " लोग अपनी राय जरूर देते हैं - " मैं समझता हूँ युवकों को लाठी सिखाने का काम फ़ौरन शुरू कर देना चाहिये। " [3]

---

1. तमस - पृ. 60.
2. - वही - पृ. 62.
3. - वही -

जाने कैसा वक्त आ गया कि लोगों को वक्त का एहसास कराने के लिए धर्म की आड़ लेनी पड़ी । इस सन्दर्भ में एक महाशय की यह राय काफी व्यंजनापूर्ण हो जाती है जब वे गंभीरतापूर्वक कहते हैं - "शिवाले पर लगे घड़ियाल की भी जाँच करवा लीजिये ।" [1] यह शिव जी या पुजारी की दिनचर्या की दृष्टि से नहीं, दंगों के संदर्भ में आक्रमण-प्रत्याक्रमण की दृष्टि से दी गयी सलाह है ।

" झूठा सच " में यशपाल ने भी समस्या के इस पहलू की तरफ संकेत किया है । हिन्दू-रक्षा कमेटी की महिला कार्यकर्ताएँ हिन्दू मुहल्लों में जा कर वहाँ की महिलाओं में साम्प्रदायिकता का जहर फैलाती हैं - "बहिनों क्या तुम्हें नहीं मालूम, कलकत्ते में मुसलमानों ने हजारों हिन्दू भाइयों को कत्ल कर डाला, हमारी सैकड़ों बहू-बेटियों को बेईज्जत कर डाला है । अफसोस है, तुम्हारी गली में यह लोग (मुसलमान) अब भी सौदा बेच रहे हैं ... ।" [2]

सम्प्रदायवाद का ज़हर अफवाहों के माध्यम से खूब ज्यादा और खूब जल्दी फैलता है । अफवाह फैलाने वालों की बातों में खून खौला देने की खासियत होती है । हिन्दू रक्षा कमेटी की कार्यकर्ती बताती है - "मुसलमान मरे खूब तैयारी कर रहे हैं । पानी के नल कटवा-कटवा कर बन्दूकें बना रहे हैं । मुसलमानियों ने भी छुरे रख लिए हैं । हमी लोग सोये हुए हैं । तुम्हें चाहिए अपने घर के

---

1. तमस - पृ. 64.
2. झूठा सच - पृ. 60.

सब मर्दों को अखाड़े भेजो । सब लोग लाठी, तलवार, बन्दूक चलाना सीखें नहीं तो तुम्हारी जायदादें कहाँ बचेंगी ? "[1] यह बात इकतरफा नहीं होती । दूसरी ओर मुसलमान भी हिन्दुओं के विरुद्ध ऐसी ही अफवाहें उड़ा रहे थे । विभाजन के माहौल में हिन्दू-मुसलमान दोनों एक दूसरे पर सन्देह करते थे, एक दूसरे से भयभीत थे और इसीलिए एक दूसरे के दुश्मन थे ।

स्टूडेंट फेडरेशन का सदस्य असद, प्रोफेसर प्राण को झूठा सच में बताता है - " डाक्टर साहब, मैं अर्ज कर रहा था कि हिन्दू और मुस्लिम मुहल्लों में जहर फैलाया जा रहा है । मुल्ला मस्जिदों में रो-रोकर पैगम्बर के नाम से जिहाद के लिये फतवे दे रहे हैं । हथियार इकट्ठे करने की योजनाएँ बन रही हैं । "[2]

अपने उपन्यास " काले-कोस " में बलवन्त सिंह भी समस्या की इस दुखती रग पर हाथ रखते हैं । गाँव के चन्द जाने-माने स्वार्थी लोग ग्रामीणों को बरगलाकर उनके दिलों में विधर्मियों के प्रति विद्वेष की भावना पैदा करते हैं - " तुममें से किसी को इस बात का पता नहीं कि चारगाँव के मुसलमान चुपके-चुपके किस तरह हमारे लिए मजबूत जाल तैयार कर रहे हैं । "[3]

---

1. झूठा सच - पृ. 65.
2. - वही - पृ. 71.
3. काले - कोस - पृ. 225.

"बस हम लोगों में जत्थेबन्दी की कमी है। इसलिए अब बिना अपना भेद खोले चुपके-चुपके जत्थेबन्दी करनी चाहिए।"[1] एक अन्य स्थान पर गाँव के बाहर से आने वाला व्यक्ति गाँव की एकता को भंग करने के लिए लोगों से कहता है - "तो यहाँ मुसलमान और हिन्दू-सिक्ख का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता। लेकिन अगर कभी परदेस जाकर देखो तो पता चले कि इन लोगों के खाने के दाँत और, और दिखाने के और होते हैं।"[2] अगर गाँववालों में एकता रही तो लोभी और स्वार्थी तत्वों की दाल नहीं गल सकती अत: ये तत्व सबसे पहला प्रहार इसी एकता पर ही करते हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक दल भी अपनी स्वार्थ - सिद्धि के लिए धर्म-संप्रदाय के क्षेत्र में भी राजनीतिक चालें चलते हैं और आपस में लोगों को भड़काते हैं। उन्हें आम जनता की भलाई और उनकी सुरक्षा से कोई सरोकार नहीं होता। लाहौर की स्थिति का ब्यौरा देते हुए बलवन्तसिंह लिखते हैं - "आजकल वहाँ मुस्लिम लीग का बड़ा जोर है। लीग ने मुस्लिम जनता में काफी असर पैदा कर लिया है और उनमें जोश भर दिया है।"[3] यह जोश, कहने कि आवश्यकता नहीं, हिन्दू-सिक्खों के खिलाफ फिरकापरस्ती के लिबास में पैदा हुआ है।

---

1. काले - कोस - पृ. 225.
2. - वही - पृ. 245.
3. - वही - पृ. 222.

" झूठा सच " में यशपाल लिखते हैं - " साम्प्रदायिक आधार पर बनी राजनीतिक पार्टियों में भी आपस में झड़प होने लगी । लीग पार्टी शासन का अधिकार पाना चाहती थी जब कि विरोधी दल इसके विरोध में थे ... कांग्रेस अकाली दल और हिन्दू महासभा का सर्व सम्मति से संयुक्त निश्चय है कि गवर्नर द्वारा यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री की बरखास्तगी अवैधानिक है इसलिए मुस्लिम लीग के मंत्रिमंडल की सरकार को किसी हालत में सहन नहीं किया जाएगा । "[1]

राजनीतिक पार्टियों द्वारा सत्ता पाने की होड़ आजादी के बाद भी चलती रही । इन्होंने आजाद भारत को भी अपनी कूट नीतिक चालों का शिकार बना दिया - " पंजाब में पश्चिम से बहुत से लोगों के आ बसने के कारण, आगामी चुनावों के लिये नये सिरे से निर्वाचन क्षेत्र बनाये जाने का काम चल रहा था । अकाली दल और सिक्खों का यत्न था कि निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बांटे जायें कि पूरी आबादी में सिक्खों की संख्या-प्रतिशत कम होने पर भी उनके उम्मीद-वार सफल हो सकें । "[2]

साम्प्रदायिक और दलगत स्वार्थ ने मानवीयता की कोई परवाह किये बगैर लोगों को छोटे-छोटे दायरों और खेमों में बांट दिया । लोग, भरे-पूरे आदमी-व्यक्तित्ववान होने के बजाय जिन्सों की तरह बिकने-बंटने लगे । आदमी आदमी का दुश्मन बनने लगा । आदमी मनुष्यता से नहीं, घृणित स्वार्थ से परिचालित होने लगा ।

---

1. झूठा सच - पृ. 104.
2. - वही - पृ. 358.

एक किस्म के लोगों ने अपने लिए अलग वतन की फरमाइश की तो दूसरी किस्म के लोग " देश " की माँग करने लगे । जमीन की तरह आदमी के भी टुकड़े हुए । देश-विभाजन ने लोगों के दिलों में उनकी भावनाओं में दरार पैदा कर दी ।

इस प्रकार साम्प्रदायिक आधार पर बनी राजनीतिक पार्टियों और धार्मिक संस्थाओं ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए आम जनता की भावनाओं का दुरुपयोग किया । इन्हें लोगों की सच्ची और वास्तविक भलाई से कोई वास्ता नहीं था । राजनीतिक चालों में जनता को मोहरे के रूप में इस्तेमाल किया गया । इन सब के परिणाम स्वरूप लोगों के दिलों पर साम्प्रदायिकता के जहर का असर होने लगा । प्रेम और सौहार्द के वातावरण में कटुता घुलने लगी, " काले-कोस " में बलवन्त सिंह ने इस परिवर्तन को स्पष्ट लक्षित किया है । दंगों को लेकर फैली अफवाहों के दौर से पहले सभी धर्मों के लोग इकट्ठे बैठ कर बातचीत करते थे और सबकी भावनाओं का खयाल रखा जाता था । जीवन शैली पृथक होने के बावजूद भिन्न सम्प्रदायों में भावात्मक अलगाव नहीं था - " मुसलमानों का गिरोह अलग अपने हलके में हुक्का लिये बात - चीत में हिस्सा ले रहा था और हिन्दुओं का हुक्का अलग था । सिक्ख तम्बाकू से दूर बैठे थे । उनके सम्मान में शेष लोग हुक्का दरवाजे से बाहर ले जाकर पीते थे । " [1] सामाजिक जीवन में विभिन्न संप्रदाय वाले लोग सहिष्णुता से काम लेते थे ।

---

1. काले कोस - पृ. 48.

" सिक्खों की भावनाओं का आदर करते हुए इस बात का ख्याल रखा जाता था कि धुँआ उनकी ओर न जायें । "[1] मगर अलगाववादी ताकतों ने जिस विष-वृक्ष का बीजारोपण किया, उसका पौधा धीरे-धीरे जड़ जमाने लगा । धार्मिक नेताओं द्वारा फैलाई गई अफवाहों और उनकी उकसानेवाली बातों का असर यहाँ तक हुआ कि - " धीरे धीरे दारे में सिर्फ मुसलमान जाने लगे और पेशोरासिंह की बैठक में केवल हिन्दू और सिक्ख । "[2] ऐसी परिस्थिति में डॉ॰ मुहम्मद इक्बाल की " मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना," जैसी बातें झूठी पड़ने लगी । अब जान पड़ने लगा कि धर्म जोड़ता ही नहीं, तोड़ता भी है ।

" तमस " में वानप्रस्थीजी के आदेशानुसार युवक दल शत्रु पर टूट पड़ने की तैयारी करता है । इस दल में 14-15 बरस के बच्चे भी हैं । ऐसी तैयारी का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखता है - " युवकों को तेल उबालने के लिए बड़ी कड़ाही नहीं मिल पा रही थी । खिड़की के दासे पर तीन चाकू, एक छुरा, एक छोटी सी किरपान साथ-साथ जोड़कर रख दिये गये थे । कमरे के एक कोने में दस लाठियाँ रखी थीं जिनके सिर पर पीतल की मूठ और नीचे मेखें गाड़ दी गयी थीं । दीवार के साथ एक-के-साथ एक तीन तीरकमान लटक रहे थे । "[3] इस प्रकार छोटे बच्चों और किशोरों के कच्चे दिमाग में फिरका परस्ती का जहर भर दिया गया था ।

---

1. काले कोस - पृ॰ 188॰
2. - वही - पृ॰ 249॰
3. तमस - पृ॰ 71॰

यह युवक दल अपने प्रशिक्षण के अनुसार मुस्लिम लोगों को मलेच्छ मानकर उन्हें मारने के लिए बेचैन था । अन्त में इस दल का एक किशोर, इन्द्र, राह-जाते एक बेकसूर, निरीह मुसलमान इत्र-फरोश को मार भी डालता है । [1]

इस प्रकार साम्प्रदायिक विष फैलाने और दंगे भड़काने में विभिन्न धार्मिक संस्थाओं और राजनीतिक पार्टियों द्वारा निभाई गई खलनायक की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता ।

समाचार पत्रों की भूमिका :-

साम्प्रदायिक द्वेष की आग भड़काने में स्वार्थान्ध तथा पूर्वाग्रह ग्रस्त अनेक समाचार-पत्रों ने भी कोई कसर नहीं उठा रखी । ढेरों समाचार पत्र भी हिन्दू या मुस्लिम अर्थात् एक पक्षीय हो गये थे । घटनाएँ चाहे आम जीवन से सम्बन्धित हों या राजनीति से, ऐसे समाचार-पत्र उन्हें पक्षपात-पूर्ण ढंग से, साम्प्रदायिक रंग में रंग कर, अपने ही तरीके से छापते थे । परिणाम-स्वरूप सर्व साधारण भ्रम का शिकार होकर आपस में एक दूसरे संप्रदाय के लोगों से नफ़रत करने लगा । " झूठा-सच " में समाचार-पत्रों के चरित्र के इस पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है ।

---

1. तमस - पृ. 154.

परीक्षाहाल में नकल करते हुए पकड़े जाने पर विद्यार्थी द्वारा प्रोफेसर को पीटने की घटना को राजनीतिक और साम्प्रदायिक आधार पर विभिन्न पत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से छापा गया - " सियासत " दैनिक में समाचार था - सीनेट हाल के फिसाद का मुलजिम लापता । सोमराज साहनी, तालिबइल्म सनातन धर्म कालेज पर मैजिस्ट्रेट के सामने पेश होने के लिए समन जारी । मोतबर जरिये से मालूम हुआ कि मुलजिम लापता है । पुलिस मजीद तहकीकात कर रही है ।

" छत्रपति दैनिक " में दूसरी तरह का समाचार था - तास्सुब की इंतहा, सीनेट हाल के मामले में मजीद इन्कशाफात । राष्ट्रीय सेवक-संघ के कारकुन पर लीगी प्रोफेसर का कहर । मोतबिर जरिये से मालूम हुआ है कि सनातन धर्म कालेज के तालिबइल्म सोमराज साहनी पर अरसे से लीगी प्रोफेसर दीनमुहम्मद की नाराजगी चली आ रही थी । वह तास्सुब का शिकार होने से बच नहीं सका । लीग की सल्तनत क्या रंग लायेगी ? "[1]

जाहिर है कि साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओं का भी मिर्च-मसाले के साथ हिन्दू-मुस्लिम अखबारों ने अपने-अपने तरीकों से अफवाहों में बदलकर ही प्रचार किया । - " चौकमती के बारे में हिन्दू अखबारों का कहना था कि हिन्दुओं के शान्त जुलूस पर मुस्लिम मुहल्ले में " किश्त बारी " (ईंट-पत्थर की वर्षा) हुयी । मुस्लिम पत्रों का कहना था कि पुरअमन मुस्लिम आबादी पर हिन्दुओं की भीड़ ने हमला किया । "[2]

---

1. " झूठा सच " - पृ॰ 50॰
2. - वही - पृ॰ 115॰

इस तरह छोटी-बड़ी सामाजिक घटना को धार्मिक-साम्प्र - दायिक चश्में से देखने का काम समाचार पत्रों ने किया । ये अखबार जिनके स्वामित्व में निकलते थे उनके अपने निहित स्वार्थ होते थे । कुछ अखबारों के मालिक धार्मिक और / अथवा राजनीतिक नेता भी होते थे । उनके हाथों में अखबार एक बड़े हथियार की भाँति था।

राजनीतिक समाचारों और घटनाओं को भी हिन्दू-मुस्लिम समाचार पत्र अपने-अपने अनुसार तोड़-मरोड़ कर छाप रहे थे । उपन्यास-कार यशपाल के साक्ष्य से हमें पता चलता है कि 4 मार्च के मंत्रि-मंडल बनाने के लिए गवर्नर का फैसला और उससे उत्पन्न राजनीतिक स्थिति विभिन्न समाचारपत्रों में इस प्रकार " रोचकता " से उपस्थित की गई थी - " छत्रपति दैनिक " का शीर्षक था " लीगी हल्कों में मायूसी "। पंजाब असेम्बली की लीग पार्टी के लीडर खान ममदोट को गवर्नर पंजाब ने हिन्दुओं-सिक्खों को शामिल किए बिना वजारत करने का मौका देने से इन्कार कर दिया । "

" दैनिक " सियासत का शीर्षक था - " कांग्रेस और हिन्दुओं को लीग के जम्हूरी हकूक नामंजूर । मास्टर तारासिंह की तलवार से फैसले की धमकी । पंजाब की किस्मत गवर्नर के हाथ में दे देने के लिए अकालियों और कांग्रेस की जिद । "

प्राय: सभी हिन्दू पत्रों में पंजाब के अनेक नगरों में लीगी मंत्रि-मंडल बनाये जाने के विरुद्ध किये गये प्रदर्शनों के समाचार थे लेकिन मुस्लिम पत्रों में सभी नगरों से यूनियनिस्ट मंत्रि-मंडल के टूट जाने पर संतोष व्यक्त किया गया था । उनमें सिर्फ लीग का मंत्रि-मंडल तुरन्त बनाये

जाने की मांग को लेकर होनेवाले प्रदर्शनों के ही समाचार थे। लाहौर के हिन्दू पत्रों में लीगी मंत्रि-मंडल की स्थापना के विरुद्ध सभी हिन्दुओं और सिक्खों के संयुक्त प्रदर्शनों की घोषनाएँ थीं। "[1] समाचारों के चयन तथा उनके विवेचन विश्लेषण में धार्मिक-साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों ने लोगों की भावनाएँ भड़कायीं और आग में घी डालने का काम किया।

साम्प्रदायिकता के ढांचें में ढले हुए इस प्रकार के समाचार-पत्रों को पढ़कर साधारण लोगों के विचार और व्यवहार में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था। धार्मिक संस्थाओं, राजनीतिक दलों तथा साम्प्रदायिक दृष्टि वाले अखबारों ने भोले-भाले लोगों के सरल मन में ढेरों विस्फोटक सामग्री भर दी थी। सिर्फ तीली लगाने भर की देर थी और विस्फोट में किसी भी क्षण महाविनाश हो सकता था। स्वार्थ-बद्ध दृष्टि दूर तक नहीं देख पाती। वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए किसी की भी बलि चढ़ा दे सकती है। दंगों के रूप में यह विस्फोट जल्दी ही हुआ और जो देश-विभाजन के पश्चात् भी खत्म नहीं हुआ।

साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका और पंजाब :-

बिहार और बंगाल की तरह पंजाब में भी हिन्दू - मुस्लिम दंगे भड़क उठे और पंजाब के लोग इन दंगों की आग में झुलस गये। धार्मिक उन्माद और बदले की आग में जलते लोगों ने नृशंसता

---

1. झूठा सच - पृ. 108.

की अंतिम हदों को छू लिया । शुरू से ही लगातार फैलायी जा रही अफवाहों ने इस जंगली आग में घी का काम किया । दंगों की इस आंधी में लोग अपनी-अपनी जगहों से उखड़ कर तिनकों की तरह इधर - उधर बिखर गये । भयंकर दंगों के रूप में मानो काल ने ही अपने विकराल पंजों में पूरे पंजाब को दबोच लिया । मार-काट और लूट-पाट का बाजार गर्म हो उठा और चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी । हमारे कथाकारों ने अपनी यथार्थपूर्ण कृतियों में इन दंगों का विशद और मर्मान्तिक-चित्र प्रस्तुत किया है । दंगों की शुरूआत तो एक-आध कत्ल या छिट-पुट आगजनी से होती है किन्तु शीघ्र ही यह आग विकराल रूप धारण कर लेती है । " तमस " में रावलपिण्डी तथा उसके आस-पास के कस्बों और गांवों में हुए दंगों की विभीषिका को दर्शाया गया है । शहर की अनाजमण्डी में आग लगा दी गई और " अल्ला-हो - अकबर " तथा " हर-हर-हर-महादेव " के नारों की गूंज में खुले आम मार-काट शुरू हो गई । भीष्म साहनी बताते हैं - " मण्डी में आग लगी है । कोई आदमी जोर से चिल्लाया । तभी सहसा कहीं दूर से आवाज आयी । आवाज बहुत ऊंची थी । बहुत साफ थी ।

" अल्ला-हो-अकबर ! "

- - - - थोड़ी देरबाद बढ़ते शोर में एक और आवाज बहुत से कण्ठों में से एक साथ फूटकर आयी !

" हर-हर-महादेव । " [1]

---

1. तमस - पृ. 112.

गांवों में तो हालत और भी खराब थी । गांव के गाँव जला दिये गये । " देखो कोई गाँव जल रहा है । --- वह गाँव कौन सा है ? वह भी जल रहा है । "[1] सैयदपुर नामक गाँव में तो इतनी भयंकर लूट-मार हुई कि " जब रोशनी फैलने लगी तो चीलें और कव्वे, ढेरों-के-ढेरों आसमान में उड़ने लगे । अनेक गिद्ध भी मंडराते हुए आ गये । --- कुछ गिद्ध कुएँ की जगत पर भी आ बैठे थे जहाँ लाशें फूलने लगी थीं । --- गलियाँ सुनसान पड़ी थीं । ---- जगह-जगह उस आँधी के निशान थे जो रात-भर चलती रही थी । "[2] यह आँधी प्राकृतिक कारणों से नहीं, आदमी के धार्मिक उन्माद से पैदा हुई थी ।

" झूठा-सच " में लाहौर शहर तथा उसके आस-पास के इलाकों में देश-विभाजन से पूर्व और विभाजन की घोषणा के पश्चात् हुए दंगों का हृदय-द्रावक चित्रण है । बाजार के बाजार जला कर राख कर दिये गये - " शहालमी का गुजान बाज़ार पूरा का पूरा राख हो गया था । जल कर गिरे अधगिरे दुमंजिले - चौमंजिले मकानों का मलबा बाज़ार में भर गया था । ---- संकरी पगडंडी के दोनों ओर जली हुई विराटाकार चिताओं के ढेर खड़े थे । ---- भयंकर दुर्गन्ध के कारण हाथ नाक को दबा लेता था । "[3] मनुष्यों की हँसती-खेलती आबादी अचानक लाशों के ढेर में बदल गयी थी ।

---

1. तमस - पृ. 202.
2. - वही - पृ. 220.
3. झूठा सच - पृ. 271 - 272.

पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं के और पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के मुहल्ले जला दिए गये। प्रतिशोध और हिंसा की आग में जलते हुए लोगों ने दूसरे सम्प्रदाय के लोगों से भरी पूरी की पूरी गाड़ियों को लाशों से भर दिया। जवान, बूढ़े औरतें और बच्चे किसी को नहीं बख्शा गया। छोटे-छोटे बच्चों को उनकी माँओं की गोद से छीनकर फेंक दिया या मार दिया गया। आदमियों को मार कर उनकी औरतों और जवान लड़कियों को हथिया लिया गया और सरेबाजार उनकी बेइज्जती की गई। नृशंसता, क्रूरता और बर्बरता की होड़ में दोनों पक्षों में से कोई भी पीछे नहीं रहा। यशपाल बताते हैं - " सरगोधा में तो हिन्दुओं के मुहल्ले जला दिये गये थे, स्त्रियों को दिन-दहाड़े घरों से उठा लिया गया था। "[1] दंगे के शिकार लोगों की लगभग एक ही जैसी राम कहानी थी। राहजनी, लूट, बलात्कार, और हत्या की घटनाएँ आम हो गयी थीं और दुःस्वप्न के समान घटित हो रहीं थीं - " बूढ़ा आँसू भरे स्वर में बोला - " रब्ब को जाने क्या मंजूर है। हम लोग तो सब कुछ छोड़-छाड़ कर दोनों जवान बेटों, बहू और लड़की को लेकर चल पड़े थे। गाँव के हिन्दू-सिक्खों ने घेर लिया। बहू और लड़की को पकड़ कर ले चले। लड़कों ने आगे बढ़कर रोका। दोनों को फरसे से मार कर गिरा दिया। "[2] ऐसा निर्लज्ज हत्याकांड पशु भी नहीं करता। दरअसल आदमी की यह घृणित कारस्तानी पाशविकता से भी बहुत नीचे दर्जे की थी।

---

1. झूठा सच - पृ. 312.
2. - वही - पृ. 399.

पाकिस्तान जानेवाली और हिन्दुस्तान आने वाली चलती रेल गाड़ियों पर हमले हुए। "आक्रमण करनेवाले गाड़ी के पायदानों पर चढ़कर खुले दरवाजों और खिड़कियों से बर्छे और फर्से चलाने लगे और सामने पड़ने वालों को बाँहों से पकड़-पकड़ कर बाहर खींचकर गिराने लगे। तीन जवान दो तलवारें और एक जवान बर्छा लिये भीतर आ गये। बर्छे या तलवार का एक वार और गाड़ी के बाहर धक्का।"[1] गाड़ी में एक भी जीवित व्यक्ति शेष न होने के कारण गाड़ी लाहौर स्टेशन पर रोक दी गई।"[2] शायद यह घटना विश्व रेल व्यवस्था के इतिहास में अपने ढंग की अकेली होगी।"[3]

"काले-कोस" में बलवन्तसिंह ने भी इन पाशविकता से भरे क्रूर कारनामों को उजागर किया है। "लोगों को न तो नज़र का लिहाज़ रहा था और न ही दोस्ती का। करीमू अपने ही गाँव के सूरतसिंह और उसके पिता पर हमला कर उसकी बहन गोविन्दी को छीन ले जाता है।"[4] चलती गाड़ियों पर हुए हमलों का वर्णन बलवन्त सिंह ने भी किया है "हमलावरों ने बन्दूकों के फायर किये और कुछ ने लम्बी-लम्बी लाठियों के सिरे पर बंधी छवियों और कुछ ने भालों की सहायता से गाड़ी के बाहर लटकते हुए मनुष्यों को नोच लिया।

---

1. झूठा सच - पृ. 401.
2. - वही - पृ. 339.
3. इस प्रकार की अनेक दर्दनाक घटनाओं का जिक्र अनेक रचनाकारों ने कहानियों-उपन्यासों में किया है। खुशवन्त सिंह की "दा ट्रेन टु पाकिस्तान", कृशनचन्दर की "पेशावर एक्सप्रेस", रामानन्द सागर का उपन्यास "और इन्सान मर गया", मण्टो की "टोबा टेक सिंह" तथा विभाजन सम्बन्धी रचनाओं, भीष्म सहानी की कहानी "अमृतसर आ गया है" आदि में एक से एक भयावह, शर्मनाक और पाशविक कुकृत्यों की चर्चा है।
4. काले कोस - पृ. 335.

--- घबराहट और भय की दशा में छत पर बैठे हुए कुछ लोगों के धम-धम गिरने की आवाजें सुनायी पड़ीं। "[1] दंगाइयों के लिए विधर्मी मनुष्य नहीं रहकर एक संख्या मात्र रह गया था। दोनों सम्प्रदायों में ज्यादा संख्या में हत्या करने की होड़ मची हुई थी। फलस्वरूप फिज़ा में इस प्रकार की खबरें गूँजने लगी थीं -- "आज ही सुबह पूर्वी पंजाब से मुसलमान रिफ्यूजियों की एक गाड़ी बिल्कुल कटी-कटाई लाहौर पहुँची है।"[2]

इस प्रकार पंजाब की भूमि पर हिंसा, प्रतिहिंसा और नफ़रत की ऐसी आग भड़की जिसमें वहाँ के निवासियों का सब-कुछ जल कर भस्म हो गया - जान, माल, इज़्जत सब कुछ।

पुलिस, अधिकारी वर्ग, शासन तंत्र और साम्प्रदायिकता :-

बड़े दुःख, अचरज और दहशत की बात यह थी कि नफ़रत की इस ज्वाला में प्रतिहिंसा से परिचालित भीड़ों, असामाजिक तत्वों और गुण्डों के अतिरिक्त कई स्थानों पर पुलिस और शासनाधिकारियों ने भी खुलकर भाग लिया। इससे स्थिति और भी शोचनीय हो गई और संकीर्ण जातीय भावनाओं का पलड़ा कर्तव्य से भारी हो गया। पुलिस अफ़सरों की साम्प्रदायिकता आम आदमी में पायी जाने वाली साम्प्र-दायिकता से अधिक खतरनाक होती है, क्योंकि उसके पीछे शासन का

---

1. काले - कोस - पृ. 330.
2. - वही - पृ. 332.

बल भी रहता है । ऐसे अत्याचारी को कानून का कोई भय नहीं होता, वह रक्षक का लबादा उतारकर भक्षक बन जाता है । ऐसी अवस्था में अधिकारियों को मानवीय होना चाहिए किन्तु वह कानून से खेलते हुए दंगाई से भी भयंकर बन जाता है ।

" काले - कोस " में विधर्मी पुलिस के अत्याचारों से बच कर भाग आने वाला व्यक्ति गाँव वालों को बताता है - " परसों जब हम शेखूपुरा पहुँचे तो लोगों ने हमें बताया कि शहर में हिन्दू - मुस्लिम दंगे हो रहे हैं । लेकिन हम चले गये और वहाँ हमें पुलिस ने घर लिया । - - - - यों ही थानेदार मुसलमान था । - - यही कहते थे कि सिक्खों को अब यहाँ नहीं रहने देंगे । - - - जब हम थाने से बाहर निकले तो हम पर उन्होंने बन्दूकों से फायर किये । " [1] पुलिस के लोग जब धर्मान्धता का शिकार होते हैं तो यह समाज के चरम अध: पतन का द्योतक होता है । पढ़े-लिखे लोगों की साम्प्रदायिकता निरक्षर लोगों की साम्प्रदायिकता से बड़ा दुखान्त पैदा करती है ।

" झूठा-सच " में अमजद जो अमृतसर में पुलिस ऑफिसर था लाहौर आकर अपने पिता को बताता है कि - " गनी साहब खामुखाह कहते रहे, अभी सब्र करो, शक न होने दो, वर्ना हम अमृतसर में एक काफिर को न रहने देते । पुलिस क्या नहीं कर सकती । " [2] " सनसनी थी कि मुसलमान पुलिस हथियार लेकर

---

1. काले-कोस - पृ. 254 - 255.
2. झूठा सच - पृ. 368.

बागी हो गयी है । "[1] इस अवस्था में आम लोगों की दहशत का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है । दंगों से भाग कर बच आए लोग पुलिस और मिलीटरी के अत्याचारों की दास्तान सुनाते हैं - " बलोची सशस्त्र सैनिकों ने आकर सब हिन्दुओं को एकदम मकान खाली कर देने का हुक्म देदिया । कोई सामान, जेवर कपड़ा कुछ नहीं उठाने दिया । "[2] कहते हैं, कानून की नजरों में सब बराबर होते हैं । लेकिन कानून के रक्षक दंगों के समय धार्मिक नजरों से देखते हुए पक्षपात पूर्ण व्यवहार ही नहीं कर रहे थे, खुद दंगाई भी बन रहे थे । - - - वहाँ तो मिलटरी ने बहुत जुल्म किया । लोगों को जबरदस्ती घर से निकाल दिया और उनके घर लूट लिये । "[3] मिलीटरी के सिपाहियों ने अपने को छोटे-बड़े अत्याचारों और छोटी-बड़ी लूट तक ही सीमित नहीं रखा, उन्होंने खुलकर हत्याएँ भी कीं । - - - " एक कनवाय के साथ, रब उनका बेड़ा गर्क करे, बिलोची सिपाही थे । आठ बसों का कनवाय था । अमृतसर पहुँचे हैं तो सिवाय ड्राइवरों के सब लाशें । "[4]

धूर्तता सिर्फ सामान्य दंगाइयों, धार्मिक और राजनीतिक नेताओं में ही नहीं, मिलीटरी और पुलिस के सिपाहियों और अफसरों में भी देखी गयी थी । " स्टेशन पर पहुँच गये तो पुलिस के मुसलमान सिपाहियों ने हमारे मर्दों से बन्दूकें रखवा लीं और हमें लुटवा दिया ।"[5]

---

1. झूठा सच - पृ. 56.
2. - वही - पृ. 408.
3. - वही - पृ. 412.
4. - वही - पृ. 413.
5. - वही - पृ. 427.

पुलिस के खुले आम पक्षपात और अत्याचार को देखकर दंगे के शिकार लोग सोचने लगते हैं कि - "पाकिस्तान की तो सरकार ही हिन्दुओं का कत्ल करवा रही है। "[1] ऐसी अवस्था में शासन तंत्र की मंशा और नीयत पर सन्देह करना बहुत अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

लोग सरकारी अफसरों के पक्षपात पर टीका-टिप्पणी करते हुए कहते हैं - "सब लोग जानते हैं, अफसर निस्संकोच अपने-अपने सम्प्रदाय का पक्षपात कर रहे हैं। "[2] अतः इसके लिए किसी एक फिरके की पुलिस या शासन तंत्र को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। नफ़रत की 'आग थी दोनों तरफ बराबर लगी हुई।' और इसमें झुलस रहे थे भोले-भाले निरीह साधारण लोग।

दंगे और महिला वर्ग :-

दंगों की सर्वाधिक शिकार महिलाएँ ही बनती हैं। उन पर चारों तरफ से मार पड़ती है। उसकी संपत्ति लुटती है, वह शारीरिक अत्याचार और बलात्कार सहती है। समाज में उसके शरीर को इज्जत का प्रतीक समझा जाता है। पुरुष वर्ग आपस में लड़ते हैं और मारे जाते हैं परन्तु स्त्रियों को तो सम्पत्ति की तरह लूटा और लावारिस की तरह बेइज्जत किया जाता है। साम्प्रदायिक दंगों में तो औरतों

---

1. झूठा सच - पृ. 398.
2. - वही - पृ. 263.

पर होने वाले अत्याचार पाशविकता की सीमा लांघ जाते हैं । ऐसे अवसरों पर आदमी के भीतर का पशु नंगा हो जाता है ।

हमारे कथाकारों ने महिलाओं की इस दारुण सामाजिक दशा और दंगों के दौरान उन पर हुए अत्याचारों का वर्णन अपेक्षित रूप से किया है । दंगाई लोग स्त्रियों और लड़कियों को पारिवार के लोगों के बीच से जबरन उठा ले जाते हैं । अगर कोई उनके इस कुकृत्य में बाधा डालता है तो उसे बेहिचक कत्ल कर डालते हैं । ऐसी एक दु:स्थिति का वर्णन बलवन्तसिंह ने किया है । " करीमू ने झपट कर गोबिन्दी का बाजू थाम लिया और खींचा । ---- गोबिन्दी तिनके की भाँति खिंचती चली गयी । ---- वह हाथ फैलाकर चिल्लायी -- मेरे पिताजी ! मेरे वीरजी ! मुझे बचा लो --- मुझे बचा लो । "[1] क्या हिन्दू क्या मुसलमान हर फिरके में ऐसे तत्व होते हैं जो दंगे-जैसी स्थितियों से नाजायज फायदा उठाकर अपनी हविश का शिकार औरतों को बनाते हैं । यशपाल लिखते हैं । - " चार पांच जाट सिरों पर पगड़ियां और कमर में तहमद बांधे प्लेटफार्म पर आये । वे अपने बीच सहमी हुई नवयुवतियों को जल्दी चलाने के लिये बाहों से खींचे ला रहे थे । ---- जवान लड़कियों के चेहरे आंसुओं से भीगे और आतंक से सहमे हुये थे । उनकी बड़ी-बड़ी बूटी की छींट की सलवारें गले में चांदी की हंसलियां और कलाइयों पर चांदी के जेवरों से स्पष्ट था कि वे देहाती मुस्लिम परिवारों की थीं । "[2]

---

1. काले कोस - पृ. 335 - 336

2. झूठा सच - पृ. 404.

दंगे की शिकार औरतों का दुख कल्पनातीत है । उनकी संपत्ति, संबंधी, शरीर, सबका सर्वनाश हुआ । स्त्रियाँ अपने ऊपर हुए अत्याचारों की दास्तान सुनाती हुई कहती हैं - " बहना, बुरा किसके साथ नहीं हुआ । इन जानवरों ने औरत को औरत थोड़े ही समझा । - - - - इससे गला काट देते तो भला था । कोई कहके बता सकता है कि क्या झेला । "[1]

दंगे में भगाई गयी और जबरन पकड़ी गयी लड़कियों को लूट के माल की तरह दंगाइयों में बाँटा गया - " बाकर ने कहा - " इन तीनों क्वांरी मुटियारों को अलग कर लो । कहने लगा, ये गनीमत का माल (धर्म युद्ध की लूट) है । जो दीनदार बहादुर इनसे निकाह करना चाहे, ले जाये । उसने सत्तो की बांह पकड़ कर कहा - ये एक मेरी है । "[2]

दंगे की उस आँधी में औरतों को सामूहिक पाशविकता का शिकार भी खूब बनना पड़ा - " जिस्म की जो हालत की है, कोई गिनती थी दस-पन्द्रह की ! - - - - बच जाने की उम्मीद कहाँ थी पर जान नहीं निकली । रोटी का टुकड़ा देने की फिकर नहीं । बहिना, भूख किसको नहीं लगती ? पेट में भूख और ऊपर से जिस्म को चीरे-फाड़े डाल रहे थे - - - - "[3]

---

1. झूठा सच - पृ. 429.
2. - वही - पृ. 428.
3. - वही - पृ. 430.

एक दंगाई स्वयं अपने किये शर्मनाक अत्याचार की कहानी गर्व से सुनाता है -- "हिन्दुओं की एक लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गयी। हमने देख लिया जो। सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गये। नबी, लालू, मीरा, मुर्तजा, बारी-बारी से सभी ने उसे दबोचा। ---- कसम अल्लाह पाक की। जब मेरी बारी आयी तो नीचे से न हूं, न हां, वह हिले ही नहीं, मैंने देखा तो लड़की मरी हुई। --- मैं लाश से ही जना किये जा रहा था।"[1]

ऐसी जुगुप्सा-जनक घटनाओं ने आदमी को जानवर से भी बदतर साबित कर दिया, क्योंकि जानवर भी ऐसी हरकतें नहीं करते। दंगों में सब कुछ उलट-पुलट जाता है। नपुंसकता और कायरता वीरता के वेश धारण करने लगती है। मर्द अपना सारा आक्रोश और तथा-कथित मर्दानगी मजबूर औरतों पर निकालते हैं। दंगों के दौरान लड़कियों और औरतों को कभी कैद करके रखा गया, और कभी प्रदर्शनी लगा कर या नीलाम करके बेचा भी गया -- "सब स्त्रियां और लड़कियां डर कर एक ही कोठरी में हो गयी थीं। --- स्त्रियां भय के कारण दीवारों के साथ सिर झुकाये कोनो में सिमट कर बैठ गयी थीं। प्रौढ़ और उसका बेटा घूम-घूम कर उन्हें देख रहे थे और झिझक भी रहे थे। "खूब देख ले। जिसे देखना हो खड़ी करके देख ले।" --- गफूर ने दुर्गा की चोटी पकड़ कर खड़ा करके उसका मुँह ऊपर उठा दिया। --- गफूर दुर्गा को बांह से खींचता हुआ

---

1. तमस पृ. 214 - 215 (ऐसी स्थिति को लेकर मंटो ने एक बड़ी सांकेतिक लघु कहानी "खोल दो" लिखी थी।)

बाहर ले चला । " [1] यह एक घर के अन्दर की घटना थी । मगर खुले आम चौराहों पर भी घृणित दंगाइयों ने इससे भी लज्जास्पद दृश्य उपस्थित किये थे । - - " भीड़ के बीचों बीच नीलाम करने वाला एक जवान लड़की को चुटिया से खींच कर खड़ा किये था । लड़की के शरीर पर कोई कपड़ा न था । - - - भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियाँ चेहरे बाहों में छिपाये, घुटनों पर सिर दबाये बैठी थीं । उनके कपड़े भी धरती पर पड़े थे । " [2]

दहशत और आतंक पैदा करने तथा अपनी तथा-कथित जीत का जश्न मनाने का दंगाइयों का वीभत्स तरीका था । स्त्रियों का सामूहिक जुलूस निकाला गया । - - " सभी स्त्रियों की दृष्टि दाँई ओर कनस्तर बजाकर नट का तमाशा करते लोगों की ओर चली गयी । - - - बांस के सिरे पर एक स्त्री का नंगा शरीर था । स्त्री बांस के सिरे पर टांगे फैलाये अटकी हुई थी । - - - स्त्री की गर्दन और बाँहे निर्जीव, शिथिल, लटकी हुई थीं । - - - - - - - - - - - -

- - - - बांस उठाकर चलने वाले आदमी के सामने भी हाथों से चेहरे छिपाये चार-पांच नंगी स्त्रियाँ धकेली जा रही थीं । " [3]

इन शर्मनाक कारनामों और अत्याचारों को देखकर स्त्रियाँ क्षोभ और क्रोधवश फटकार और लानते भेजती हुई कहती हैं -- " वो इनकी माँ-बेटियों को बेइज्जत करें, ये उनकी माँ-बेटियों की बेइज्जत करें !

---

1. झूठा-सच - पृ. 446 - 447.
2. - वही - पृ. 419.
3. - वही - पृ. 459.

माँ-बेटियाँ बरबाद होने के लिए ही हैं। - - - - - मर्द आपस में लूटते हैं, कत्ल करते हैं पर मर्द एक दूसरे को नंगा करके उनके जिस्म की बेईज्जती तो नहीं करते ! "[1] दंगों ने एक बड़ा ही तीखा, जलता हुआ सच उजागर कर दिया; एक स्त्री के शब्दों में -- " मरे आपस में लड़ते हैं, मिट्टी औरतों की खराब करते हैं। "[2]

समाज की खोखली मान्यताओं और आर्थिक विषमताओं की चौतरफ शिकार भी स्त्रियाँ ही बनी हैं। विधर्मियों के चंगुल से किसी तरह बच कर आई स्त्रियाँ, पता लगाती हुई जब अपने परिवार वालों तक पहुँचती हैं तो वे उन्हें फिर से घर में बसाने से इन्कार कर देते हैं। इसके पीछे ज्यादातर सामाजिक बदनामी का डर और कभी-कभी आर्थिक परेशानियाँ, ये दोनों ही कारण कार्यरत होते थे। ऐसी बदनसीब स्त्री को बाप पति-ससुर कोई नहीं अपनाने को तैयार होता। -- " पेक्के [माता-पिता] इसे नहीं ले गये। कह दिया, हमने तो ब्याह दी थी, अब ससुराल वाले जाने।"[3] -- " इसके जेठ-देवर बेचारी को स्टेशन पर छोड़ कर बम्बई चले गये। बहना, इस जमाने में कौन किसका बोझ संभाल सकता है। - - । "[4] -- " कैसे घर में रख लेगी ! - - - मुसलमानों ने इन्हें छोड़ा होगा ? "[5] -- " दो महीने मुसलमानों के घर रह आयी है। हम कैसे रख ले। "[6]

---

1. झूठा - सच - पृ. 459.   2. झूठा - सच - पृ. 352.
3. - वही - [भाग-2] पृ. 96.
4. - वही - पृ. 109.
5. - वही - पृ. 122.
6. - वही - पृ. 123.

स्त्रियों के साथ समाज के इस व्यवहार के बारे में यशपाल जी लिखते हैं। -- "इनका अपराध यह होगा कि इनके साथ अनाचार किया गया है। पशुता और अनाचार तुम करो उसका दंड बेचारी स्त्री भोगेगी! वह बेचारी भुगतने और भोगी जाने के लिये ही है ---।"[1]

इसलिए बहुत बार ऐसे वक्त में स्त्रियाँ अपनी जान पर खेल जाती हैं। दंगाइयों के हाथ पड़ने की बनिस्पत वे मृत्यु को अपनाना उचित समझती हैं। "तमस" में अनेक स्त्रियों द्वारा कुएँ में कूद कर जान दे देने का प्रसंग है। सैयदपुर नामक गाँव में जब हिन्दू-सिक्खों के पास असला चुकने लगता है और मुसलमान उनपर हावी होने लगते हैं तो वक्त की नजाकत को देखते हुए महिलाएँ अपनी इज्जत बचाने के लिए कुँए में कूद जाती हैं। -- "सबसे पहले जसबीर कौर कुँए में कूद गयी। ---- उसके कूदते ही कुँए की जगत पर कितनी ही स्त्रियाँ चढ़ गयीं। ---- देखते ही देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुँए में कूद गयीं।"[2]

"झूठा-सच" में भी तथाकथित सामाजिक नैतिकता की मारी स्त्रियों और लड़कियों द्वारा किए गये ऐसे विवश प्रयासों का जिक्र है -- "सन्तो, बाँह छुड़ा कर भागी और कुँए में कूद गयी। फूला भी दौड़ी पर जालिमों ने पैरों में डंडा अड़ा कर गिरा दिया।"[3]

---

1. झूठा-सच (भाग - 1) पृ. 420.
2. तमस - पृ. 218 - 219.
3. झूठा-सच -पृ. 428.

इस प्रकार इन साम्प्रदायिक दंगों का सर्वाधिक शिकार महिला वर्ग ही बना । स्त्रियाँ भावनात्मक स्तर पर घर से जुड़ी होती हैं । अतः हमला चाहे उनपर हो या घर के सदस्यों या धन-सम्पत्ति पर, अन्तिम परिणाम महिलाएँ ही भोगती हैं । उनका संघर्ष दंगा खत्म होने पर भी खत्म नहीं हो पाता ।

आम आदमी और साम्प्रदायिक दंगे :-

वैसे तो आम-आदमी को इन साम्प्रदायिक दंगों या साम्प्रदायिकता मात्र से ही कुछ लेना-देना नहीं होता । हाँ वे अपने धर्म से जरूर जुड़े होते हैं और धार्मिक विश्वासों में जीते हैं । इसी बात का फायदा उठा कर कुछ खास तरह के लोग इन दंगों को हवा देते हैं । दंगे भड़कने पर उनका सर्वप्रथम शिकार आम जनता ही बनती है । जबकि उसका राजनीति या साम्प्रदायिकता किसी से सीधा सरोकार नहीं होता । वे अच्छे पड़ोसियों की तरह एक दूसरे धर्मवाले की मदद करते हुए शांति से रहते है । उच्चवर्ग के स्वार्थान्ध दंगा करवाने वाले लोग अपनी सुरक्षा के दुर्ग में रहते हैं, जब कि रोजी-रोटी से बंधे आम आदमी को कोई सुरक्षित कोना नसीब नहीं होता । वह आसानी से पकड़ा और मारा जाता है । आम आदमी मिल-जुलकर रहना चाहता है ।

" तमस " में दंगा भड़कने पर फतह दीन अपने पड़ोसी लाला लक्ष्मीनारायण को आश्वासन देता है - " आप बेफिक्र रहें, ये फिसादी लोग फिसाद करते हैं, शरीफों को परेशान करते हैं । यहाँ सभी को एक ही शहर में रहना है, फिर लड़ाई-झगड़ा किस बात का ? " [1]

---

1. तमस - पृ. 119.

दंगों में आम आदमी की सहृदयता, परस्पर सहयोग आदि के भाव घनघोर अंधकार में बिजली की कौंध के समान प्रकट होते रहे और मानवीयता के अस्तित्व का प्रमाण देते रहे ।

" तमस " में एक स्थान पर मुसलमान स्त्री राजो दंगों के दौरान सरदार हरनामसिंह और उसकी पत्नी को अपने घर में शरण देती है और यथासंभव उनको सहायता करती है । इतना ही नहीं वहलूट में मिले उनके गहने भी वापस कर देती है ।[1] यह आम आदमी की सहज स्वाभाविक आत्मीय मन:स्थिति की परिचायक है । लेकिन अस्थायी रूप से दरिन्दगी दंगों में हावी हो जाती है और साधारण लोगों के खून से अपनी प्यास बुझाती है ।

आम आदमी राजनीतिक पार्टियों और उनकी सियासी चालों की ओर से प्राय: उदासीन रहता है । उसकी सामान्य प्रवृत्ति झगड़े फसाद से दूर रहने की ही होती है किन्तु होता इसके विपरीत ही है । " काले-कोस " में राजनीतिक पार्टियों की आपसी झड़पों और उनसे उत्पन्न तनाव से परेशान एक ग्रामीण बोल उठता है - " क्यों जी ये पार्टियाँ आपस में समझौता क्यों नहीं कर लेतीं, आखिर यह सुबह शाम की झिकझिक से क्या फल निकलेगा ? "[2] आम आदमी के भाग्य का फैसला वे शक्तियाँ करती हैं, जिनसे वह परिचित तक नहीं

1· तमस - पृ· 190 - 203·
2· काले - कोस - पृ· 181·

होता । शासन-व्यवस्था में ऊँची कुर्सियों पर बैठे लोग जनता के अनजाने उसकी नियति निर्धारित करते हैं ।

" काले-कोस " में एक व्यक्ति पूछ बैठता है - " जी, हम अखबार तो पढ़ते नहीं हैं । यह मुस्लिम लीग किसे कहते हैं ?"[1] ऐसे भोले-भाले लोगों की जिन्दगियों से कुछ कुत्सित, स्वार्थान्ध, लोलुप लोग खिलवाड़ करते रहते हैं । साधारण लोगों के लिए सुविधा की जिन्दगी तो कभी मयस्सर होती नहीं, उलटे तरह-तरह के षड्यन्त्रों से उनकी जिन्दगी को तबाह किया जाता है ।

" तमस " में राजनीति और सियासी मामलों से उदासीन एक मजदूर देश में आजादी आने की बात सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है - " आवे आजादी बाबूजी सानू के, असीं हुण वी पण्ड चक्कणी ऐं, पिच्छोंवी पण्ड चक्कांगे । "[2]

साम्प्रदायिकता के जहर से जो विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं, उनसे क्षुब्ध आम लोगों को अपने अन्यधर्मी पड़ोसियों के प्रति सच्चा लगाव था - " लाहौर के मुसलमान बैरी बन गये, हैं तो अपने जैसे ही । बोली एक पहरावा एक, खाना-पीना भी-एक जैसा ही है । मन्दिर मस्जिद का ही तो फ़रक है । "[3] काश, इस सच्चाई को धर्म के ठेकेदार शिद्दत से महसूस कर पाते ।

---

1. काले - कोस - पृ. 190.
2. तमस - पृ. 101.
3. झूठा - सच - पृ. 290.

अफसोस की बात तो यह है कि इन झगड़ों से कोई प्रत्यक्ष सरोकार नहीं होने पर भी इनका सीधा असर सीधी-सादी जनता पर ही पड़ता है। दंगों की विभीषिका और उनसे उत्पन्न समस्याएं सदा इन्हें ही भोगनी पड़ती हैं। लेकिन यह साधारण आदमी दूब की तरह होता है जो कभी खत्म नहीं होती चाहे उसे कितना ही कुचला जाए। "कुलवन्तसिंह की दुकान बाजार की आग में जल गयी थी। वह गली में ही, बाजार के समीप के चबूतरे पर अपनी दुकान लगाने लगा।"[1] यह ठीक है कि दंगों ने आम लोगों की जिन्दगी को तबाह और बरबाद कर दिया, लेकिन इनके बीच भी यह जिन्दगी धड़कती रही। "साम्प्रदायिक दंगों के माहौल में लोगों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। कर्फ्यू लगने से वे घरों में कैद हो गये। उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्राय: समाप्त ही हो गईं। यहाँ तक कि लोगों के विवाह भी किसी प्रकार कर्फ्यू पासों का प्रबन्ध कर निपटाए जा रहे थे।"[2] दंगों के बाद, जब सब कुछ राख हो गया, उस राख में से भी नयी जिंदगी के अंकुर को फूटने से रोका नहीं जा सकता था। साधारण आदमी बहुत कुछ झेलता सहता है। वह मिटकर फिर से पनपता भी है। दंगे उसे सदा के लिए मिटा नहीं सकते। यह जिन्दगी की विजय है, जो मौत के साये में रहकर भी साँसे लेती है। हमारे कथाकारों ने विभाजन और सांप्रदायिक दंगों की त्रासदी की भयंकरता का वर्णन किया है जो निस्संदेह लोमहर्षक है। पर साथ ही उन्होंने जीवन की उस अमिट विद्युत-रेखा की झलक भी देखी है, जिसे विनाश के काले बादल ढंक नहीं पाते।

---

1. झूठा - सच - पृ. 284.
2. - वही - पृ. 291.

देश विभाजन और पंजाब :-

देश विभाजन की घटना से सम्पूर्ण पंजाब विभाजित होकर प्रभावित हुआ । " पश्चिमी " पंजाब से आने वाले लोग अगर बेघरबार हुए तो " पूर्वी " पंजाब से पाकिस्तान जानेवाले लोग भी मुसीबतों में घिर गये । इतना ही नहीं, पूर्वी पंजाब के जो निवासी अपने देश और अपने घरों में सही सलामत बचे रहे थे उनके जीवन पर भी इस घटना का अमिट असर हुआ । पंजाब, दिल्ली और उनके आस-पास के क्षेत्र भी इस विभाजन और दंगों से उत्पन्न परिणामों की लपेट में आ गये । देश के विभिन्न हिस्सों में, यहाँ तक कि पर्वतीय प्रदेशों में भी शरणार्थी पहुँच गये । यही हाल बंगाल के विभा-जन को भुगतनेवाले बंगाली शरणार्थियों का भी था, पर उनकी अलग ही कथा थी, जो हमारे विषय की परिधि के बाहर है ।

(क) पश्चिमी पंजाब से आनेवाले लोगों पर देश-विभाजन का प्रभाव :-

पश्चिमी पंजाब से आनेवाले लोग तो सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक रूप से उखड़-उजड़ गये । उन्हें " पराये " देश और समाज में दुबारा पैर जमाने में बरसों लग गये । आजादी के आस-पास होने-वाले दंगों की आग में देश-विभाजन की घोषणा ने घी का कार्य किया था । यशपाल लिखते हैं - " जून के प्रथम सप्ताह में निर्णय हो गया कि पंजाब को बांट कर पश्चिम का आधा पंजाब पाकिस्तान में दिया जायेगा । - - - इस घोषणा ने दंगों की धीमें धीमें सुलगती चली

आती आग को एक बार फिर भड़का दिया । "[1] राजनीतिक अनिर्णय अस्थिरता, अफवाह और दहशत पैदा कर चुका था । लोग स्वयं को अरक्षित पा रहे थे । आपसी विश्वास का लोप होने लगा था । घृणा तेजी से फैल रही थी ।

परिणाम स्वरूप लोग जन्मभूमि को छोड़कर भागने लगे थे । पश्चिमी पंजाब से आनेवाले शरणार्थी अनगिनत संख्या में दिल्ली, पंजाब और उत्तर मध्य-भारत के शहरों में भर गये । कथाकार यशपाल बताते हैं कि - " स्टेशन पर और स्टेशन के बाहर भीड़ का अंत न था । फिरोजपुर में पश्चिम पंजाब के देहातों से आये हिन्दू-सिक्ख किसान परिवारों की अधिकता थी । जालंधर में नगरों से आये दूकान-दार और व्यापारी हिन्दू-सिक्खों की संख्या अधिक थी । "[2]

कथाकार जगदीशचन्द्र का साक्ष्य है "दिल्ली में तो पंजाबी टिड्डी दल की तरह उतरे हैं । "[3] यशपाल पहाड़ी प्रदेश की स्थिति बताते हैं कि - " नैनीताल में बहुत भीड़ थी । पंजाब दूर होने पर भी पश्चिमी बंगाल और लाहौर से आतंक के कारण भाग आये पंजाबी परिवार सब ओर भरे हुए थे । "[4]

---

1. झूठा - सच - (भाग - 1) पृ. 230.
2. - वही - पृ. 410.
3. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 7.
4. झूठा - सच (भाग - 1) पृ. 311.

कथाकार बलवन्तसिंह लिखते हैं - " इधर-उधर से भागकर आये हुए लोग चिउंटियों की भाँति सड़कों पर रेंगते फिरते थे । " 1

पश्चिमी पंजाब से आने वाले अधिकतर लोग लुट-पिट कर खाली हाथ आये थे । उन्होंने धन और जन दोनों से हाथ धोया था । जगदीशचन्द्र का एक औपन्यासिक पात्र सरदार अतरसिंह अपने विस्थापन के विषय में कहता है - " सदर बाजार विच कपड़े दी वड्डी दुकान सी - - - - हर वेले लख-सवा-लख दा माल दुकान अन्दर पया हुन्ना सी - - - भरी-भराई दुकान छोड़ के आ गये साँ । गज तक न चुक सके । तिन कपड़यां विच निक्कल आये । " 2

अतरसिंह का कोई अकेला उदाहरण नहीं । खाते-पीते तथा समृद्ध लोगों की बड़ी संख्या का एकही जैसा हाल हुआ था । इसी उपन्यास का एक अन्य पात्र रामदयाल भी कहता है - " तोसाँ विच साडे दो दुकानाँ हाई, हिक कचहरी विच ते हिक बड़े बाजार विच - - शहर विच दो हवेलियाँ हाई - - - - सब कुछ छोड़-छाड़ के नंगे सिर ताँ नंगे पैर निकल थई । सुई वी नयी घिन हाई । " 3

अपना सब कुछ गँवा आये विस्थापितों को आजाद भारत में आकर तुरंत जीने के कठोर संघर्ष में जुट जाना पड़ा । इस संघर्ष में पुरूषों, महिलाओं और बच्चों सबकी अपनी-अपनी भागीदारी थी । ये लोग

---

1. काले - कोस - पृ. 349.
2. मुट्ठी भर कांकड़ -पृ. 37.
3. - वही -

नये सिरे से बसने की कोशिश में हर प्रकार का कार्य करने के लिये तैयार थे। इनके सामने जीविका कमाने की समस्या प्रधान समस्या थी। दिल्ली सरीखे बड़े शहरों में पंजाबी शरणार्थी छा गये थे - वे तरह-तरह के कामों से जुड़ गये थे - " कोठी पर दिन में बहुत से फेरी वाले आते रहते थे, जिनमें बजाजी लिये खेस, दरियाँ या कम्बल बेचने वाले, कभी खजूर के पत्तों और तिनकों की टोकरियाँ, छीके बेचने वाली स्त्रियाँ, कभी बटन-सूई, फीता-लेस बेचने वाले लड़के, पत्रिकायें-पुस्तकें, फाउन्टेनपेन की स्याही, चेहरे का क्रीम पाउडर, चप्पल-सैंडल बेचनेवाले लोग , फेरी वाले प्राय: पंजाबी शरणार्थी होते थे। "[1] कहते हैं, आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। जहाँ बेकारी और भुखमरी मुँह बाये खड़ी हो तो डूबते को तिनके का सहारा ही काफी होता है। पंजाबी शरणार्थी खाली हाथ बैठे रहनेवाले नहीं थे। फलस्वरूप " दिल्ली में ऐसे नये-नये रोजगार दिखायी देने लगे थे जो पहले कभी सुने नहीं गये थे। जहाँ कहीं दस आदमियों के आने जाने की सम्भावना थी एक दुकान बन गयी थी। गलियों में छोटे-छोटे ठेलों पर कपड़ों पर इस्त्री कर देने वाले घूमने लगे थे। लोगों को बिजली टेलोफोन और पानी का बिल चुकाने के लिये जाने की जरूरत नहीं रही थी। शरणार्थी द्वार पर आ कर बिल ले जाते थे और रसीद पहुँचा देते थे। "[2] जो लोग कभी नौकरी-पेशा, व्यापारी, किसान आदि थे वे ही पंजाबी लोग स्त्री-पुरुष बच्चे-बूढ़े सभी अब ऑटो रिक्शा चालक, घर-घर अखबार पहुँचाने वाले, सब्जी मंडी में सब्जी का थैला और टोकरी ढोनेवाले,

---

1. झूठा सच [देश का भविष्य] पृ. 200.
2. - वही - पृ. 323.

फल बेचनेवाले बन गये थे। हमारे उपन्यासों में इसका साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है --

(अ) --- पंजाबियों ने एक अनोखी सवारी चलायी है ---- उसे मोटर रिक्शा कहे हैं। "[1]

(आ) "पंजाबी लड़की ने कहा - "भैन जी आप लोग तो अखबार लेती होंगी। मैं रोज इसी समय दे जाया करूँ ?"" [2]

(इ) सरदार अत्तरसिंह कहता है - "हमारी औरतें भी परदेदार सां, लेकिन पाकिस्तान बनने से सब खत्म हो गया। सारी मरजादा टूट गयी। ऊँचे घरों की सुबानियां (स्त्रियां) जो पीढ़ी और पलंग से नीचे पाँव न धर सां, कहारिनों - महरियों पर हुक्म चला सां, अब सिरों पर सब्जी - तरकारी की टोकरी रखे गली-गली घुम दियां पैयाँ ने। " [3]

(ई) -- "जेहड़े बच्चे बग्घी विच बैठ के स्कूलां जा सां, हुनओ धुप होवे या छाँ, मेह होवे या इक्खड़ पैरां दुर के जान्दे ने, फिर केलियाँ दी टोकरी लय के बैठने ने। शाम तई रुपया-सवा रुपया कमा लयांदे ने ।। " [4]

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 82.
2. झूठा सच (भाग-2) पृ. 69.
3. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 27.
4. - वही - पृ. 41.

पंजाब से विस्थापित बहुत-सी स्त्रियाँ नगरवासियों के घरों में जा-जाकर घर के कार्य करने लगीं । इन कार्यों के लिए किसी खास प्रशिक्षण की जरूरत नहीं पड़ती थी । यही कारण था कि उस समय दिल्ली-पंजाब और आस-पास के क्षेत्रों में माइयां या महरी बहुत मिलने लगीं । अपने उपन्यास में यशपाल लिखते हैं - " बूढ़ी माँ एक खद्दरधारी वकील के घर में बर्तन-भांडे और झाड़ू-बुहारी का काम कर रही थी । नौ बरस की भतीजी वकील साहब के छोटे लड़के को गोद में लिये रहती थी । बुढ़िया और उसकी पोती को दोनों समय रोटी और महीने में पन्द्रह रुपये मिल जाते थे । "[1]

विभाजन की विभीषिका ने छोटे- बड़े धनी-गरीब किसी को नहीं बख्शा । शरणार्थियों का वर्तमान भयावह था और भविष्य सुनसान।अच्छे-अच्छे खाते-पीते अमीर घराने के लोग विभाजन की चपेट में आकर साधारण या निम्न स्तर का जीवन जीने लगे । वे परि - स्थितियों के अनुसार अपनी जीवन शैली ढालने को मजबूर हो गये । यशपाल बताते हैं - " अब बाबू रामज्वाया के सिर पर कलफ लगी कीमती महीन मखमल की पगड़ी नहीं साधारण पुरानी सी काली टोपी थी । मूँछें बिल्कुल सफेद, चेहरे से स्वास्थ्य और अच्छी खुराक का रंग गायब था । रोग और उदासी की छाया आ गयी थी । वे स्वयं शौक से सिलाये गरम कोट के बजाय रेल्वे की वर्दी का नीला कोट-पतलून पहने थे । पतलून पाजामा लग रही थी । कपड़े झड़े हुए या सुथरे नहीं थे । "[2]

---

1. झूठा-सच (भाग - II) पृ. 369.
2. झूठा-सच (भाग - II) पृ. 216.

शरणार्थियों के कारण शहरों में जनसंख्या अचानक बढ़ गयी । उनके द्वारा मनचाहे ढंग से बनाई गई दुकानों के कारण समस्याएँ और बढ़ गईं। अतीत की आदतें शरणार्थियों का आसानी से पीछा नहीं छोड़तीं थीं । - " पश्चिम पंजाब के कस्बों और नगरों से आये हिन्दू दुकानदार दुकानदारी ही करना जानते थे । जालन्धर की गलियों में मकानों के नीचे की बैठकें तोड़-तोड़ कर दुकानें बना दी गयी थीं । गलियाँ बाजार बनती जा रही थीं । मकानों की समस्या विकट से विकटतर होतीजा रही थी । "[1]

शरणार्थी-जीवन बड़ा कठिन था । कड़वी-जीवन स्थितियों से उन्हें गुजरना पड़ता था । उनकी बची-खुची चीजों पर लोभी लोगों की गिध्द दृष्टियाँ थीं । फटकार, दुत्कार, अपमान उनकी रोजमर्रा जिन्दगी में भर गये थे । शरणार्थियों की मजबूरियों का कुछ स्वार्थी दुकानदार तथा नेता नाजायज लाभ उठाते जा रहे थे । लुटकर आये शरणार्थियों को फिरसे लूटा जा रहा था । " बच्चा भूखा है । पाव भर दूध चाहिये । चूड़ियाँ बेच रहे हैं और यह दो सौबीस के एक सौ पैंतालिस बता रहे हैं । "[2]

" झूठा-सच " में यशपाल विस्तार से बताते हैं कि - शरणा - र्थियों का बचा-खुचा सर्वस्व लूटने के लिए लोग भेड़िये की तरह बर्ताव कर रहे थे ! श्रम से लेकर शरीर तक का शोषण हो रहा था ।

---

1. झूठा सच (भाग - II) पृ. 359.
2. झूठा सच (भाग - I) पृ. 409.

" झूठा सच " में अवस्थी जैसे नेता और मिसेज पंत जैसे उनके सहयोगी जैसे पात्र भी हैं जो नवयुवतियों को नौकरी का लालच देकर उन्हें अपने जाल में फांसना चाहते हैं । [1]

विभाजन के वक्त की अपनी परिस्थितियों और देश को आजादी मिलने के बावजूद अपने ऊपर होनेवाले तरह तरह के अत्याचारों से दुःखी और क्षुब्ध होकर पंजाबी शरणार्थी कह उठते हैं - " आजादी तो आप लोगों के लिये आयी है - - हमारे लिये तो बरबादी है । " [2]

सरकार तथा निजी संस्थाओं द्वारा शरणार्थियों के लिये खैरात में (मुफ्त) आटा-दाल बांटने की व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए ये शरणार्थी आपस में कहते हैं - " सबर से प्रसाद लो भाई, सबर से ! यह स्वराज्य का प्रसाद है ।" " कांग्रेस वालों ने राज पाया है, हमें पाव भर आटा बांट कर पुण्य भी कमाएंगे । " [3] स्वराज और देश-विभाजन से राजनीति करनेवालों को तो मालामाल होने का मौका मिला मगर पंजाब और बंगाल के प्रभावित लोग तो कंगाल ही हो गये । राजनीति की क्षुद्रताएं इन लोगों के दर्द की गहराई को भला कैसे माप सकती थीं ?

---

1. झूठा सच (भाग - 1) पृ. 410.
2. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 21.
3. झूठा सच (भाग -1) पृ. 421.

इन समस्याओं और मुसीबतों से जूझते हुए लुटे लोग, सामाजिक बन्धनों और मान-मर्यादाओं की उपेक्षा करने को विवश हुए गरीब, असहाय और भूखे-नंगे व्यक्ति को किसी के देख लेने की चिंता कब तब रहेगी ? सो, इन शरणार्थियों को भी नहीं रही । ये लोग बेहद हौलनाक अनुभवों से गुजर चुकने के कारण समाज का डर और संकोच-मर्यादा छोड़ चुके थे । उनके सामने पहला प्रश्न अपने अस्तित्व के बचाव का था । नयी जगह बसने और आस-पास के लोगों से जान-पहचान नहीं होने से लिहाज-शर्म का कोई स्थूल कारण भी नहीं था । " झूठा-सच " में यशपाल ऐसी स्थितियों की बार-बार चर्चा करते हैं - " अब यहाँ उंगली उठाने वाला ही कौन था । "[1] - - यहाँ अब पर्दे की परवाह कौन करता है ? - - औरतें तक बिना पर्दे के नहाती हैं । "[2]

" तारा प्राय: हो हैरान रह जाती थी कि दिल्ली आकर पंजाब की लड़कियों को हो क्या गया था ? किसी को किसी का लिहाज नहीं रहा था । "[3]

दूसरी ओर शहर के निवासियों की यह अंध धारणा बनने लगी कि पंजाबी लोग होते ही ऐसे हैं और वे पैसों के लिए कुछ भी कर सकते हैं ।

---

1. झूठा सच (भाग - 2) पृ. 35.
2. - वही - (भाग - 1) पृ. 414.
3. - वही - (भाग- 2) पृ. 288.

विस्थापित पंजाबियों के काफी संख्या में दिल्ली में आ बसने से दिल्ली में जगह-जगह पंजाबी मुहल्लों का दृश्य दिखाई देने लगा था। यह इस बात का द्योतक था कि पंजाबी लोग अपनी जमीन से उखड़कर भी अपनी (सांस्कृतिक) जड़ों से नहीं उखड़े थे। "झूठा-सच" की एक प्रमुख पात्र तारा जब शरणार्थी के रूप में दिल्ली आती है तो उसे वहाँ पंजाबी माहौल ही दिखाई देने लगता है। यशपाल इस पंजाबी वातावरण का वर्णन करते हुए लिखते हैं - "तारा की आँखों के सामने पंजाब का दृश्य आ गया। --- आस-पास दो-दो, तीन-तीन स्त्रियाँ बैठी ऊँचे स्वर में बात-चीत करती हुई, हाथों में कोई-कोई कामलिये थीं, इधर-उधर बंधी रस्सियों पर धुले हुए कपड़े सूख रहे थे। स्त्रियों से कुछ हटकर मर्दों की महफिल थी। मर्द आमने-सामने दो खाटों पर बैठे थे। बीच में कली (हुक्का) रखी थी। वे बारी-बारी से कली पीते थे और बात-चीत करते जा रहे थे। स्त्रियाँ शील के विचार से मर्दों की ओर पीठ किये थीं।"[1]

देश-विभाजन और दंगों में पंजाब के लोगों को न केवल अपना वतन खोना पड़ा, बल्कि असल में पंजाबी अपना सब-कुछ खोकर भूखों मरने की स्थिति में आ गये थे। भयंकर तथा प्रतिकूल परि-स्थितियों ने उन्हें दुस्साहसी बना दिया था, परिणाम-स्वरूप गैरकानूनी और असामाजिक घटनाएँ दिन-दिहाड़े होने लगीं। शहर के जिन क्षेत्रों में पंजाबियों की आबादी थी वहाँ के लोगों की इनके प्रति राय बहुत

---

1. झूठा - सच (भाग - II) पृ. 325

अच्छी नहीं बनी -- "पंजाबी सराब भी रखे से।"[1] लोग आये दिन पंजाबियों के प्रति इस तरह की बातें, काना फूसियां और अफवाहें फैलाने लगे। इनमें कुछ सच्चाई होती थी पर दोष व्यक्ति का नहीं परिस्थितियों का अधिक होता था। लेकिन शरणार्थियों की दुर्वस्था के पीछे स्थितियों के हाथ को नजर अन्दाज कर आम तौर पर लोग यही सोचते थे कि -- "पंजाबी साग-भाजी की तरह अपनी बहू-बेटियों की इज्जत बेचे हैं, मण्डी के माल की तरह जवान छोरियों के सौदे करे हैं।"[2] इक्का-दुक्का घटनाओं का लोग आसानी से सामान्यीकरण कर डालते हैं। अत: यह समझना भूल होगी कि पूरे पंजाबी समूह की ही नैतिकता शिथिल हो गयी थी। इस तरह व्यापार में बेईमानी और ठगी के द्वारा शीघ्र अमीर हो जाने की प्रवृत्ति भी कुछ शरणार्थियों में दिखायी देती थी। ऐसे लोग कम कीमतों पर नकली और रद्दी माल बेचकर धोखाधड़ी करने लगे। एक उदाहरण देखिए - "एक पंजाबी रेढ़ी पर लाल साबुन का ढेर लगाकर बेच रहा था। कम्पनी के अंग्रेजी साबुन की तरह ही रंग, वैसा ही ऊपर कागज, लेकिन कीमत आधी। मैं भी दो दरजन टिकियां खरीद लाया। घर आकर उससे नहाने लगा तो सरीर की चमड़ी उधड़ गयी लेकिन मजाल है झाग बनी हो। पता नहीं उसमें कौनसा पत्थर डाला था। "[3]

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 67.
2. - वही - पृ. 53.
3. - वही - पृ. 53 - 54.

जब समाज में बेरोजगारी, भुखमरी आदि अचानक बाढ़ की तरह उमड़ पड़ी तो परम्परागत मान-मूल्यों, नैतिकताओं का ढहना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता । सभी शरणार्थी इतने भाग्यवान नहीं थे कि उपयुक्त नौकरी, व्यवसाय आदि पा जायें । ऐसी हालत में सबसे आसान तरीका भीख माँगने का रह जाता है । पर पंजाबियों का ज़मीर इसे गवारा नहीं करता । फलत: लूट-पाट की घटनाएँ भी होने लगीं -- " पुरी की गर्दन पर कोई मजबूत पंजा कस गया और नाक के सामने पैना छुरा था । उसका सिर चकरा गया । सुनाई दिया - " घड़ी उतार दे । खबरदार, मुँह से आवाज नहीं निकले । " [1]

" झूठा-सच " के पात्र का यही अनुभव जगदीश चन्द्र के उपन्यासों के पात्रों के अनुभवों से जुड़ जाता है। इन घटनाओं ने आम लोगों के मन में पंजाबियों की छवि को मलिन करना शुरू किया - " करोलबाग में मेरा एक सम्बन्धी रिफ्यूजियों के हाथों लुट गया । सुना था कि गरीबी और दुख आदमी को पागल बना देते । लेकिन इन रिफ्यूजियों का दिमाग तो बहुत तेजी से चले है । ऐसी कहानी घड़ें हैं जैसे पाकिस्तान में जागीरें छोड़कर आये हैं । " [2]

रिफ्यूजी धर्म, समाज, नौकरशाही सबके द्वारा सताये जा रहे थे । जीने के लिए " जिसकी लाठी उसकी भैंस " की कहावत पर वे अमल करने लगे -- " - - - परसों रातों-रात ही पंजाबियों ने

---

1. झूठा सच (भाग - 1) पृ. 416.
2. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 20.

शकूर बस्ती के पास सरकारी जगह पर कब्जा कर लिया । "[1]
कमजोर को सभी सताते हैं, वे ऐसे अनुभव से गुजर चुके थे । अत: वे अपने को निर्बल नहीं दिखाना चाहते थे । फिर वे बे घरबार हो जाने की उत्तेजना और क्षोभ में भी थे । अत: स्थानीय लोगों की तुलना में अपने-आपको साहसी, शहीद और ऊँचे स्तर का दिखाने के लिये, दूसरों की उपस्थिति में वे बेपरवाही से और बहुत ऊँचा, बोलते थे । जल्दी से ज्यादा धनी होने के चक्कर में वे जुए खेलने लगे थे । शराब इनके खान-पान की शैली का अंग बन गयी थी । जुए में अपनी समृद्धि के अहंकार में वे दूसरों से बढ़कर दाँव लगा देते थे । इसी तरह दूसरों की अपेक्षा अधिक शराब पीते थे । इससे जहाँ एक ओर वे अपने अपमानजनक निष्कासन को भूलना चाहते थे वहीं नयी जगह में आकर अपनी हीन भावना से उबरना भी चाहते थे जहाँ उन्हें सामान्य आदमी से भी बदतर, शरणार्थी माना जा रहा था । यह शरणार्थी पैसे कमाने के पीछे पागल हो रहा था और इसके लिए कुछ भी कर सकता था । यशपाल बताते हैं कि -- " लोग पागल क्या, गुण्डे बनते जा रहे हैं । "[2] सताये गये बेकसूर लोगों का गुंडा बनना हमारी ऐतिहासिक त्रासदी का एक अनिवार्य पहलू था ।

पश्चिमी पंजाब के लोग सब कुछ सह कर भी अपने को किसी से कम मानने को तैय्यार नहीं थे । उनमें अपनी हालत को छिपाने की तथा अपने को समृद्ध दिखाने की मानसिकता घर कर गई । पीछे अपना संचित सब-कुछ छिन जाने से उनमें नये सिरे से, एक बार फिर

---

1. घासगोदाम - पृ. 175.
2. झूठा सच (भाग - 2) पृ. 47.

संचय कर रखने की बजाय, मौज-मस्ती करने और हंस-खेलकर जीवन बिताने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई । उनका दुख इतना बड़ा था कि जिसे ढोने के लिए एक जीवन नाकाफी होता । अत: वे क्षणिक सुखों में अपने गम को मिटा देना चाहते थे । यशपाल एक मेले में शामिल ऐसे पात्रों के विषय में लिखते हैं -- "सब ओर बढ़िया से बढ़िया पोशाकों में पंजाबी युवक और युवतियाँ ही दिखाई देते थे । मानों वे मेले में अपनी समृद्धि और शौक का प्रदर्शन करने आये हों या हंस खेलकर अपने दुर्भाग्य को भुला देना चाहते हों ।"[1] अचानक आयी विपत्ति भी पंजाबियों से उनकी खुद्दारी नहीं छीन पायी । वे अपनी मेहनत का भरोसा करने वाले थे और भीख मांगना उनकी फितरत में नहीं था । यशपाल के अनुसार -- "पंजाबी तो कहता है, मैं तुमसे किस बात में कम हूं । मेरी तनखाह - जायदाद से तुम्हें क्या मतलब ? पंजाबी अपनी कठिनाई या दीनता प्रकट नहीं करना चाहता - - - ।"[2]

इस प्रकार देश विभाजन के कारण पश्चिमी पंजाब से आये पंजाबी शरणार्थी आर्थिक रूप से बरबाद हो गये थे, साथ ही सामाजिक मान-मर्यादाओं और किंचित्-कदाचित संस्कारों नैतिकताओं की भी उपेक्षा करना सीख गये । शायद यही समय और परिस्थिति की मांग भी थी । वे नयी जमीन पर नये सिरे से चलना सीख रहे थे, अत: आरंभ में पैरों का कांपना-डगमगाना स्वाभाविक ही था । बहुत कम शरणार्थियों को किसी रहनुमा की उंगलियां पकड़कर चलने का सौभाग्य मिला था ।

---

1. झूठा सच [भाग - 2] पृ॰ 64॰
2. - वही - पृ॰ 391॰

(ख) स्थानीय लोगों पर प्रभाव :-

देश-विभाजन का प्रभाव केवल पश्चिमी पंजाब से भागकर आने वाले पंजाबियों पर ही नहीं पड़ा, बल्कि आज़ाद भारत के स्थानीय स्थायी निवासी भी इससे अछूते नहीं रहे । पश्चिमी पंजाब से अनगिनत लोगों के आने तथा उन्हें बसाने के लिये भारत सरकार ने प्रयत्न किये । स्वयं उन विस्थापित तथा शरणार्थी लोगों द्वारा पैर जमाने के लिये किये गये प्रयत्न भी कम महत्वपूर्ण नहीं थे । एक साथ अचानक इतने लोगों के आ जाने और बसने से नाना प्रकार की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याएं उत्पन्न होने लगीं और इन सबका प्रभाव यहाँ के स्थानीय लोगों के जीवन पर पड़ना ही था ।

पश्चिमी पंजाब से आये लोगों को बसाने के लिये केन्द्रीय सरकार ने नई-नई कॉलोनियाँ बनानी शुरू कीं, जिसके लिये दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों की जमीनें एक्वायर कर ली गईं । लोग अपनी जमीन से हाथ धोना नहीं चाहते, लेकिन सरकारी हुक्म से उन्हें अपनी जमीन बेचनी पड़ी थी । उन्हें बताया गया था कि - " आपको शायद मालूम हो कि सरकार ने इस गाँव की कुछ जमीन एक्वायर करने का फैसला किया है । मौका और मार्केट रेट के मुताबिक हर मालिक को मुआवज़ा मिलेगा । " [1]

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 64.

अगर अपनी जमीन बेचने की विवशता के कारण वे विस्थापितों-शरणार्थियों से मन ही मन द्वेष करने लगे हों तो इसमें क्या आश्चर्य ? इस जमीन की बिक्री के सिलसिले में भी तरह-तरह की राजनीति सामने आने लगी थी । कुछ लोग हर परिस्थिति में फायदा उठाना जानते हैं । उनका कहना था - " सब छब्बीस गाँव हैं जिनकी जमीन सरकार ले रही है । अब हिम्मत करके जमीन का दाम अच्छा लगवा लो । " [1] लेकिन सरकार से अपनी जमीनों का मुआवजा पाने के बावजूद ज्यादातर लोगों को जमीन छिन जाने से जबरदस्त धक्का लगा था । ये लोग जीवन के हर स्तर पर (आर्थिक, सामाजिक और मानसिक) अपनी जमीनों से जुड़े हुए थे । जमीन छिनने पर मानो ये लोग अपनी पहचान ही खो बैठे । पैर जमाने के लिये इन्हें भी कई प्रकार का संघर्ष करना पड़ा । इनमें से कई तो ऐसे उजड़े कि फिर बस ही नहीं सके । ऐसी स्थितियाँ सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों के अन्तर्विरोध को उजागर करने वाली थीं ।

ऐसे ही एक गाँव दारापुर के निवासियों का चित्रण " मुट्ठी भर कांकड़ " के जगदीशचन्द्र ने कुछ इस प्रकार किया है -- " क्या सचमुच सरकार हमारी जमीनें ले रही से ? " भय और हैरानी से मुखिया की आवाज गले में ही रुंध गयी । - - - पटवारी जी कहाँ जायेंगे हम लोग ? हमें बचाओ ! हम उजड़ जायेंगे । " [2]

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 100.
2. - वही - पृ. 99.

-- " पटवारी जी, सरकार हमें अन-आयी मौत मार रही है। क्या करेंगे, कहाँ जायेंगे, किसके आगे हाथ फैलायेंगे ? " मुखिया के स्वर में पीड़ा और दर्द घुले थे।"[1]

-- " गाय बछिया अपना थान नही छोड़ना चाहतीं। हम तो आदमी हैं। कैसे अपना घर छोड़ सकेंगे। "[2]

सरकार द्वारा जमीनें खरीद लेने से इन लोगों को पैसा तो मिला किन्तु काम नहीं। ये लोग केवल खेती करना जानते थे। खेती में शब्दशः उनकी जान बसती थी। अतः वे फरियाद करते हैं - " हुजूर, हम गरीब लोग हैं, हमारी जमीनें चली गयीं तो हम मर जायेंगे। हमें खेती के बिना और कोई धन्धा भी नहीं आता। "[3]

लेकिन उनके जीवन का आधार खेत बिक गया। अचानक अतिरिक्त पैसा हाथ में आ जाने से लोगों की आँखें चकाचौंध हो गयीं। कुछ लोग तो सही सलाह और अपनी बुद्धि के बल पर पैसों का सदुपयोग कर के इस संघर्ष में कामयाब हो गये, किन्तु कुछ ऐसे भी थे जो गलत संगति में पड़ कर या धोखेबाजों के चक्कर में फंसकर अपना सब-कुछ गंवा बैठे। जगदीशचन्द्र के ही एक और उपन्यास " घासगोदाम " में इस प्रकार की स्थिति की कथात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गयी है।

---

1. मुट्ठी भर कांकड - पृ. 100.
2. - वही - पृ. 105.
3. - वही - पृ. 64.

इस उपन्यास में श्री जगदीश चन्द्र बताते हैं कि -- " गाँव के जीवन में इस प्रकार की नयी परीस्थित के कारण बहुत परिवर्तन आ गया था, कोई एक-चौथाई लोग गाँव छोड़ गये थे। कुछ परिवार अपनी जमा-पूँजी खा-पीकर शंकूर बस्ती चले गये थे और वहीं झुग्गी-झोंपड़ी कालोनी में रहने लगे थे। कुछ लोग थे तो गाँव में ही, लेकिन काम बाहर करते थे। उनके पास बेचने के लिये अब मेहनत के सिवाय और कुछ भी नहीं रह गया था। " [1]

गाँव के अधिकतर लोग जमीन के बदले में मिले पैसे जल्दी ही गंवा बैठे और मजबूरी में मजदूरी करने लगे। -- " हाँ - हाँ नाले के दोनों ओर कोई पाँच सौ झुग्गियाँ होंगी। वहाँ तो मजूरी का काम भी मिल जायेगा। " [2] जगदीशचन्द्र के " घासगोदाम " और " मुट्ठी भर कांकड़ " दोनों उपन्यासों में इस समस्या को उठाया गया है। खेती से अलगाव के परिणाम स्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में अपराध - वृत्ति बढ़ जाती है -- " यहाँ के लोग अपने पैसे खा-पीकर इब चोरी डकैती पर गुजारा करे हैं। ---- देखा इनका हाल ? साले दिन-दहाड़े लूटमार पर उतारू हैं। " [3]

---

1. घासगोदाम - पृ॰ 242॰
2. - वही - पृ॰ 276॰
3. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ॰ 199॰

अशिक्षा और बेरोजगारी के शिकार लोग आपसी झगड़ों में उलझ जाते हैं। उनकी भटकन के दृश्य कथाकार यथार्थ शैली में प्रस्तुत करता है -- " यह तो खामपुर के रामविलास का छोरा है। आवारा और बद-चलन हो गया था। बाप ने इसका घर-निकाला कर रखा है। अपने बाप को मारने की इसने तीन-बार कोशिश की थी। पुलिस हवालात में भी रह आया है। --- मेरे साथ भी एक दिन भिड़ गया था। दस रुपये यों रोब से मांग रहा था, जैसे मैंने उसके बाबा से उधार लिए हुए हों। " [1]

विचित्र स्थिति थी कि किसी को बसाने के लिए किसी और को उजाड़ा जा रहा था। विडम्बना यह थी कि यह सब आजादी के साथ आया। प्रतिक्रिया स्वरूप लोग कहने लगे - " अच्छा देश आजाद हुआ। सरकार पुश्तों से बसे हुए लोगों को उजाड़ने लगी है। " [2]

- " आजादी क्या आयी है, चारों ओर बरबादी हो रही है। " [3]

पंजाबी शरणार्थियों द्वारा पैर जमाने की कोशिशें स्थानीय व्यापारियों तथा दुकानदारों के लिये चुनौती बन गईं। स्थानीय लोगों को अपना आरामतलब रवैया छोड़कर इस होड़ में उतरना पड़ा।

---

1. घासगोदाम - पृ. 254.
2. मुट्ठी भर कांकड - पृ. 52.
3. घास गोदाम - पृ. 37.

पंजाबी शरणार्थी ग्राहकों से मीठा बोलते थे, तथा चीजों के दाम भी कम लगाते थे और ग्राहकों की सुविधानुसार कार्य करने के लिए हर समय तत्पर रहते थे। उनके सामने पैर जामने का सवाल था। उनकी इन कोशिशों से यहाँ के लोग भी सचेत हुये। पंजाबियों के कठिन परिश्रम तथा सुघड़ता से उन्हें अपनी रोजी-रोटी खतरे में पड़ती दिखाई दी। अतः उन्हें भी अपना व्यवहार बदलना पड़ा।

जगदीशचन्द्र के " मुट्ठी भर कांकड " और यशपाल के " झूठा - सच " में स्थानीय निवासियों की जीवन शैली में विस्थापितों और शरणार्थियों के सम्पर्क से आये प्रभावों और परिवर्तनों का चित्रण हुआ है। जगदीशचन्द्र लिखते हैं - " फेरीवाले सरदार अत्तरसिंह द्वारा कपड़े का मोल सवा चार रुपये सुनकर गाँव के लोग स्थानीय दुकानदार दुनीचंद को फटकार देते हैं - " दुनिया तू मानता क्यों नहीं कि दाम ज्यादा लगावे है। " [1]

गाँव के लोग स्थानीय दुकानदारों और शरणार्थी व्यापारियों के सामानों और कीमतों की तुलना करते हैं तथा शरणार्थियों के सामान तथा दाम को अपने अनुकूल पाते हैं - " अंगूरी कहती है -- " एक पंजाबन कपड़े बेच रही है। बहुत सुन्दर और सस्ते हैं। " [2] शरणार्थियों के लिए व्यवसाय जीवन-मरण का प्रश्न था, क्योंकि यह उनके वर्तमान की

---

1. मुट्ठी भर कांकड - पृ. 30.
2. - वही - पृ. 32.

रोजी-रोटी का सवाल था और भविष्य को निर्धारित करनेवाला भी । अत: वे तन-मन-धन से अपने व्यवसाय को जमाने में लगे थे और कुछ भी कर सकते थे । -- " किसी पंजाबी से आसमान पर चीज पहुँचाने के लिये कहो तो फ़ौरन वहाँ पहुँचायेगा । " [1] इस तरह लोग पंजाबियों की प्रशंसा करने लगे ।

" झूठा-सच " में यशपाल बताते हैं कि शरणार्थियों के कारण दिल्ली का व्यावसायिक चेहरा ही बदल गया । स्थानीय व्यावसायियों की पुरानी आलसभरी आदतें सुधरने लगीं क्योंकि पंजाबियों की कर्मठता से उन्हें सबक हासिल हो रहा था । " पंजाबी रिफ्यूजियों ने आकर दिल्ली को तमीज सिखा दी । " [2] यशपाल दिल्ली के व्यवसाय क्षेत्र की इस कायापलट का श्रेय पंजाबी विस्थापितों और शरणार्थियों को देते है । " झूठा-सच " का एक पात्र कहता है - " भई दिल्ली वालों को तो पंजाबियों ने चौपट कर दिया । क्या कम्पीटिशन करते हैं । सब बिजनेस पंजाबियों ने समेट लिया है । -- दिल्ली वाले भी अब संभल रहे हैं । पंजाबियों से ढंग सीख रहे हैं । नहीं तो मजे - मजे कहीं दस बजे दुकान खोलते थे । " [3]

पंजाबी शरणार्थियों की मेहनत और लगन रंग लाने लगी थी और उनका कारोबार चमकने लगा था, लेकिन इससे स्थानीय दुकान - दारों को अपना रोजगार खतरे में पड़ता नजर आया । ये लोग

1· मुट्ठी भर कांकड - पृ· 132·
2· झूठा - सच (भाग - 2) पृ· 389·
3· - वही - पृ· 390·

रिफ्यूजियों को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानने लगे । व्यापार के साथ-साथ नौकरियों तथा अन्य क्षेत्रों में भी पंजाबियों के आ जाने से यहाँ के लोग असुरक्षा का भाव महसूस करने लगे । इसके अतिरिक्त कैम्पों और मुफ्त राशन कार्डों का सिलसिला लम्बा खिंचते चले जाने से भी यहाँ के स्थानीय लोग परेशान हो उठे । उन्हें लगने लगा कि सरकार उनके मुँह से कौर छीनकर पंजाबियों को खिला रही है । टैक्स के रूप में वसूला गया उनका पैसा पंजाबियों पर खर्च किया जा रहा है ।

इस तरह से देश विभाजन से उत्पन्न दंगों के कारण केवल विस्थापितों और शरणार्थियों को ही विभिन्न समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा बल्कि जिन जगहों में जाकर वे बसे वहाँ के लोगों को भी नयी समस्याओं के रू-ब-रू होना पड़ा । जगदीशचन्द्र इस प्रकार की स्थिति का वर्णन करते हुए बताते हैं कि पंजाबियों की जीवन - शैली को लेकर यहाँ के लोग तरह-तरह से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं । " मुट्ठी भर कांकड़ " में गाँव का पुश्तैनी दुकानदार दुनीचन्द फेरीवाले सरदार अतरसिंह के लिये कहता है - " आज पंजाबी मुहल्ले में घूम गया है । चोरी का बोदा माल सस्ता दे गया से । "[1] अच्छे-बुरे लोग हर समाज और समुदाय में होते हैं । स्थानीय निवासियों का अपना स्वार्थ जब शरणार्थियों के स्वार्थ से टकराता है तो वे बाहरी लोगों को बदनाम करने लगते हैं । इस प्रकार दो भिन्न समुदायों के बीच प्रतिद्वन्द्विता और मनमुटाव के मूल में व्यावसायिक स्वार्थ काम करते दिखाई देते हैं । स्वार्थ के वशीभूत लोग पंजाबियों के

---

1. मुट्ठी भर कांकड़ - पृ. 33.

खिलाफ इन तरह की अफवाहें फैलाते नज़र आते हैं। -- "एक दिन ये पंजाबी हमारी बहू-बेटियों को भी मण्डी का माल बना देंगे। - - - इनका कोई धरम-ईमान नहीं है। हाथ पर हाथ मारकर पैसा उड़ा ले जावे हैं ये। बज्ज-व्यापार इन्होंने बिगाड़ दिया है। खरे-खोटे की पहचान खत्म कर दी है।" [1]

देश-विभाजन ने लोगों के भीतर मानो देश की पहचान भी मिटा दी। सरकार ने न तो शरणार्थियों को अपने विश्वास में लिया न स्थानीय निवासियों को। परिणाम स्वरूप स्थानीय निवासियों को शरणार्थियों और सरकार की नीयत पर सन्देह हो रहा था। उनका कहना था कि - "यह कहाँ का न्याय है कि पंजाबियों को बसाने के लिये हमें उजाड़ा जाये। यह करोड़ों रुपया कहाँ से आयेगा। हमार-तुमार से छीनकर नामुराद पंजाबियों पर खर्च किया जायेगा।" [2] इससे प्रतीत होता है कि सरकार शरणा - र्थियों को बसाने की योजना बड़े यांत्रिक तरीके से कार्यान्वित कर रही थी। जब दो समुदायों का एक दूसरे से सम्पर्क अविश्वास के आधार पर होता है तो परस्पर कटुता पैदा होती है। "झूठा-सच" में यशपाल ऐसी स्थिति का वर्णन करते हैं जिसमें लोग रिफ्यूजियों पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं - "पंजाबियों का दिल बहुत बड़ा होता है। इन्हें हर हालत में ऐश चाहिये। चाहे मांग कर ही हो। जिस पंजाबन

---

1. मुट्ठी भर कांकड - पृ. 53.
2. - वही - पृ. 80.

को देखिये, रेशम-साटन पहने हैं । बदन पर सोने के जेवर। कहेंगे हमारा सब-कुछ लुट गया, बस बदन के कपड़े भर हैं । मुफ्त राशन का कार्ड दिलवा दीजिये । - - - वाह, बड़े सूरमा हो, आखिर तो भागकर ही आये हो मियाँ । अमाँ यह माँगना नहीं तो क्या है ? मुफ्त राशनकार्ड क्या है ? "[1]

इसी परस्पर-अविश्वास के कारण जगदीशचन्द्र के उपन्यास " घासगोदाम " का पात्र शरणार्थियों को दुश्मन के समान मानते हुए जहर-बुझे शब्दों में कहता है कि - " दिल्ली में पंजाबियों का गलबा बढ़ रहा है । यही हाल रहा तो एक दिन यह दिल्ली के मालिक बन जायेंगे । राज-पाट भी ले जायेंगे । "[2] ऐसी परिस्थिति क्यों पैदा हुई ? देश-विभाजन, दंगे, आजादी, नयी शासन व्यवस्था, विभिन्न सामाजिक वर्गों के निजी स्वार्थों की टकराहट आदि के कारण समस्या की जड़ को न तो पहचानने की कोशिश की गयी, न उससे निबटने के लिए सही उपाय ही किये गये । सरकार नेपथ्य में रहते हुए सभी योजनाएँ तैयार करती रही जिनसे समुदायों के बीच आपसी समझ पैदा होने के बदले उनमें दूरियाँ और अलगाव ही पैदा हो गया । परिणाम स्वरूप लोगों ने पंजाबियों पर विश्वास करना छोड़ दिया । -- " हर्ज तो कुछ नहीं है लेकिन माल देने वाला पंजाबी है । इसलिये सोच में पड़ गया था । "[3]

---

1. झूठा-सच - पृ. 133 - 134.
2. घासगोदाम - पृ. 173.
3. - वही - पृ. 112.

स्थानीय लोगों ने पंजाबियों को एक प्रकार का हौवा बना लिया था । पंजाबी शरणार्थियों की चर्चा असामाजिक तत्व के रूप में की जाने लगी । व्यवसाय में उन्हें शत्रुभाव से देखा जाता था । - - "लाखों की दुकान इस तरह चोरों, डाकुओं और पंजाबियों के लिये खुली छोड़कर नहीं जा सकता ।"[1] सामाजिक तौर पर पंजाबी शरणार्थी को खतरनाक बताया जाने लगा । सभी शरणार्थी एक जैसे नहीं थे । कुछ बुरे तत्वों के कारण पूरा समुदाय बदनाम होने लगा था । गैर-पंजाबी के लिए पंजाबी होना धोखा धड़ी, विश्वास -घात जैसे दुर्गुणों से सम्बन्धित होना था । "बाबाजी के जोहड़ पर खोखे वाले पंजाबी के साथ तेरा उठना-बैठना है । जरा होशियार रहना । एक दिन ऐसा काटेगा, तेरी नौली से यूँ रकम उड़ायेगा कि तुझे खबर तक नहीं होगी ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभाजन के समय पंजाब की जो छाती दरकी थी, उसके दिल के जो टुकड़े हुए थे उन्हें जोड़ने की कोशिश गंभीरता से न तो सरकार, न राजनीतिक दलों, न समाज सेवियों की ओर से हुई । साम्प्रदायिकता और अलगाव की भावनाओं में धीरे - धीरे बढ़ोत्तरी ही होती गयी । बाद में चलकर देश की राजनीति ने असंतोष पर पर्दा डालने, फूटडाल कर राज करने, स्वार्थी किन्तु शक्तिशाली तत्वों को तुष्ट करने की नीति अपनाली और इससे समस्या भीतर ही भीतर पकती हुई फुंसी से भगन्दर बनती गयी । सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में घटनेवाली परवर्ती घटनाएँ आग में घी का काम करने लगीं और पंजाब तथा पंजाबियों की समस्या बद से बदतर होती चली गयी ।

---

1. घासगोदाम - पृ. 114.
2. - वही - पृ. 113.

उ प सं हा र

उपसंहार

कला और साहित्य का सामाजिकता से क्या सम्बन्ध होता है, यह जानना गंभीर आलोचकों का बड़ा प्रिय विषय रहा है। प्राय: समस्त साहित्य-रूप सामा - जिकता से सम्बंधितहोते हैं। साहित्य-विधाओं में कविता अपेक्षाकृत अधिक आत्मपरक होती है लेकिन उपन्यास सर्वाधिक समाज सम्बद्ध और इतिहास सापेक्ष होता है। उपन्यास, कथा के माध्यम से व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करते हैं। औपन्यासिक कथा केवल समाज की उपज ही नहीं है, समाज को रचती भी है। उसका सम्बन्ध जीवन यथार्थ से ही नहीं होता बल्कि सामाजिक स्थिति में परिवर्तन से भी होता है। उपन्यास की समाज निर्भर कथावस्तु विशेष ऐतिहासिक काल खण्ड को यथार्थरूप में उपस्थित करती है और अपनी कलात्मकता के बावजूद सामाजिक दस्तावेज का काम भी करती है। लेकिन ऐसे दस्तावेज का अत्यन्त सजग और सावधान अध्ययन अपेक्षित है, अन्यथा हमारे निष्कर्ष भ्रान्त भी सिद्ध हो सकते हैं। उपन्यास की कलात्मकता लेखक की वैचारिक प्रतिबद्धता को सूक्ष्म रूप में भी दिखा सकती है और लेखक के प्रतिबद्ध विचारों के बावजूद रचना अपनी अलग यथार्थ दिशा भी खुद तय कर सकती है। हाँ, लेखक की कला और विचार धारा का ताल मेल भी अक्सर उसकी रचना में मिल सकता है। कहने का अर्थ यह है कि किसी विशेष समय और समाज के जीवन को समझने के लिए जब हम उपन्यासों को माध्यम बनाते हैं तो भी हमें सावधानी बरतने की जरूरत पड़ती है। साहित्य की विधाओं में उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन ही जीवन और समाज की विश्वसनीय जानकारी सबसे अधिक दे सकता है। पंजाबी जीवन का अध्ययन हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से करने की कोशिश के पीछे यही तर्क रहा है। अगर अति सरलीकरण से बचें तो इस अध्ययन में भी एक दिक्कत यह रहती है कि हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी जीवन का अंकन बेमालूम सी दूरी लिये भी हो सकता है, जिसे पंजाबी उपन्यासों में चित्रित पंजाबी जीवन की तुलना के द्वारा किंचित स्पष्ट भी किया जा सकता है। जीवन की सहजता और स्वाभाविकता का

सम्बन्ध कहीं न कहीं स्वाभाविक भाषा (मातृभाषा) से भी जुड़ता है । यही कारण है कि प्रस्तुत शोध प्रबंध में भाषा के सन्दर्भ में विवेचन का एक अलग अध्याय रखा गया ।

जन्म से ही उपन्यास का सम्बन्ध यथार्थवाद से रहा है । अक्सर लोग यथार्थवाद का अर्थ एक खास किस्म की " विचार धारा की जीत " में लेते हैं । सत्य तो यह है कि अगर उपन्यासकार की विजयकांक्षी विचार धारा उपन्यास की कथात्मकता पर हावी रहती है तो यह वास्तव में उसकी " कला की हार " है । अगर उपन्यास की अंतर्वस्तु में लेखक अपनी निजी मान्यताओं, रुचियों, आदर्शों को जबरन प्रतिध्वनित करने लगता है तो यह कलात्मक ह्रास और उपन्यास की विफलता है । पर समाजशास्त्रीय अध्ययन में असफल उपन्यासों को छोड़ना भी ठीक नहीं माना जाता, जो उचित भी है, क्योंकि ऐसे उपन्यास स्वयं रचनाकार बुद्धिजीवी की " चेतना " को प्रस्तुत कर देते हैं । सफल उपन्यासों में व्यक्ति चेतना को नहीं, जन चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है । उसमें जन समाज के सुख-दुख, उसकी आशा-आकांक्षाएं सक्षम ढंग से उपस्थित होती हैं । पंजाब के जीवन और समाज का वास्तविक स्वरूप दिखलाने में हिन्दी उपन्यासों की कारगर भूमिका रही है और यह बात प्रस्तुत अध्ययन-क्रम में स्पष्ट हो गयी है । यहां लेखक के निजी मत और धारणाओं को नहीं, बल्कि कृति में से उभरने वाले मनुष्य और समाज की तस्वीर को ही दृष्टि पथ में रखा गया है और आग्रहों-पूर्वाग्रहों से यथासंभव बचा गया है ।

उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय विधा इसलिए है क्योंकि वे संवादधर्मी होते हैं । सामाजिक दृष्टि से चरित्रों, स्थितियों आदि का वैविध्य यहां होता है । भाषा, बोली, लोक गीत, लोक-कथा, मुहावरे, कहावतें आदि सब मिलकर गूंज-अनगूंज भरा अत्यन्त वैविध्यपूर्ण तथा मार्मिक जीवन संगीत प्रस्तुत करते हैं । ऐसे स्वर-बाहुल्य को पकड़ने की भरसक चेष्टा प्रस्तुत शोध में की गई है । यहां एक बात ध्यान में रखने की यह है कि न तो हमारे उपन्यास पश्चिमी उपन्यासों की

हूबहू नकल हैं और न उनका विवेचन ही पश्चिमी समाजशास्त्रीय प्रतिमानों के अनुकरण के सहारे हो सकता है। विधाओं का अन्तर्गठन बहुत कुछ उनकी अपनी साहित्यिक परम्परा से भी तैयार होता है। अतः भारतीय समाज, और भारतीय उपन्यास की तरह भारतीय अध्ययन-दृष्टि की भी बात को जानी चाहिये, और अब इसका समय आ गया लगता है।

भारतीय समाज अधिकांशतः गाँव का है, लेकिन संपूर्णतः गाँव का नहीं है। आज प्रेमचन्द के जमाने से भारतीय समाज कई अर्थों में आगे बढ़ आया है। प्रेमचन्द भी केवल ग्रामीण समाज के कथाकार नहीं थे। उन्होंने अपने अधिकांश उपन्यासों में कस्बई और शहरी समाज को लिया है और गोदान जैसे उपन्यास में तो ग्रामीण तथा शहरी दोनों समाज प्रस्तुत किये गये हैं। प्रेमचन्द के जमाने का जीवन संघर्ष अब और अधिक जटिल बनता तथा गहराता जा रहा है। इस बात के मुखर साक्षी प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास हैं। धीरे-धीरे गाँव नगरोन्मुख हो रहे हैं और नगर गाँव में फैलता जा रहा है। इस स्थिति ने पहले की तरह गाँव और नगर को परस्पर निरपेक्ष नहीं रहने दिया है। फिर भी इनकी अपनी स्पष्ट पहचान तो है ही। गाँव और नगर दोनों जगहों के पंजाबी जीवन का जैसा औपन्यासिक चित्र प्रस्तुत हुआ है तथा पाठकों के मन पर पंजाब के जीवन का जैसा बिम्ब उभरता है इन्हीं सब का विवेचन इस शोध-कार्य का मुख्य लक्ष्य था। इसके साथ ही इस जीवन की समस्याओं की पहचान तथा उनके विश्लेषण की चेष्टा करना भी समीचीन जान पड़ा।

इस अध्ययन-क्रम में भारत के एक विशिष्ट प्रदेश के रूप में पंजाब का ऐतिहासिक, भौतिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक महत्व उजागर होता गया है। पंजाबी समाज वीरों और नायकों का क्षेत्र रहा है। उन्होंने जो आदर्श पंजाब प्रदेश के सामने रखे उनसे भारत के दूसरे हिस्से भी कमोबेश प्रभावित हुए हैं। प्रेम के क्षेत्र से लेकर धर्म,

राजनीति, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट नायकों ने महत्वपूर्ण प्रतिमान स्थापित किये, जिन्हें पंजाब के बाहर भी जाना जाता रहा है। कई दृष्टियों से पंजाब भारतीय समाज में अग्रणी भूमिका निभाता आया है।

पंजाब ने भारत के सामने मानो कर्मठता का एक आदर्श रखा है। जिस भौतिक समृद्धि के प्रति भारतवासी सदियों से उदासीन रहते आये थे, उसे पंजाब के उद्योगी पुरुष-सिंहों ने अपने श्रम से प्राप्त किया तथा "वीर भोग्या वसुन्धरा" की कहावत को चरितार्थ कर दिखाया। पंजाब सदा से विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लेता आया है। इसकी मध्यकालीन वीरता की परम्परा उन्नीसवीं - बीसवीं शताब्दियों में भी अक्षुण्ण बनी रही। अठारह सौ सत्तावन का प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध हो या कूका विद्रोह, गदर पार्टी हो या भगतसिंह की शहादत, आधुनिक भारतीय इतिहास के ये ज्वलंत और स्वर्णिम पृष्ठ हैं। आज भी पंजाब के लोग भारत की सुरक्षा के लिये भारतीय सेना का एक विशिष्ट और मजबूत हिस्सा बनते हैं।

पंजाब के विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन की झलक उसके विभिन्न पर्व-त्योहारों, संगीत-नृत्य आदि के माध्यम से पूरे देश को मिलती रही है। पंजाबी व्यंजन से लेकर पोशाक तथा विभिन्न वस्तुएं भारत के दूसरे हिस्सों में लोकप्रिय होने लगी हैं। पंजाब के लोग जीवन को उसके सभी रंगों में जीने के आकांक्षी रहे हैं। वे अपनी साहसिक और रोमांचकारी प्रकृति के चलते प्रदेश की भौगोलिक सीमाओं में बंधकर रहने वाले नहीं हैं। पंजाब के लोग देश-विदेश के दूर-दराज के हिस्सों में पहुंचते रहे हैं। उन्होंने बाहरी प्रभाव भी खूब ग्रहण किये हैं, मगर वे अपनी भीतरी पंजाबियत को कभी छोड़ नहीं सके और यह उनकी सांस्कृतिक मजबूती का अच्छा सबूत है। आज केवल पंजाब में ही वहां के लोक नायकों की गाथाएं नहीं गूंजती बल्कि लोक-कथाओं और लोकगीतों के रूप में वे दूर-दराज तक पहुंची हैं।

हिन्दी के बहुत से चर्चित उपन्यासों में पंजाबी जीवन के विभिन्न पहलू अपनी स्वाभाविक सक्रियता और आकर्षण के साथ प्रस्तुत हुए हैं। पंजाबी जीवन के इन अनेक रूपों का समष्टिगत अध्ययन पंजाब के व्यक्ति और समाज को लगभग उनकी संपूर्णता में उपस्थित करता है। इन उपन्यासों में पंजाब की हवा और पानी का स्वाद है, पंजाब की मिट्टी और मनुष्य के परस्पर सरल-जटिल सम्बन्धों की महक है। इन उपन्यासों में केवल पंजाबी सौंदर्य और तेवर ही नहीं, पंजाबी समाज की समस्याएँ भी चित्रित हुई हैं। कुल मिलाकर उपन्यासकारों ने अपने कलात्मक सामर्थ्य से वर्ग-विभाजित जटिल सामाजिक जीवन को अंकित किया है। चूँकि ये सभी हिन्दी उपन्यासकार भी पंजाब के जीवन से किसी न किसी रूप में, निकटता से जुड़े हुए हैं, अतः उनका यह चित्रांकन विश्वसनीय बन पड़ा है , इसमें संदेह नहीं।

पंजाबी जीवन से सम्बन्धित हिन्दी उपन्यास पंजाबियत को पहचानने की गंभीर कोशिश भी करते हैं। " मय्यादास की माड़ी " में भीष्म साहनी बताते हैं कि किस तरह गाँव के लोग पोरस के शौर्य और महानता के किस्से सुनते सुनाते हैं तथा अपने को पोरस का वंशज सिद्ध करने में गर्व महसूस करते हैं। बलवन्तसिंह के " दो अकालगढ़ " में गाँव के लोग गुरू नानक के उपदेशों को याद करते, उनसे सम्बन्धित कथाएँ सुनते, गुरुओं के चित्र घरों में लगाते, अपने धार्मिक गुरुओं-तेगबहादुर अर्जुन, गोविन्द सिंह आदि की वीरता, शौर्य और त्याग का बखान करते तथा गुरुओं के बलिदान दिवस त्योहारों के रूप में मनाते हैं। हंसराज रहबर के " बोले सो निहाल " नामक ऐतिहासिक उपन्यास में गुरु गोविन्द सिंह के पश्चात् एवं महाराज रणजीत सिंह के पूर्व देश और पंथ की रक्षा में शहीद होने वाले बन्दा बहादुर, जस्सा सिंह आलूवालिया जैसे अनेक वीरों की शौर्य गाथाएँ वर्णित हैं। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे क्रूर विदेशी आक्रान्ताओं को नाकों चने चबवाने वाले पंजाबी वीरों ने पंजाब को आजाद करा के जगह-जगह अपनी मिसलें कायम कर ली थीं। शेरे-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह ने जीवन-पर्यन्त अंग्रेजों को पंजाब से दूर ही रखा था,

किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात, कूटनीति और धूर्तता के सहारे अंग्रेज पंजाब को हासिल करने में कामयाब हो गये । " मय्यादास की माड़ी " में अंग्रेजों और खालसा फौज के बीच हुई झड़पों का लोमहर्षक वर्णन भी मिलता है । बाद में भी अजीतसिंह, लाला लाजपतराय से लेकर भगतसिंह - जैसे अनगिनत वीर शहीद पंजाब की मिट्टी ने पैदा किये । आजादी की लड़ाई के बाद भी भारतीय सेना में पंजाब के बहादुर अपनी वीरता की मिसालें पेश करते रहे हैं । इन रणबांकुरों के जीवन की झलकें " आधा पुल " और " टुण्डा लाट " - जैसे उपन्यासों में प्रस्तुत की गयी हैं।

पंजाब के सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्र हिन्दी उपन्यासकारों ने कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किये हैं । विभिन्न वर्गों, सम्प्रदायों और पेशों के लोगों के जीवन की निकटता से जानकारी इनमें मिलती है । हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, पठान, बलोच आदि जातियों-सम्प्रदायों के पात्र हमें इन उपन्यासों में मिलते हैं । " दो अकालगढ़ ", " धरती धन न अपना ", " रात, चोर और चाँद ", " काले कोस ", " चकपीरां का जस्सा " " कभी न छोड़ें खेत, " मुट्ठी भर काँकड़ ", " जिन्दगीनामा " आदि अनेकानेक उपन्यास पंजाब के गाँवों में घूमते हैं और वहाँ की जिन्दगी का सच्चा हाल बयान करते हैं । कस्बाई और शहरी जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यास भी कम नहीं हैं और इस सन्दर्भ में " झूठा-सच ", " शरद ऋतु ", " तमस ", " कड़ियाँ ", " सभै घट राम बोले " आदि उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं । इतना ही नहीं, देश-विदेश के अनेक हिस्सों में रहने वाले पंजाबी प्रवासियों की जिदंगी को भी अनेक उपन्यासों में विषय बनाया गया है, जिनमें " अंधेरे बन्द कमरे ", " दूसरी तरफ ", " उड़ने से पेश्तर " आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं ।

पंजाब के बेलौस जीवन को पर्व-त्योहार, मेले-ठेलों, नृत्य-संगीत आदि के माध्यम से दिखाते हुए मस्ती, उमंग और उल्लास की झाँकी हिन्दी के इन उपन्यासों ने प्रस्तुत की है । पंजाब के कण-कण में हीर-राँझा, ससी-पुन्नो, सोहनी-महीवाल की प्रेम गाथाएँ रची बसी हैं और वारिसशाह की हीर लोगों के होठों पर बरबस

बसती है। लेकिन यही पंजाबी जीवन की एकमात्र और संपूर्ण सच्चाई नहीं है। पंजाबी जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा है। पंजाब को जलियांवाला बाग जैसा भयंकर कत्ले आम भी देखना पड़ा और देश-विभाजन का सदा रिसने वाला घाव भी झेलना पड़ा है। वहाँ के समाज में भी विसंगतियाँ, अंतर्विरोध और शोषण के विभिन्न रूप हैं। साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, उद्योगीकरण, आधुनिकीकरण आदि के दबावों को पंजाबी जीवन ने भी जिस रूप में महसूस किया है उसका लेखा-जोखा भी विवेच्य हिन्दी उपन्यासों में प्रस्तुत किया है।

हिन्दी में लिखे जाने के बावजूद इन उपन्यासों में पंजाब का जीवन बहुत जीवंत होकर आया है। इसका एक कारण यह है कि पंजाब में प्रचलित लोकगीतों, लोक कथाओं, बोलियों, कहावतों, उपमाओं बिम्बों आदि का सहज तथा रोचक उपयोग इन उपन्यासों में किया गया है। वहाँ के जीवन को वास्तविकता में चित्रित करने के लिये कथानक के अनुरूप मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन किया गया है। सामाजिक व्यवहारों जैसे आपसी झगड़ों, गाली-गलौज आदि को उनके आंचलिक संस्पर्श के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इसी से यह चित्रण विश्वसनीय भी बन पड़ा है।

फिर भी यह एक कड़वी सच्चाई है कि बिल्कुल समकालीन पंजाबी जीवन को लेकर कोई विशिष्ट अथवा स्मरणीय औपन्यासिक रचना हिन्दी में प्रस्तुत नहीं हुई। पिछले दो-तीन दशकों में पंजाब का जीवन, बेहद उथल-पुथल से भरा हुआ रहा है। पंजाबी में तो रामस्वरूप अणखी ने " कोठे खड़क सिंह " जैसा बृहत् महाकाव्यात्मक उपन्यास इसी काल खण्ड को ले कर लिखा, लेकिन हिन्दी में मुश्किल से दो तीन क्षीण-काय उपन्यास ही नाम गिनाने भर को बताये जा सकते हैं। आजादी के बाद से पंजाब का समाज बड़ी तेजी से परिवर्तित हुआ है, लेकिन हिन्दी उपन्यासकारों ने पंजाबी संदर्भों को आजादी के पहले, उसके दौरान या उसके आसपास ही केन्द्रित करके देखा है। इसके क्या कारण हो सकते हैं ? संभव है, हमारे हिन्दी उपन्यासकारों

की जड़ें आजादी से पूर्व या उसके आसपास के समय में ही पंजाब से छूट गयी हों और उनकी रचनायें केवल अपने अनुभूत अतीत का ही स्मृति धारण कर रही हों । प्रत्यक्ष अनुभवों के बिना सफल औपन्यासिक लेखन नहीं हो सकता । लेकिन ऐसा भी नहीं कि हमारे सभी हिन्दी रचनाकार पंजाब से बाहर ही रहते हों । अत: हिन्दी उपन्यासों में बिल्कुल समकालीन पंजाबी जीवन की अनुपस्थिति के और भी कारण हो सकते हैं ।

पिछले कुछ दशकों में पंजाब में लगातार बड़ी जटिल परिस्थितियाँ निर्मित होती रही हैं । 1984 में ऑपरेशन ब्लयू स्टार, तत्कालीन प्रधान मंत्री इन्दिरा गाँधी की हत्या, राजनैतिक साम्प्रदायिक दंगे जैसी कई घटनाओं ने पंजाब को ही नहीं, पूरे देश को दहला दिया । ऐसा प्रतीत होने लगा मानो पंजाब में राजनीति पूरी तरह दिशाहीन हो कर भटक रही हो । सच पूछा जाए तो हिन्दी का बुद्धि - जीवी वर्ग और लेखक अत्यन्त तेजी से घट रही इन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं को मूक और भौंचक्का हो कर देखता हुआ नजर आता है । या तो उसकी समझ में इन दुखद परिवर्तनों का ओर-छोर नहीं आता अथवा वह भाववादी ढंग से किसी सुविधाजनक पक्ष के तर्कों को आँखे मूँद कर मान लेता है । क्या हिन्दी उपन्यासकार इन घटनाओं को अच्छी तरह पचा नहीं पा रहा ? क्या वह इस इंतजार में है कि पंजाब समस्या का कोई अंतिम निर्णायक हल प्रस्तुत हो, तभी वह उपन्यास लिख सकेगा ? अथवा क्या वह हिन्दी के पाठक समुदाय की भावनाओं के प्रति आश्वस्त नहीं हो पा रहा कि उसके लेखकीय अनुभवों को वह किस प्रकार से ग्रहण करेगा ? -- ऐसे बहुत सारे प्रश्न साम्प्रतिक पंजाबी जीवन के संदर्भ में हिन्दी उपन्यासकारों की लगभग चुप्पीवाली स्थिति को लेकर स्वत: ही उठते हैं । पर यह भी हो सकता है कि पंजाब में हो रही महत्वपूर्ण घटनाओं को लेकर लिखी जाने वाली औपन्यासिक रचनायें अभी गर्भ में ही पल रही हों - रचना पूर्व की प्रक्रिया में हों - और संभव है वे निकट भविष्य में सामने आयें ।

बहरहाल, हम उम्मीद कर सकते हैं कि जिस तरह से देश-विभाजन और तत्कालीन साम्प्रदायिक दंगों को लेकर हिन्दी में अनेक उच्च कोटि की औपन्यासिक कृतियाँ सामने आयी थीं, उसी प्रकार पंजाब में पिछले कुछ दशकों से सिर उठा रहे भयंकर अलगाववाद तथा अन्य परिस्थितियों को केन्द्र बना कर महत्वपूर्ण उपन्यास सामने आयें ।

पीरीशष्ट

आधार ग्रन्थ

1. अंधेरे बन्द कमरे - मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1984)
2. आधा पुल - जगदीशचन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली (1975)
3. उड़ने से पेश्तर - महेन्द्र भल्ला, राजकमल प्रकाशन, पटना (1987)
4. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद (1978)
5. एक पति के नोट्स - महेन्द्र भल्ला, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1966)
6. एक रात का नरक - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, (1978)
7. कड़ियाँ - भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1979)
8. कभी न छोड़ें खेत - जगदीशचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1976)
9. कहानी एक गाँव की - रामस्वरूप अणखी (अनु॰ संदीप) राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली (1990)
10. काले-कोस - बलवन्तसिंह, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (1973)
11. गर्म राख - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद (1978)
12. गिरती दिवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद (1967)
13. घासगोदाम - जगदीशचन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (1985)
14. चकपीरां का जस्सा - बलवन्तसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1977)
15. जलता हुआ गुलाब - तरसेम गुजराल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

16. जिन्दगी नामा - 1 (जिन्दा रूख) - कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1979)
17. झरोखे - भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1976)
18. झूठा-सच - 1, (वतन और देश) -- यशपाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1980)
19. झूठा-सच - 2 (देश का भविष्य) - यशपाल, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद (1980)
20. टुण्डा लाट - जगदीशचन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (1978)
21. तमस - भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1988)
22. दादा कामरेड - यशपाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1984)
23. दूसरी तरफ़ -- महेन्द्र भल्ला, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1976)
24. दो अकालगढ़ -- बलवन्तसिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
25. धरती गाती है -- देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1948)
26. धरती धन न अपना - जगदीशचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1981)
27. धीरे बहो गंगा - देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1948)
28. निक्का निमाणा - सुशील कालरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1984)
29. बड़ी-बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद (1955)
30. बाजत आवे ढोल - देवेन्द्र सत्यार्थी, एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली
31. बांधो न नाव इस ठाँव (दो भाग) -- उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद (1978)
32. बेला फूले आधी रात - देवेन्द्र सत्यार्थी, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली (1948)
33. बोले सो निहाल - हंसराज रहबर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली (1990)

34· मनुष्य के रूप - यशपाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1984)
35· मय्यादास की माड़ी -- भीष्म सहानी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, (1988)
36· मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1967)
37· मुट्ठी भर कांकड़ -- जगदीशचन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ बी, नयी दिल्ली (1976)
38· मुर्दों का टीला - रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद (1978)
39· मेरी तेरी उसकी बात - यशपाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1984)
40· मोना - बलवन्तसिंह, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली (1983)
41· यह भी नहीं - महीपसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1976)
42· रात, चोर और चाँद - बलवन्तसिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (1977)
43· रावी पार - बलवन्तसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1980)
44· वह मेरा चेहरा - तेजेन्दर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
45· शरद ऋतु - योगेश कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1985)
46· शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, (1978)
47· सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
48· सभै घट राम बोले - गुरु बचन सिंह, अभिव्यंजना प्रकाशन, नयी दिल्ली (1987)

संदर्भ ग्रन्थ ﴾ हिन्दी ﴿

1· अमर शहीद भगतसिंह : मेरे क्रान्तिकारी साथी - वीरेन्द्र सिन्धू, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

2· अश्क 75 खण्ड 2 - उपेन्द्रनाथ अश्क, राधाकृष्ण प्रकाशन, ﴾ 1986 ﴿

3· आर्यों से याहिया तक - हरिस्वरूप गौड़, साहित्य सरकार, दिल्ली ﴾ 1984 ﴿

4· उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास 1707 - 1740 -- डा· सतीशचन्द्र, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली ﴾ 1973 ﴿

5· उपन्यास और लोक-जीवन - रैल्फ फॉक्स ﴾ अनु: नरोत्तम नागर ﴿ पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ﴾ 1957 ﴿

6· उपन्यास का समाजशास्त्र - डा·विश्वम्भर दयाल गुप्त, श्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ﴾ 1976 ﴿

7· औरंगजेब और हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध - डा·रीता जोशी, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद ﴾ 1988 ﴿

8· क्रान्तिकारी यशपाल एक समर्पित व्यक्तित्व - सं· मधुरेश, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ﴾ 1979 ﴿

9· गुरु गोविन्दसिंह विरचित - विचित्र नाटक - ओमप्रकाश आनन्द शर्मा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली ﴾ 1977 ﴿

10· गुरु तेगबहादुर : चिंतन और कला - जयभगवान गोयल, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली ﴾ 1983 ﴿

11· गुरु नानक देव जीवन और दर्शन - जयराम मिश्र, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ﴾ 1983 ﴿

12· गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य - जयभगवान गोयल, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ﴾ 1970 ﴿

13. गौरव शिखर - डॉ. नत्थन सिंह, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली (1987)

14. तूफान के दौर से पंजाब - क्षितीश, दि वर्ड पब्लिकेशन्स, दिल्ली (1984)

15. पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (प्रथम खण्ड) पं. चन्द्रकान्त बाली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1962)

16. पंजाबी लोक गीत परंपरा - विक्रमसिंह घुमन, पंजाबी राईटर्ज कोआपरेटिव सुसाईटी लिमिटिड (1986)

17. पंजाब समस्याः आपरेशन ब्लयू स्टार और उसके बाद - कुलदीप नैयर एवं खुशवन्त सिंह, राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली (1984)

18. प्राचीन पंजाब दी संस्कृति - मधुबाला, स्वाती पब्लिकेशन्स, दिल्ली (1990)

19. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता - दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1977)

20. भारत इतिहास और संस्कृति - मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - (1985)

21. भारत का भाषा सर्वेक्षण (भाग -1 पंजाबी) - सं. डा. ग्रियर्सन (अनु. डा. हरदेव बाहरी) हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ (1970)

22. भारत की प्रणय कथाएँ - रामेश्वरदयाल दूबे, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर (1983)

23. भारत दर्शन - शंकर भट्ट, किताब घर, दिल्ली (1982)

24. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (खण्ड - 1) - रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (1982)

25• भारत में मुगल साम्राज्य का प्रारम्भिक इतिहास – श्री राम गोयल, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली ‖ 1987 ‖

26• भारतीय इतिहास की रूप – रेखा – रतिभानुसिंह नाहर, किताबमहल, नयी दिल्ली ‖ 1956 ‖

27• भारतीय धर्म और संस्कृति – ‖ सं ‖ डा•शशि तिवारी, मैत्रयी महाविद्यालय, नयी दिल्ली ‖ 1986 ‖

28• भाषा–भूगोल – डा•कैलाश चन्द्र भाटिया, प्रभात प्रकाशन, लखनऊ ‖1981‖

29• मार्क्स, त्रोत्सकी और ऐशियाई समाज – रामविलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ‖ 1986 ‖

30• महाराजा रणजीतसिंह – के•के•खुल्लर ‖ अनु• हरीश नारंग ‖ किताबघर, दिल्ली ‖ 1986 ‖

31• लोक संस्कृति की रूप रेखा – कृष्णदेव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ‖ 1988 ‖

32• लोक साहित्य के आयाम – जगदीश प्रसाद पीयूष, लोक साहित्य संस्थान, इलाहाबाद ‖ 1978 ‖

33• लोक साहित्य विज्ञान – डा•सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा ‖ 1971 ‖

34• वैदिक संस्कृति का विकास – डा•लक्ष्मण शास्त्री जोशी ‖ अनु• डा• मोरेश्वर दिनकर पराडकर ‖ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई ‖ 1957 ‖

35• साहित्य और सामाजिक मूल्य – डा• हरदयाल, विभूति प्रकाशन, दिल्ली ‖ 1985 ‖

36• साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – मैनेजर पांडेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ ‖ 1989 ‖

37· हरियाणा का इतिहास : एक सर्वेक्षण - डा·बुद्ध प्रकाश, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ (1981)

38· हिन्दी उद्भव, विकास और रूप - हरदेव बाहरी, किताबमहल, इलाहाबाद (1992)

39· हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य - डा· मोहिनी शर्मा, साहित्यागार, जयपुर (1986)

40· हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष - डा· रामदरश मिश्र, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना (1984)

41· हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिपेक्ष्य - डा·प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर (1968)

42· हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास - शमशेर सिंह नरूला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1981)

43· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

44· हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन (सं·) डा·मलिक मोहम्मद, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली (1977)

REFERENCE BOOKS (English)

1. **Agony of Punjab**, V.D. Chopra, R.K. Mishra and Nirmal Singh, Patriot Publishers, New Delhi (1984).
2. **Castes Tribes** and **Culture of India, Vol.VI**, K.P. Bahadur, Ess Ess Publications, New Delhi (1978).
3. **The Country** of **the Sikhs (Punjab)**, Henry Steinbech, K.L.M. Book House, New Delhi (1978).
4. **Culture and Society**, Raymond Williams, Harmondsworth Penguin (1961).
5. **District and States Gazatteer of Undivided Punjab** (Period of Independence) Vol.I, B.R. Publishing Corporation, New Delhi (1985).
6. **Fact in Fiction**, John Rockwell, Routledge Kegam Paul, London (1974).
7. **First Indian War of Independence**, Karl Marx, Progress Publishers, Moscow (1975).
8. **History, Castes and Culture of Jats and Gujars**, A.H. Bingley, Ess Ess Publications, New Delhi (1978).
9. **The History of the Punjab** (1799-1947), Ikramul Malik, Neeraj Publishing House, New Delhi (1970).
10. **History of the Sikh Gurus** (A comprehensive Study), S.S. Gandhi, Gurdas Kapoor and Sons, New Delhi (1978).

11. **History of the Sikhs**, D. Cunningham, S. Chand and Company, New Delhi (1985).

12. **A History of the Sikhs**, Volume I (1469-1839), Volume II (1839-1974), Khushwant Singh, Oxford University Press (1977).

13. **Language Contact in Punjab**, Tomio Mizokarn, Bahri Publications (1987).

14. **The Partition of the Punjab**, Kirpal Singh, Punjabi University, Patiala (1972).

15. **Political Dynamics of Punjab**, Paul Wallace and Surender Chopra (ed.), Guru Nanak Dev University, Amritsar (1981).

16. **Punjab Castes**, Vol.17, Sir Denzil Ibbetson, Cosmo Publications, New Delhi.

17. **Punjab in Indian Politics**, Amrik Singh (ed.) Ajanta Publications New Delhi (1985).

18. **Punjab: Past and Present**, Harbans Singh (ed.) Punjabi University Patiala (1976).

19. **Punjab Peasant in Freedom Struggle**, Vol.II, M. Harisingh, People's Publishing House, New Delhi (1984).

20. **The Punjab Story**, Amarjit Kaur, Roli Books International (1985).

21. **The Punjab Tradition**, P.H.M. Van der Dungen, George Allen and unwin Ltd., London (1972).

22. **Punjab under the Mughals**, Mohammed Akbar, Idram-i-Adabiyat, New Delhi (1974).

23. Punjab under the Great Mughals (1526-1707 A.D.), Bakshish Singh Nijjar, Thacker and Co., Bombay.

24. Races of Northern India, W. Crooke, Cosmo Publications, New Delhi (1973).

25. Religions and Communities of India, P.N. Chopra (ed.), Visions Books (1982).

26. Religion and Politics in Punjab (1920's), P.R. Uprety, Sterling Publications, New Delhi (1980).

27. Religious Rebels in the Punjab, Mark Juergensmeyer, Ajanta Publications (1988).

28. The Sikh Gurus and the Sikh Society - A Study in Social Analysis, N. Roy, Munshi Ram Manoharlal Publishers (1975).

29. Sikhism and Guru Granth Sahib, Surinder Singh, National Book Shop (1990).

30. Sikhism and its Indian Context (1469-1708), W. Owen, D.K. Agencies (Indian Edition, 1984).

31. The Social and Economic History of Punjab, B.S. Saini, Ess Ess Publications, New Delhi (1975).

32. Social Movements in India, M.S.A. Rao (ed.), Manohar Publications (1984).

33. Society and Literature (1945-1970), Alan Sinfield (ed.), Methuen and Co. Ltd., London (1983).

34. The Socio-linguistics of Society, R.W. Fasold, Basil Blackwell, Oxford (1984).

35. **Theory of Literature**, Rene Wellek, Austin Warren, Penguin Books (1956).

36. **Transformation of Sikh Society**, Ethne K. Marenco, Heritage Publishers, New Delhi (1976).

37. Tuzuk-i-Jahangir or Memoirs of Jahangir translation by Alexander Roger, Munshiram Manoharlal, New Delhi (1978).

कोश

1. वर्गीकृत हिन्दी कोश – डा॰शोभा राम शर्मा, तक्षशिला प्रकाशन (1983)

2. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

3. अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश – फादर केमिल बुल्के, S. Chand & Co. (1990)

4. हिन्दी साहित्याब्द कोश – डा॰गोपाल राय, ग्रन्थ निकेतन, पटना

5. अंग्रेजी – पंजाबी तकनीकी शब्दावली (समाज विज्ञान) (1975)
Punjab State University Textbook Board, Chandigarh

6. हिन्दी उपन्यास कोश – डा॰गोपाल राय, ग्रन्थ निकेतन, पटना (1986)

7. English-Punjabi Dictionary, Punjab State University Text Book Board, Chandigarh (1982).

पत्र - पत्रिकाएँ

सप्तसिन्धु

पहल

संचेतना

अलाव (पंजाब अंक)

साहित्य स्पर्श

प्रकर

प्रसंगवश

मूल्यांकन

आलोचना

दस्तावेज